समयसार कलशटीका प्रवचन भाग-१

(श्री समयसार कलश शास्त्र के श्लोक १ से ७
पर पूज्य गुरुदेवश्री के मर्मउद्घाटक अक्षरशः प्रवचन)

श्री महावीरस्वामी

श्री सीमंधरस्वामी

श्री समयसार कलश

श्री अमृतचंद्राचार्य

पं॰ टोडरमलजी

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

प्रकाशकः- श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुंबई

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

समयसार कलश टीका प्रवचन

(भाग - 1)

(श्रीमद् आचार्यवर अमृतचन्द्रसूरि प्रणीत
श्री समयसार-कलश के श्लोक 1 से 7 पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1967 के वर्ष के प्रवचन)

●

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाडा (राजस्थान)

●

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2078	2548	2022

—: प्रकाशन :—

फाल्गुन माह के अष्टाह्निका महापर्व की पूर्णाहुति

के पावन अवसर पर

दिनांक 18 मार्च 2022

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।

भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद जिनका नामोल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेहक्षेत्र जाकर सीमन्धरभगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों के आधार देते हैं, इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

वे निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पौन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड़—ये पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

'श्री समयसार' इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। इसमें नौ तत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। 'श्री प्रवचनसार' में नाम अनुसार जिनप्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञातत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। 'श्री नियमसार में' मुनिदशा के निश्चय और व्यवहारआवश्यक का और मोक्षमार्ग का स्पष्ट सत्यार्थ निरूपण है। 'श्री पंचास्तिकायसंग्रह' में कालसहित पाँच अस्तिकायों का अर्थात् छह द्रव्यों का और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा 'श्री अष्टपाहुड़' एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक्रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, इसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत उपरोक्त—परमागमों में श्री समयसार परमागम इस काल में नभमण्डल में तेजस्वी सूर्य समान अध्यात्मतत्त्व का सर्वांग प्रकाशन करनेवाला महान अद्भुत सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। उसके प्रणेता जैसे उच्च कोटि के आत्मा हैं, वैसा ही उत्तम यह ग्रन्थ है।

समयसार ग्रन्थ पर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के पश्चात् लगभग हजार वर्ष में अपने दिव्य ज्ञान-संयम से तथा अनुपम विद्वत्ता से भारत की भव्य धरा को विभूषित करनेवाले श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने 'आत्मख्याति' नामक विशद, अर्थगम्भीर, मूल गाथाओं के हार्द को खोलनेवाली तथा अध्यात्मरस से ओतप्रोत सुन्दर टीका संस्कृत भाषा में रची है। जैसे समयसार परमागम के मूल कर्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव सातिशय अध्यात्म-प्रतिभासम्पन्न, लोकोत्तर, महान आचार्य परमेष्ठी हैं, उसी प्रकार 'आत्मख्याति' टीका के प्रणेता भी अध्यात्ममस्ती में मस्त महासमर्थ आचार्य हैं।

इस टीका में आचार्यदेव ने, मूल गाथाओं में भरे हुए अध्यात्मतत्त्व के गूढ़तम आशयों को खोलकर, जीवादि नौ तत्त्वों का शुद्धनय की प्रधानता से निरूपण करके मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप जैसा है, वैसा बताया है। अनादि काल से भवभ्रमण के कारण दु:खी होते जीवों को दु:ख से मुक्त होने के लिये एक मात्र समझना बाकी रह गया है, ऐसे एकत्व-विभक्त आत्मा के स्वरूप को युक्ति, आगम और स्वानुभवमूलक निज आत्मवैभव द्वारा अपनी मौलिक शैली से अत्यन्त स्पष्टरूप से समझाया है। 'आत्मख्याति' टीका का बहुत भाग तो गद्यात्मक है और थोड़ा भाग पद्यात्मक है। मूल गाथा और मूल गाथा की गद्यात्मक टीका के अन्त में आनेवाले अध्यात्मरस से और आत्मानुभव की मस्ती से भरपूर यह मधुर पद्य जिनमन्दिर के उन्नत धवल शिखर पर शोभते सुवर्णकलश समान टीका की शोभा में अत्यन्त अभिवृद्धि करते हैं। इन कलश-काव्यों को पृथक्रूप से लें तो भी यह सन्धिबद्ध, अर्थगम्भीर और परमार्थतत्त्व प्रतिपादक एक सुन्दर अध्यात्मग्रन्थ बनता है। इसका नाम 'समयसार कलश' है और इस पर अध्यात्मरसिक पण्डितश्री राजमलजी पाण्डे ने टीका लिखी है।

कलशटीका के रचयिता पाण्डे राजमलजी विक्रम संवत् की १७वीं शताब्दी में हो गये हैं। कविवर श्री बनारसीदासजी से थोड़े से वर्षों पूर्व ही हो गये हों, ऐसा विद्वानों का मानना है। उन्होंने यह कलशटीका राजस्थान के ढूंढार प्रदेश में बोली जानेवाली पुरानी ढुंढारी भाषा में लिखी हुई है। श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव के कलश काव्यों में अध्यात्मतत्त्व के जो गूढ़ रहस्य अति संक्षेप से भरे हुए हैं, उन्हें टीकाकार पण्डितजी ने इस टीका में सामान्य बुद्धि के जिज्ञासु जीव भी सरलता से समझ सकें, इस प्रकार विस्तार से, स्पष्टतापूर्वक और जोरदार शैली से स्पष्ट किये हैं। इस टीका में स्थान-स्थान पर निर्विकल्प सहज स्वात्मानुभव का अतिशय माहात्म्य बतलाया है और उसकी प्राप्ति करने की प्रेरणा प्रदान की है। विज्ञानघन निज आत्मा के निर्विकल्प रसास्वादरूप अनुभव के बिना जीव जो कुछ व्रत, नियम, दया, दान, पूजा, भक्ति इत्यादि बाह्य क्रियाकाण्ड के आचरणस्वरूप व्यवहारचारित्र करता है, वह अकिंचित्कर है। समयसार कलश में गूढ़रूप से भरे हुए आध्यात्मिक भावों को सुग्राह्य हो, इस प्रकार से विस्तार से स्पष्ट करते हैं, वह इस टीका की एक विशिष्टता है।

यह स्वानुभवप्रधान समयसार कलश टीका ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को अत्यन्त प्रिय था, उन्होंने इस पर बहुत ही गहराई से स्वाध्याय किया था और प्रसिद्ध में बहुत बार इस ग्रन्थ पर प्रवचन भी किये थे। उन प्रवचनों में से अपने पास वर्तमान में चार बार के प्रवचन सम्पूर्णत: उपलब्ध हैं। यहाँ प्रस्तुत प्रवचन वी. सं. २४९३ के (ई.स. १९६७) श्रावण महीने के समयसार कलश टीका कलश १ से ७ के तेरह प्रवचन हैं। अषाढ़ और श्रावण महीने में नियमित सोनगढ़ में ग्रीष्मकालीन शिक्षण शिविर का आयोजन होता था। उस शिक्षण शिविर में बहुत दूर-दूर से मुमुक्षु आते थे और पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि वे नितरते सत्यधर्म का श्रवण करके निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसा गहन विषय इस शिविर में लिया गया था। यह गहन तेरह प्रवचन यहाँ अक्षरश: शास्त्ररूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावना का फल है। अध्यात्म का रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से व्यक्त करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट www.vitragvani.com तथा ऐप (vitragvani app) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की भावना यह है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिक से अधिक लाभ सामान्यजन प्राप्त करें, जिससे यह वाणी शाश्वत् सुरक्षित रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप समयसार कलश टीका के कलश १-७ पर हुए तेरह प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके भी आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक का प्रयोग किया गया है। इन प्रवचनों को सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य निजेश जैन, सोनगढ़ द्वारा किया गया है तथा प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्री अतुलभाई जैन और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा किया गया है। हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त करे, इस भावना से हिन्दी भाषा में प्रस्तुत प्रवचनों का रूपान्तरण पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाश का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। सर्व मुमुक्षुओं से अनुरोध है कि अशुद्धियों की नोंध ट्रस्ट को प्रेषित करें, जिससे आगामी आवृत्ति में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं। पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com वेबसाईट में शास्त्र भण्डार के अन्तर्गत, पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचनों में तथा वीतरागवाणी ऐप पर उपलब्ध हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

मुम्बई

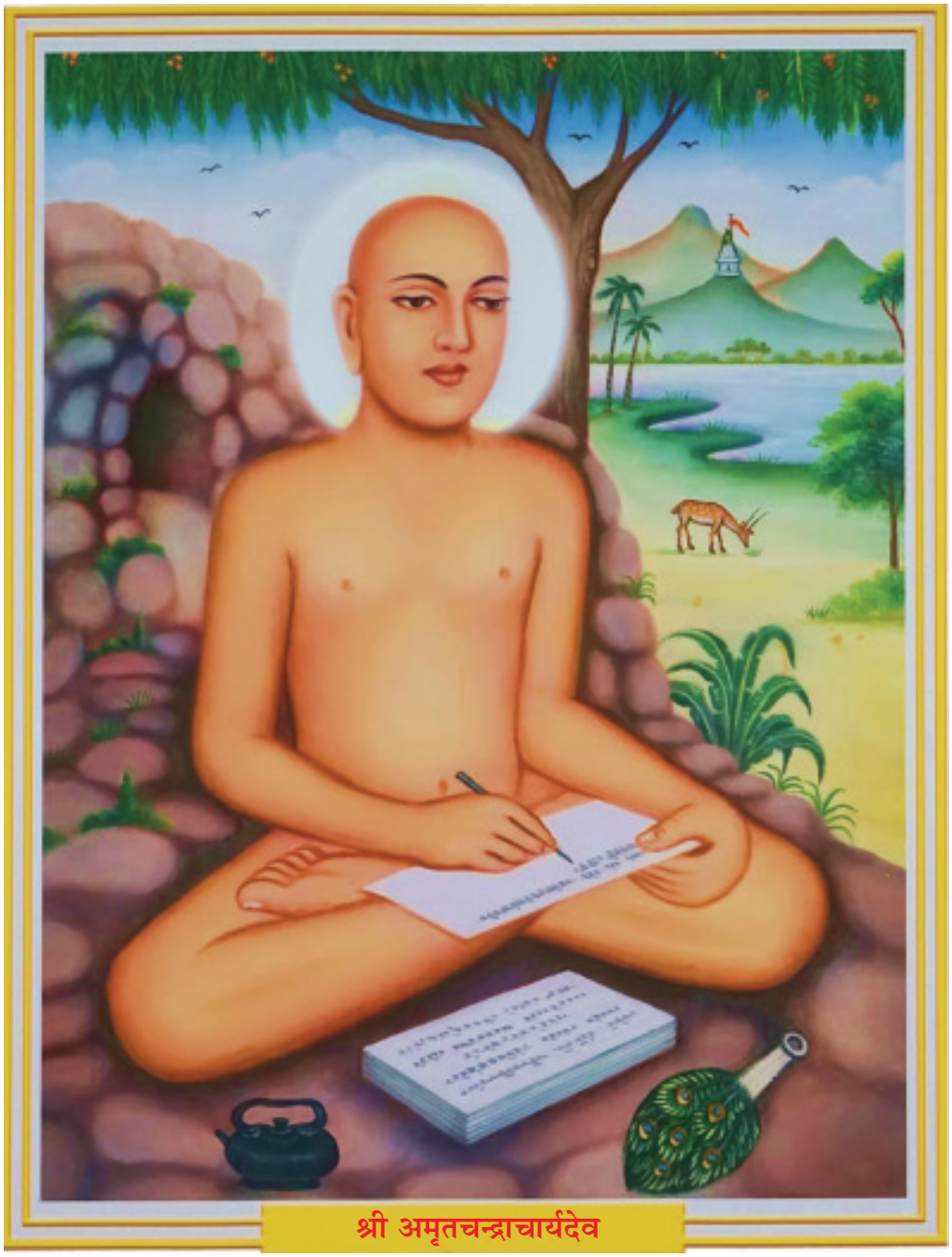

श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री राजमल्लजी पाण्डे

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रम	दिनांक	श्लोक	पृष्ठ
१	१६-०८-१९६७	१	००१
२	१७-०८-१९६७	१	०२०
३	१८-०८-१९६७	१-२	०३९
४	१९-०८-१९६७	२	०५७
५	२०-०८-१९६७	२-३	०७५
६	२२-०८-१९६७	३-४	०९२
७	२३-०८-१९६७	४	१११
८	२४-०८-१९६७	४	१३१
९	२५-०८-१९६७	४-५	१५०
१०	२६-०८-१९६७	५	१६८
११	२७-०८-१९६७	६	१८६
१२	२८-०८-१९६७	६	२०३
१३	२९-०८-१९६७	६-७	२२०
१३	२९-०८-१९६७	६-७	२२०

ॐ
नमः सिद्धेभ्यः

समयसार कलश टीका प्रवचन

(भाग-1)

श्रीमद् आचार्यवर अमृतचन्द्रसूरि प्रणीत
श्री समयसार-कलश के श्लोक 1 से 7 पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन

श्रावण शुक्ल ११, बुधवार, दिनांक १६-८-१९६७
कलश - १, प्रवचन नं. १

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त-मुनि जो २००० वर्ष पहले भरतक्षेत्र में हुए, उन्होंने समयसार बनाया। पश्चात् आज से ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य हुए, उन्होंने उसकी टीका बनायी। टीका के साथ में उसके कलश बनाये, उस कलश टीका की बात चलती है। कलश हैं अमृतचन्द्राचार्य के और उसकी टीका है पण्डित राजमलजी की। 'पाण्डे राजमल जैनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी' ऐसा बनारसीदास कहते हैं राजमलजी के लिये। है न पहले? देखो! ॐ... **पण्डितप्रवर श्री राजमल्लजी कृत टीका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद सहित।** उसकी (भाषा) थी पौराणिक ढुंढारी भाषा, अभी चलती हिन्दी भाषा में बनाया। **श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव विरचित श्री समयसार कलश।** ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य मुनि दिगम्बर सन्त-महा भावलिंगी सन्तु हुए, उन्होंने ये बनाया। उसमें जीव अधिकार।

कलश - १

(अनुष्टुप)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

देखो! पहले ऊपर का अर्थ करें, पश्चात् टीका का अर्थ होगा। उसमें अस्ति से बात की है। क्या? अस्ति अर्थात् हयाती क्या है? नास्ति से बात नहीं की। '**भावाय**' '**चित्स्वभावाय**' यह आत्मा '**भावाय**' '**भावाय**' भावस्वरूप पदार्थ है। आत्मा '**भावाय**' (अर्थात्) भावस्वरूप पदार्थ है। और '**चित्स्वभावाय**' उसका गुण चित्स्वभाव-ज्ञानस्वभाव है। भगवान आत्मा का गुण '**चित्स्वभावाय**' है। '**भावाय**', वह द्रव्य कहा और '**चित्स्वभावाय**', वह गुण कहा। समझ में आया? और '**स्वानुभूत्या चकासते**', वह पर्याय कही। समझ में आया? वस्तु आत्मा सत्ता भावस्वरूप भगवान आत्मा... जैसा सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव परमेश्वर केवलज्ञानी ने आत्मा भावस्वरूप देखा और उसका चित्स्वभाव-ज्ञानभाव-ज्ञानस्वभाव उसका गुण है। वस्तु है तो उसका कोई गुण होना चाहिए न? आत्मा वस्तु है तो उसका चित्स्वभाव-ज्ञानस्वभाव—ज्ञान-स्व-भाव... अपना ज्ञानस्वभाव त्रिकाल गुण है। उसका '**स्वानुभूत्या चकासते**' ये अपनी अनुभवक्रिया से प्रसिद्ध होता है। '**स्वानुभूत्या**' वह पर्याय है। समझ में आया?

भगवान आत्मा '**भावाय**' '**चित्स्वभावाय**' वह द्रव्य-गुण हुआ और '**स्वानुभूत्या**' वह अपने अन्तर में ज्ञान की एकाग्रता, स्वभाव की एकाग्रता, राग से भिन्न होकर स्व-अनुभूति—अपना स्वस्वभाव उसकी अनुभूति—शुद्ध की अनुभूति—आनन्द का अनुभव से '**चकासते**' वह प्रगट होता है। समझ में आया? आत्मा अपने अनुभव से प्रसिद्धि में आता है कि मैं आत्मा हूँ। समझ में आया? पुण्य-पाप की क्रिया या दया-दान-व्रत की क्रिया से वह प्रसिद्ध में नहीं आता। क्योंकि वह तो राग है, विकल्प है। समझ में आया? जेठालालभाई! पहली बात वह की। '**स्वानुभूत्या चकासते**' भगवान आत्मा वस्तु और स्वभाव अनुभूति से प्रगट होता है। अन्तर में ज्ञान का वेदन होकर, आनन्द की अनुभूति होकर, वह आत्मा है, ऐसा '**चकासते**'—आत्मप्रसिद्धि (होती है)। टीका का नाम लिया

है न ? स्वानुभूति से प्रसिद्धि होती उसकी। '**चकासते**' अर्थात् प्रसिद्धि होती है। धन्नालालजी ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : सिद्ध भगवान लिये हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध भगवान की और यह आत्मा की—सबकी आत्मा की बात है। बात यहाँ शुद्ध की है, परन्तु 'ये आत्मा शुद्ध है' उसको जानने से यह भाव प्रगट होता है। सेठी ! आज सेठी नजदीक आये। समझ में आया ? आहाहा ! अस्ति से लिया, देखो ! '**भावाय**' '**चित्स्वभावाय**' (वह) आत्मा आया, स्वानुभूति क्रिया उसकी पर्याय आयी तो संवर-निर्जरा आये। '**स्वानुभूत्या**' अन्तर की अनुभूति... सारा आत्मा ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप भाव है और स्वरूप भाववान है, उसकी अनुभूति—अन्तर में एकाकार होकर स्वस्वभाव की सन्मुख की एकाग्रता उसका नाम स्वानुभूति धार्मिक क्रिया कहने में आता है। स्वानुभूति क्रिया से आत्मा प्रसिद्धि में आता है। टीका का नाम आत्मख्याति है न, भाई ? उसमें '**चकासते**' (अर्थात्) पहले आत्मख्याति—आत्मा की प्रसिद्धि स्वानुभूति से होती है। समझ में आया ? आहाहा ! पोपटभाई !

पश्चात्... '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' कैसा है आत्मा ? अपनी अनुभूति क्रिया द्वारा '**सर्वभावान्तर**' (अर्थात्) अपने भाव के अतिरिक्त जो अन्य भाव हैं, (उन) सबको एक समय में जाननेवाला है। परिच्छिदे... च्छिदे... अन्तरच्छिदे... अपने अन्तर भाव के अतिरिक्त अन्य सबको जानने की उसमें ताकत है। स्वानुभूति की क्रिया द्वारा उसमें मोक्षपर्याय उत्पन्न होती है। मोक्षपर्याय कैसी है ? अपने को और पर को सबको जानती है, उसका नाम सर्वज्ञपर्याय है। अपनी स्वानुभूति क्रिया से ऐसी सर्वज्ञपर्याय प्रगट होती है। इतने तत्त्व सिद्ध किये। जीव भावाय... चित्स्वभाव से जीव सिद्ध किया। उसकी अनुभूति में संवर-निर्जरा सिद्ध किये, उसके फलरूप मोक्ष सिद्ध किया। जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष इतनी बात ली। अजीव, आस्रव, बन्ध, पुण्य-पाप की बात नहीं ली, क्योंकि वह तो नास्ति से बात है। समझ में आया ? समझ में आता है ? पूरी टीका ने पूरा जैनदर्शन पहले श्लोक में भर दिया है। अस्ति... अस्ति... अस्ति तत्त्व। जरा सूक्ष्म है, हों ! ये कलश चलते हैं वह। पुरुषार्थसिद्धि कल हो गया पूरा।

भगवान आत्मा... तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ प्रभु परमेश्वर ने जो आत्मा देखा है, (ऐसा) यह आत्मा। ऐसे अनन्त आत्मा भगवान ने देखे हैं। ऐसा यह आत्मा कैसा है ? कि भावाय वस्तु है। (पर के) भावस्वरूप नहीं। अभावस्वरूप है, वह बात यहाँ लेना ही नहीं। भाव से लेना है। नहीं तो ये भावस्वरूप भी है और पर के अभावस्वरूप भी है। भाई! समझ में आया ? वह यहाँ लिया ही नहीं। ये तो भावाय... बस समाप्त हो गया। ऐसा है तो पररूप है नहीं। पररूप है नहीं, (ऐसी) नास्ति की बात नहीं करना है, पहली अकेली अस्ति से करना है। अस्ति बात... महा ध्रुव चैतन्यभाव अकेला ज्ञायकस्वभाववान आत्मा है '**भावाय**' '**स्वभावाय**' इसमें स्वानुभूति संवर-निर्जरा आये अथवा निश्चयमोक्षमार्ग आया। स्वानुभूत्या में निश्चयमोक्षमार्ग आया। समझ में आया ?

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द के अनाकुल स्वरूप का पिण्ड प्रभु, उसकी अनुभूति (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो निर्विकारी दशा है, उसके द्वारा यह प्रसिद्ध होता है। देखो! उसमें व्यवहार-ब्यवहार मोक्षमार्ग का निषेध हो गया। उसकी बात यहाँ की ही नहीं। व्यवहार है या नहीं है, अभाव है—यह बात ही यहाँ नहीं है। आहाहा! जेठालालभाई! मुद्दे की बात है।

मुमुक्षु : व्यवहार प्रसिद्ध नहीं किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार प्रसिद्धि की बात ही नहीं की यहाँ। यहाँ तो ये ही है। अपना भगवान आत्मा के अन्तर में, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य, ऐसा भगवान आत्मा में अन्तर में ध्रुव में—सत्त्व में—सत् के सत्त्व में पड़ा है। सत् भगवान आत्मा उसके सत्त्व में ऐसा पड़ा है। ऐसा केवलज्ञानियों ने परमात्माओं के—तीर्थंकरों के अन्तर में स्वानुभूत्या करके प्रगट किया। केवलज्ञान प्रगट किया। यह विधि त्रिकाल ऐसी (ही) है, ऐसा पहले सिद्ध किया। अमरचन्दभाई! समझ में आया ?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायकस्वभावभाव... ज्ञायकस्वभावभाव भाव-पदार्थ, स्वभाव-गुण, '**स्वानुभूत्या**'—निश्चय स्वभाव सम्यक् निश्चयदर्शन, अपना शुद्धस्वभाव का दर्शन, शुद्धस्वभाव की प्रतीति, शुद्धस्वभाव का ज्ञान, शुद्धस्वभाव की रमणता—ऐसी निश्चय जो स्वानुभूति क्रिया है, निश्चयमोक्षमार्ग की क्रिया है, वही संवर-

निर्जरा की क्रिया है। समझ में आया? लोग बाहर से माने कि यह पाँच ...सेवे या पच्चखाण... यह तो सब धूल की क्रिया राग की है। समझ में आया? लोगों को खबर नहीं। भगवान के कहे तत्त्वों की बात की खबर नहीं। मगनभाई! '**स्वानुभूत्या चकासते**' ओहोहो! समझ में आया?

'**सर्वभावान्तरच्छिदे**' वह मोक्षतत्त्व लिया। बस, चार तत्त्व लिये। सात तत्त्व कहो या नव तत्त्व कहो, इसमें चार लिये—जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष। बस। उसमें अजीव नहीं है, आस्रव-बन्ध नहीं है, पुण्य-पाप नहीं है—वह आ जाता है। वह कहने की आवश्यकता नहीं। समझ में आया? '**नमः समयसाराय**' ऐसा समय अर्थात् आत्मा, सार अर्थात् शुद्धस्वरूप है... शुद्धस्वरूप है, वही सार है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसे आत्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। यह नमस्कार वह क्रिया स्वानुभूतिक्रिया है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा भावस्वरूप चैतन्य, उसका ज्ञायकस्वभाव—चित्स्वभाव, उसको मैं स्वानुभूति चकासते—प्रगट करता हूँ और पूर्ण स्वभाव है, उसमें से केवलज्ञान प्रगट होता है। तो केवलज्ञान में स्व-आत्मा और पर—सबको जाननेवाली शक्ति प्रगट होती है। ऐसा जो भगवान शुद्ध आत्मा, उसको मैं नमस्कार करता हूँ, क्योंकि वह सार जगत में है। आगे विशेष लेंगे। इसके अतिरिक्त कोई सार पदार्थ जगत में है नहीं।

धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल को संसारी जीव और पुद्गल—छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं न? छह द्रव्य भगवान ने—केवलज्ञानी परमात्मा ने देखे हैं। संसारी अनन्त उसमें शुद्ध (जीव) नहीं लेना। संसारी जीव... धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल और संसारी जीव, उसको सुख नहीं और उसको ज्ञान भी नहीं। अन्त में आयेगा। पाँच हैं धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल और पुद्गल—उसमें भान भी नहीं और सुख भी नहीं और संसारीजीव को भी ज्ञान नहीं, सुख नहीं। संसारी को ज्ञान नहीं। तब कहे, वर्तमान विकास है न कोई? नहीं, उसको ज्ञान नहीं कहते। समझ में आया? अमरचन्दभाई! संसारी जीव को ज्ञान नहीं, सुख नहीं। लो, पुद्गल में... सम्यग्ज्ञान नहीं, वह ज्ञान (ही) नहीं, इसलिए कहते हैं। सुख नहीं, आनन्द नहीं और ऐसे जो आत्मा... धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल और संसारीजीव,... निगोद आदि में अनन्त जीव हैं न? उसको जाननेवाले को भी ज्ञान नहीं, सुख नहीं। समझ में आया? उसको तो ज्ञान, सुख नहीं, परन्तु

उसके जाननेवाले को भी ज्ञान नहीं। समझ में आया ? क्योंकि ये अनन्त जीव पर हैं, उसका ज्ञान हुआ, वह सम्यग्ज्ञान नहीं। समझ में आया ?

यह तो भगवान का मार्ग अलौकिक है। तीर्थंकर सर्वज्ञ का मार्ग दुनिया ने सुना नहीं। बेचारा वाड़ा में पड़ा, रंक की भाँति माने कि हम जैन (हैं)। खबर नहीं कि जैन क्या है। समझ में आया ? त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव जिनकी दिव्यध्वनि समवसरण में छूटी १०० इन्द्रों की उपस्थिति में। स्वर्ग के देव, बत्तीस लाख विमानों को लाडो शकेन्द्र, अट्ठाईस लाख विमान का ईशानेन्द्र, ऐसे देवों को सिंह और बाघ, सिंह और चक्रवर्ती, बलदेव आदि बैठे हों। वासुदेव हो तो चक्रवर्ती न हो। ऐसी भगवान की वाणी उस समय निकली, उस वाणी में ऐसा आया। समझ में आया ? परमात्मा वर्तमान में महाविदेह में विराजते हैं सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ, वहाँ भी चक्रवर्ती है। समझ में आया ? चक्रवर्ती की (उपस्थिति) में भी भगवान की वाणी ऐसी निकली थी। भगवान आत्मा जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, परमात्मा शुद्ध है, उसको ज्ञान है, उसको सानन्द है और ऐसे शुद्ध आत्मा को जाननेवाले को ज्ञान का सुख है। यह शुद्ध आत्मा मैं हूँ, ऐसा। समझ में आया ?

मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान... अशुद्ध की बात तो यहाँ ली ही नहीं। अशुद्धतावाला संसारी प्राणी है, समझ में आया ? ग्यारह अंग का पढ़नेवाला जीव है, वह संसारी को भी ज्ञान नहीं, सुख नहीं। समझ में आया ? क्या कहा ? संसारी प्राणी में साधु हो जैन का, ग्यारह अंग, नौ पूर्व का ज्ञान हुआ हो, दृष्टि मिथ्यात्व है, राग को धर्म मानता है, पुण्य को धर्म मानता है, देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, (ऐसा) मानता है। उसको ज्ञान भी नहीं, उसको सुख भी नहीं। समझ में आया ? और ऐसे जीव को जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। समझ में आया ? अनन्त निगोद जीव हैं। भगवान ने आलू के एक टुकड़े में अनन्त जीव कहे। हो, है। उसको भी ज्ञान, सुख नहीं और उसको जाननेवाले को भी ज्ञान, सुख नहीं, क्योंकि वह अशुद्ध है। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान आत्मा जो पूर्ण शुद्ध हुआ, स्वानुभूति क्रिया करके सर्वज्ञ हुए। ऐसा शुद्ध आत्मा, उसको जानने से जाननेवाले को ज्ञान और सुख होता है। वह आत्मा... भाई! यहाँ तो पहले ये लिया... इस अपेक्षा से लिया है। वास्तव में परमात्मा शुद्ध अरिहन्त केवलज्ञानी

परमात्मा सुखी और ज्ञानी हैं, उनको जाननेवाले को ज्ञान, सुख है अर्थात् उनको जाननेवाले को विकल्प है। उनको जाननेवाले को (वास्तव में) अपने (-स्व) जानने में आया तो उसको यथार्थ जानने में आया ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप त्रिकाली ज्ञानानन्द शुद्ध भावस्वरूप, उसका जानना हुआ... उसका जानना हुआ तो ज्ञान हुआ, उसका जानना हुआ तो सुख हुआ। तो शुद्धात्मा को जाननेवाले को ज्ञान और सुख है। अशुद्ध आत्मा और दूसरे पाँच (सहित) छह द्रव्य हैं उसको सुख भी नहीं न ज्ञान भी नहीं और उसके जाननेवाले को ज्ञान नहीं और सुख नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा उसमें आया कि छह द्रव्य ने ऐसा संसारी, ऐसा निगोद... समझ में आया? वह जाना, वह ज्ञान ही नहीं—ऐसा कहते हैं आचार्य। जिसमें अपना आत्मा न मिले... शुद्ध भगवान आत्मा चिदानन्द की मूर्ति 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसे आत्मा को जो सिद्धपद प्रगट हुआ है, वह अन्तर में से आया है। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा का शुद्धस्वभाव भावाय, ऐसी अनुभूति (हुई), तो ज्ञान हुआ, सुख हुआ। शुद्ध को जानने से ज्ञान और सुख है। अशुद्ध जीव को और पाँच जड़ को जानने से ज्ञान और सुख है नहीं। समझ में आया?

'**नमः समयसाराय**' समय अर्थात् आत्मा। '**साराय**' सार-सुखरूप ज्ञान और आनन्द। '**भावाय... चित्स्वभावाय... स्वानुभूत्या चकासते... सर्वभावान्तरच्छिदे... नमः**' ऐसे आत्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसी अस्ति से बात की। देखो! टीका तो कैसी है! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त मुनि वनवासी जिन्होंने इस एक श्लोक में, अजीव है और नहीं है, पुण्य-पाप है, परन्तु आत्मा में नहीं—ये बात भी कही नहीं। देवीलालजी! आस्रव-बन्ध था, वह आत्मा में नहीं। यहाँ तो भान हुआ तो वह नहीं है, ऐसा ज्ञान उसमें आ गया। नया ज्ञान करने की आवश्यकता नहीं, ऐसा बताते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा आनन्द और शुद्धस्वभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसका ज्ञान हुआ तो ज्ञान और आनन्द हुआ। बस समाप्त। तो अजीव ने पुण्य-पाप-आस्रव-बन्ध उसमें नहीं है, उसका ज्ञान नया नहीं करना पड़ता। ऐसी अस्ति का ज्ञान हुआ, तो साथ में वे नहीं हैं, ऐसा नास्ति का ज्ञान आ जाता है। नास्ति का ज्ञान नया करना पड़ता नहीं। आहाहा! समझ

में आया? कैसी शैली ली है! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान कहेंगे। यहाँ तो ऐसा नहीं लिया।

मुमुक्षु : यह जानना कब ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह बात तो फिर स्पष्ट करने के लिये कहते हैं। बाकी यह जहाँ जाने... राग आदि है.. ये राग का ज्ञान है, वह अपने में है। ज्ञेय,यह बात आगे... उसका ज्ञान उसमें आ गया है। ऐ देवीलालजी! गजब सूक्ष्म बात है। अमृतचन्द्राचार्य! .... कितनी बात करते हैं! एक में अस्ति ध्रुव... ध्रुव... त्रिकाल ज्ञायक... ज्ञायकभाव भगवान '**भावाय,**' जानन स्वभावाय। वस्तु है न? वस्तु है तो कोई स्वभाव बिना हो? तो स्वभाव क्या? जड़ का... ये जड़ भी भावाय है। यहाँ तो चैतन्यस्वभाव भावाय लेना है। भावाय तो वह भी है। परमाणु (आदि) छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं न? धर्मास्ति, अधर्मास्ति (आदि) सभी वस्तु (-द्रव्य) छह हैं। परन्तु वह नहीं, यहाँ तो '**चित्स्वभावाय भावाय...**' जिसका ज्ञानस्वभाव है, ऐसा भावाय पदार्थ। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा, उसको नमता हूँ अर्थात् स्वभाव सन्मुख मेरी गति है। ऐसा भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभावभाव '**चित्स्वभावाय... स्वानुभूत्या...**' ऐसी स्वानुभूति (अर्थात्) वही पदार्थ प्रति मेरी गति है। मेरा झुकाव, नमन उस प्रति है। राग, पुण्य, निमित्त प्रति मेरा नमन, झुकाव है नहीं। है नहीं, ऐसा कहा नहीं, ऐसा नमन है। सब बात बहुत ले ली है। ओहोहो! समझ में आया? दिगम्बर सन्तों की टीका अद्भुत टीका... अद्भुत टीका... भरतक्षेत्र में ऐसी टीका करनेवाला दूसरा हुआ ही नहीं। समझ में आया? ऐसी टीका की है। अमृतचन्द्राचार्य अध्यात्म के एकला... कहते हैं, ऐसे आत्मा को मैं नमन करता हूँ।

जो अनादि का पुण्य-पाप का आदर था, संयोग का आदर था, वह वास्तविक नमस्कार नहीं था। वास्तविक नमस्कार चैतन्य भगवान आत्मा अपने में नम जाये, जुड़ जाये, झुक जाये... पर से हटकर... हटकर भी नहीं लिया यहाँ तो। अमरचन्दभाई! आहाहा! ... मार्ग है, यह नमस्कार। समझ में आया? ... भावाय नमः...

मुमुक्षु : स्थापना या सन्मुख है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी स्थापना है। कैसी स्थापना है ? वह चाँदी में (समयसार) की स्थापना की है न यहाँ! समयसार... समझ में आया ? आहाहा! इस समयसार का अर्थ ही शुद्ध आत्मा है भाई! इस आत्मा का शुद्धस्वरूप, उसको ही समयसार कहते हैं। दूसरा समयसार कौन है इस जगत में ? आहाहा!

अब इसकी टीका। ये तो ऊपर से अर्थ किया जरा शब्द में से, अस्ति से। नास्ति से बात नहीं की है ऐसा जोर देने को पहले यह अर्थ किया। अस्ति है... ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... बस समाप्त हो गया। ऐसा नहीं है, वह बात उसमें आ जाती है, नयी करने की आवश्यकता नहीं। समझ में आया ? आहाहा! यह तो कुछ...! अभी तो भाई! व्यवहार नहीं, परन्तु व्यवहार का ज्ञान करना, वह भी बात ली नहीं। यह तो देखो! व्यवहार तो नहीं, व्यवहार का अभाव या व्यवहार का ज्ञान करना, वह भी नहीं। परन्तु व्यवहार का अभाव, उसका ज्ञान करे ऐसे भी नहीं। वह तो आर्ष का ज्ञान हो गया तो सब ज्ञान हो गया, ऐसे कहते हैं। आहाहा! शैली वह भी शैली देखो! जेठालालभाई!

मुमुक्षु : अमृतकलश से आत्मा का अभिषेक किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिषेक किया। आहाहा! यह मांगलिक होता है। तुम्हारे विवाह में होता है न माणेकस्तम्भ ? लकड़ियाँ चार भटकने। यह लकड़ियाँ रखे न। चार हो चार। चार हो। उसे चार हो। माणेकस्तम्भ डाले न, एक ऐसे... ऐसे डाले। होता है या नहीं ? अपने कहाँ (किया है) ? अपने तो देखो हो किसी जगह। और लकड़ी डाली हो न चार माणेकस्तम्भ (में) कि यह माणेकस्तम्भ डालते हैं, चार गति में भटकने का। यह स्त्री लगती है अब। चार गति में भटकने का करो भाव। यहाँ माणेकस्तम्भ (मण्डप) डालते हैं या चार गति का नाश करने का भाव। ऐ सेठी!

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा तीर्थंकरदेव उनकी वाणी में जो मार्ग आया वही सन्त अपनी वाणी से कह रहे हैं। समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवान पास गये थे। यह कलश करनेवाले तो अमृतचन्द्राचार्य हैं। मूल श्लोक जो हैं समयसार के, उसके कर्ता (कुन्दकुन्दाचार्य) भगवान के पास गये थे। दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (हुए थे)। पोन्नूर हिल टेकरी है मद्रास से ८० मील इस ओर, वन्देवास से पाँच

मील, समझ में आया ? वहाँ से भगवान के पास गये थे। आठ दिन (रहे थे)। परमात्मा साक्षात् विराजते हैं। अभी हैं तीर्थंदेव केवलज्ञानी। करोड़ पूर्व का आयुष्य है, ५०० धनुष का देह है। समवसरण में विराजते हैं वर्तमान में। समझ में आया ? वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से ये माल लाये हैं। आहाहा!

पिता कहीं (जाकर वापस आवे) तो पुत्र आवे न ? बापू! क्या लाये मेरे लिये ? ऐई सेठी! कहीं मुम्बई से आवे तो होता है कि क्या लाये ? कि तेरे लिये हलुवा लाये हैं अथवा कपड़े लाये हैं... पाक का। ऐ वजुभाई! करे या नहीं ? कोई और ऊँचा हो तो घड़ी-बड़ी लावे। कि भाई! तेरे लिये घड़ी लाया हूँ। जो पिचहत्तर की घड़ी, ले, बाँध। क्या लाये बापू! मेरे लिये क्या लाये ? तुम तो आये परन्तु मेरे लिये ? तेरे लिये यह कपड़ा लाये... पाक का। एक घड़ी लाये। पिचहत्तर रुपये की मिल गयी होगी, वह लाये। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, प्रभु! तुम भगवान के पास गये थे। क्या लाये यहाँ ? कहे, हम यह लाये। सेठी! हम तो यह लाये। तुम्हें लेना हो तो लो। हम तो यह लाये हैं। आहाहा! उसका अर्थ चलता है। आधा घण्टा गया उसमें। न्यालभाई! यह तो न्याल करने का रास्ता है।

'**भावाय नमः**' पहला शब्द है। '**भावाय**' अर्थात् पदार्थ... '**भावाय**' अर्थात् पदार्थ। पदार्थ अर्थात् वस्तु। है न ? पहला शब्द। '**भावाय**' अर्थात् पदार्थ। '**चित्स्वभावाय**' दूसरी लाईन में दूसरा शब्द है उसका अर्थ पहले करते हैं। '**भावाय**' अर्थात् पदार्थ। **पदार्थ संज्ञा है सत्त्वरूप की।** क्या कहते हैं ? पदार्थ संज्ञा है सत्त्व... क्योंकि जिसका कोई सत्त्व हो-भाव हो-सत्त्व हो। सत् का सत्त्व हो, उसका नाम पदार्थ कहते हैं। सत्त्वस्वरूप, असत्त्व नहीं, मालस्वरूप हो उसमें। आहाहा! टीका भी गजब की राजमलजी! ये गृहस्थ थे। समझ में आया ? गृहस्थ थे। उन्होंने टीका की हिन्दी हों हिन्दी। मूल श्लोक अमृतचन्द्राचार्य के हैं। **पदार्थ संज्ञा है सत्त्वरूप की।** सत्त्व... सत् शब्द नहीं लेता सत्त्व... सत्त्व... लोग नहीं कहते कि उसका सत्त्व निकाला है ? कहते हैं या नहीं ? उसमें से सत्त्व निकाला। ...कांई कहेने। तुम्हारे हरख और फरख करते हैं। ऐसे पदार्थ सत्त्वस्वरूप है। सत्त्व... उसका सत् स्वरूप है। सत्त्व उसमें माल है। धन्नालालजी! आहाहा!

उससे अर्थ ठहराया - जो कोई शाश्वत् वस्तुरूप... है, शाश्वत् शुद्ध **उसे मेरा**

नमस्कार। शुद्ध... शाश्वत् शुद्ध उसको मेरा नमस्कार। परमात्मा को भी शाश्वत् कहने में आता है और आत्मा को भी शुद्ध शाश्वत् कहने में आता है। **शाश्वत् वस्तुरूप उसे मेरा नमस्कार।** महा मांगलिक किया पहले। शाश्वत् भगवान सत्त्वरूप पदार्थ, आत्मा सत्त्वरूप... सत्त्व... सत् का सत्त्व... यहाँ तो भावार्थ में सत्त्व लिया। नहीं तो चित्स्वभाव फिर लेंगे। परन्तु वह सत्त्वरूप-कसरूप पदार्थ है, कोई माल बिना का पदार्थ नहीं। उससे यह ठहराया... नमस्कार।

वह वस्तु स्वरूप कैसा है ? अब उसके गुण की बात करते हैं। **चित्स्वभावाय... ज्ञान-चेतना वही है स्वभाव-सर्वस्व जिसका...** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा भावाय सत्त्वस्वरूप। स्व-ज्ञानचेतना जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... ऐसी चेतना, वही स्वभाव सर्वस्व है। सारा-सर्वस्व चेतना सार है, वह स्वभाव है। चेतना सर्वस्व... आत्मा भावाय, उसका चेतना सर्वस्व स्वभाव है। समझ में आया ? भाई ! यह तो अध्यात्म बात है, वार्ता-कथा नहीं है। ध्यान रखे तो मजा आवे, नहीं तो नींद आवे ऊंधे।

मुमुक्षु : नींद किसलिए आती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठण्डी हवा, यहाँ ... कुछ नहीं, ... करके बैठा हो। ये मंगलाचरण जगे तब... आहाहा ! नींद क्या...

भगवान आत्मा सत्त्वरूप पदार्थ, उसका स्वभाव चेतना। जानना-ज्ञानचेतना जिसका सर्वस्व... सर्वस्व... जिसका सर्व-स्व-सारा स्वधन उसका चैतन्य है। समझ में आया ? भगवान आत्मा का चेतना सर्वस्व सार है। ये सर्वस्व है-सर्व उसका धन है। पोपटभाई ! यह तुम्हारी धूल की बात नहीं चलती। यह सब हैरान होने के रास्ते हैं। कहो, समझ में आया ? सर्व... स्व.. जिसका सर्वस्व... सर्वस्व... सारी चेतना सर्वस्व वह आत्मा है। इसमें कोई बाकी राग आदि है ? कि सारा चैतन्यस्वभाव... चैतन्यस्वभाव... सर्वस्व उसका सवभाव है। समझ में आया ?

अनन्त गुण हैं उसकी गौतमा करके चित्स्वभाव ज्ञानस्वभाव ले लिया। क्योंकि ज्ञानप्रधान... ऐसी ही बात है। देखो ! जरा मनन करने के काल में भी... यह चेतना है न चेतना ? चेतना है न ज्ञान ? ज्ञान है न। यह ज्ञान है वह ज्ञान (करता) है और विश्वास करता

है, उसका ज्ञान भी ज्ञान करता है। विश्वास करता है ऐसी जो शक्ति है न, उसका भी ज्ञान करता है। आनन्द है, वह भी ज्ञान में आता है तो (पता लगता है कि) ये आनन्द है। अस्ति है वह ज्ञान में आती है। वस्तु है, वह भी ज्ञान में (जानने में) आती है, स्वच्छता ज्ञान में (जानने में) आती है। समझे? ऐसे, जो अस्तित्व है, वह भी ज्ञान में आया। कोई भी गुण का लक्ष्य करता है, वह ज्ञान में (जानने में) आता है तो उसका ज्ञान होता है। तो ज्ञान (ही) सर्वस्व आत्मा है। सारा अनन्त गुण का जाननेवाला ज्ञान... ज्ञान सर्वस्व आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! कहो, यह सब समझ में आता है या नहीं फूलचन्दजी?

वे कितने ही ऐसा कहते हैं कि अपने व्यापारी, सेठिया कहलाते हैं, अपने नहीं समझते, यह वकील समझे। ऐसा कुछ नहीं। यह तो आत्मा हो, वह समझे। आत्मा की बात चलती है। हमारे में बुद्धि बहुत नहीं। बुद्धि बहुत नहीं कौन कहता है? कहते हैं न कि इतना सर्वस्व है? यहाँ तो कहा न? ज्ञान अर्थात् चेतनास्वभाव वही सर्वस्व जिसका है। तेरे में चेतना... चेतना... जानन... जाननस्वभाव सर्वस्व है तेरे में। क्या नहीं है? खबर नहीं, सुना नहीं कि मैं कौन हूँ। भगवान... 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' भाषा बोली जाये। हांके जाये सवेरे-शाम। 'चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं' हराम अर्थ आता हो कहीं। खबर नहीं होती कहीं वस्तु की। जो कहा जाये तो... नहीं, ऐसा कहाँ से आया? अब सुन न! इसमें है सब। तुझे खबर नहीं इसलिए... समझ में आया?

ओहो! स्व-भावाय... है न? स्व-भावाय... चित्-स्व-भावाय... ज्ञान स्व-सर्वस्व भाव अपना स्वभाव है। चित्-चैतन्यस्वरूप व्यापक पूरे द्रव्य में। चेतना... चेतना... चेतना... फिर दर्शन-ज्ञान के भेद यहाँ नहीं लेना, अकेली चेतना। समझ में आया? उसको मेरा नमस्कार। भगवान आत्मा और चित्-ज्ञानचेतना जिसका सर्वस्व है, ऐसे स्वभाव को मेरा नमस्कार है। राग को नहीं, पुण्य को नहीं, निमित्त को नहीं, देव-गुरु को नहीं, पर को नहीं। यहाँ भी ऐसा लिया। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र को नमस्कार, वह भी विकल्प है, राग है।.... मेरा झुकाव भावाय... चित् सर्वस्व स्वभावाय उसमें मेरा झुकाव है। मेरा विनय स्वभाव के सन्मुख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह विशेषण कहने पर दो समाधान होते हैं—एक तो भाव कहने पर पदार्थ,

वे पदार्थ कोई चेतन हैं, कोई चेतन हैं... भावाय लिया न ? तो भगवान ने देखे भाव तो दो प्रकार के हैं। कोई चेतन है, कोई अचेतन है। चेतन एक है और अचेतन दूसरे पाँच हैं। **उनमें चेतन पदार्थ नमस्कार करनेयोग्य है...** चेतन पदार्थ नमस्कार करनेयोग्य है। जड़ पदार्थ नमस्कार करनेयोग्य नहीं है। **चेतन पदार्थ नमस्कार करनेयोग्य है, ऐसा अर्थ उपजता है।** ऐसा अर्थ उसमें से निकलता है। भगवान आत्मा चेतनस्वभाव जिसका सर्वस्व है। सर्वस्व कहने से... लो। भावाय, उसका चेतन सर्वस्व है। देखो भाई! इसमें क्या कहा ? यह सर्वज्ञस्वभावस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। यह ज्ञान पूरा है, यह ज्ञानस्वभाव पूरा है। सर्वस्व... सर्व पूरा है। पूरा ज्ञान है। ज्ञान में जो ... है ये पूरा है। ये पूरा-पूरा ज्ञान है। सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का है। भगवान आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है। वह 'ज्ञ' स्वभाव है, स्वभाववान भावाय, पदार्थ भावाय, 'ज्ञ' स्वभाव। 'ज्ञ' स्वभाव कैसा है ? सर्वस्व। पूर्ण—पूरा है। एक द्रव्य में पूर्ण व्यापक है सारा... एक द्रव्य है, गुण भी एक है, (द्रव्य) अखण्ड है तो (गुण) अखण्ड है और परिपूर्ण है। आत्मा का चेतनस्वभाव सर्वस्व परिपूर्ण है। समझ में आया ?

चेतन पदार्थ नमस्कार करनेयोग्य है... दूसरा समाधान ऐसा कि यद्यपि वस्तु का गुण का वस्तु में गर्भित है... क्या कहते हैं ? भावाय और चित्स्वभावाय—दो भेद क्यों किये ? पदार्थ को पदार्थ का गुण—दो (भेद) क्यों किये ? पाठ तो ऐसा लिया न ? **भावाय... चित्स्वभावाय...** दो बोल लिये। पदार्थ तो एक है तो दो क्यों लिये ? कि वस्तु का गुण वस्तु में गर्भित है, वस्तु (और) गुण एक ही सत्त्व है। वस्तु आत्मा, चेतनागुण सर्वस्व—वह एक ही सत्त्व है। वस्तु दो का सत्त्व एक ही है। दो का दो सत्त्व है, ऐसा नहीं। आत्मा का होनेपने का सत्त्व दूसरा और चेतना सर्वस्व का सत्त्वपना दूसरा—ऐसा है नहीं। सूक्ष्म है भैया! कलशटीका। समझ में आया ? बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसी बात है। जो भाव कहने में आता है, ऐसा पकड़ में आवे तो सुना, कहा जाये। उसे अपनी कल्पना से पकड़े, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

वस्तु (और) गुण एक ही सत्त्व है। भगवान आत्मा और उसका चेतना सर्वस्व गुण, वह तो एक ही सत्त्व है, दो सत्त्व भिन्न नहीं है। **तथापि...** एक सत्त्व होने पर भी... होने पर भी कहते हैं न ? **भेद उपजाकर कहनेयोग्य है...** क्यों ? आत्मा ज्ञानस्वभाव है, ऐसा भेद

किये बिना समझाये तो समझ सकता नहीं। सत्त्व तो एक है, देखो! **भेद उपजाकर कहनेयोग्य है... विशेषण कहे बिना वस्तु का ज्ञान उपजता नहीं।** भेद का अर्थ ही वह लिया-विशेषण हो गया। ज्ञान, वह आत्मा... चेतना, वह आत्मा... विशेषण हो गया भेद, भेद हो गया। वस्तु एक हो तथापि, पदार्थ और गुण एक सत्त्व... एक सत्त्व हो तथापि, उसका विशेषण भेद हो गया। ज्ञान यह... ये विशेषण, यह विशेष्य। ज्ञान, यह आत्मा ऐसा... देखो! यह टीका राजमलजी ने टीका कैसी की है! गृहस्थाश्रम में थे। समझ में आया? यह पुस्तक तो है या सभी के हाथ में? निकाला है या नहीं? न हो तो बाहर बहुत है।

भगवान आत्मा और उसका ज्ञान—चेतनागुण वह सत्त्व... सत्त्व और सत् तो एक ही है। परन्तु भेद किये बिना समझा सकते नहीं अथवा भेद किये बिना समझ सकते नहीं। समझ में आया? समझ सकते नहीं। **भेद उपजाकर कहनेयोग्य है, विशेषण कहे बिना वस्तु का ज्ञान उपजता नहीं...** लो। यह चेतना वह गुण। जानना है पर्याय से। क्या कहा? जानना है पर्याय से, परन्तु पर्याय 'यह ज्ञान, वह आत्मा' ऐसे विशेषण से आत्मा को जानती है। समझ में आया? यह मूल बात है। मूल बात है तो सूक्ष्म ही होगी। समझ में आया? वर्तमान में बाहर का क्रियाकाण्ड चलता है, उसमें ऐसा लगे कि ये क्या? परन्तु वह बात जो मानी है, वह सत्य है नहीं। सुन तो सही! तब लोगों को ऐसा लगता है कि सोनगढ़ में ऐसा है। सोनगढ़ में नहीं परन्तु भगवान में, ऐसा कहे। भगवान ने ऐसा कहा है। समझ में आया? सेठी! तूने सुना नहीं तो क्या चीज़ दूसरी हो जाती है?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा... सत्... सत्त्वरूप वस्तु-होनेवाली चीज... होनेवाली चीज़ चित्स्वभावाय-ज्ञानस्वभाव सर्वस्व जिसका है, ऐसे विशेषण से—भेद से समझाये बिना दूसरा कोई उपाय नहीं। आत्मा सीधा कैसे जाने? यह ज्ञान... जानना है पर्याय में, हों। परन्तु पर्याय 'यह ज्ञान, वह आत्मा' ऐसा निर्णय करती है। दूसरा कोई उपाय नहीं। आहाहा! क्या कहा? कि ज्ञानलक्षण से लक्ष्य प्राप्त होता है। रागादि, दया, दानादि के विकल्प से लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती क्योंकि वह उसका लक्षण नहीं। भाई! क्या कहा? उसका जो विशेषण हो तो उससे अभेद ख्याल में आता है। तो रागादि उसका विशेषण है ही नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम, वह तो विकल्प शुभराग है, आत्मा का

विशेषण है, लक्षण-बक्षण है नहीं। वह तो पर है, विकार है। परन्तु लोगों को ख्याल नहीं कि क्या चीज़ है ? परमेश्वर क्या कहते हैं ? परमेश्वर का क्या फरमान है, (वह) सुना नहीं। सुनानेवाला दूसरा मिले... ओहोहो ! आहाहा ! हो गया जाओ। भटको दोनों।

यहाँ तो परमेश्वर कहते हैं, भाई ! त्रिलोकनाथ की वाणी में आया समवसरण सभा में इन्द्र के समक्ष। भगवान ! तुझे जानने का उपाय तो ज्ञान, वह आत्मा... देखो ! यह विशेषण है। आत्मा का विशेष ज्ञान है या आत्मा का विशेष राग है ? नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं, दया-दान (आदि) ये तो विकल्प है, पुण्य है। यह क्या आत्मा का विशेषण है ? उसका विशेषण-भेद है कि उसको अभेद में ले जाये ? लक्ष्य में ले जाये ? समझ में आया ?

भेद उपजाकर कहनेयोग्य है, विशेषण कहे बिना... यह भेद कहो या विशेष कहो। **वस्तु का ज्ञान उपजता नहीं,...** लो। भगवान आत्मा वस्तु... वस्तु... वह ज्ञान सर्वस्व जिसका है—ऐसा विशेषण करके, भेद करके समझ सकते हैं। दूसरा कोई भेद बिना समझ सके नहीं। समझ में आया ? वह भी बात कह दी कि ज्ञान, वह आत्मा... ज्ञान की क्रिया वह लक्षण, वही आत्मा तक पहुँचा सकता है, लक्ष्य प्राप्त करा सकता है। व्यवहार क्रियाकाण्ड दया-दान-व्रतादि कि व्यवहाररत्नत्रय वह आत्मा का लक्ष्य करा सकता नहीं। उसमें ताकत है नहीं। वह उसका विशेषण है नहीं। सेठी !

और कैसा है भाव ? कैसा है भाव ? **समयसाराय...** अब समयसार की व्याख्या करते हैं। **यद्यपि समय शब्द का बहुत अर्थ है...** 'समय' शब्द का अर्थ बहुत है। यह तो समझ में आये ऐसी चीज़ है, हों ! फूलचन्दजी ! समझ में आता है ? साथ में पुस्तक भी है और शब्द-शब्द का अर्थ होता है। नया है न ? बीड़ियों में से मुश्किल-मुश्किल से निवृत्ति कभी आये हों। आया ठीक। लेकर आया है, समय लेकर आया है थोड़ा। आहाहा ! यह मार्ग है अन्दर... ! पहले तो समझना चाहिए कि चीज़ कैसी है। समझे बिना कहाँ जायेगा ? कहते हैं, **समय शब्द का बहुत अर्थ है...** समयसार जो कहा, समयसार, उसमें 'समय' शब्द पड़ा है। समय का तो बहुत अर्थ है। बहुत अर्थ है। समय, काल आदि विशेषण... 'अन्यमत' आदि बहुत समय का अर्थ है। 'सिद्धान्त' आदि बहुत अर्थ होता है। **तथापि**

इस अवसर पर... यहाँ, यूं। समय का तो बहुत अर्थ है, परन्तु यहाँ इस प्रकरण में—इस अधिकार के लिये **समय शब्द से सामान्यतया जीवादि सकल पदार्थ जानने।** समझ में आया?

छहों पदार्थ को भगवान समय कहते हैं। भगवान ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे। छह द्रव्य—अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। छहों को समय कहते हैं। समझ में आया? वह प्रश्न उठा था दिल्ली। 'समय' (शब्द) क्यों लिया? समय क्यों लिया? फिर कहे, समय क्यों लिया? ब्रह्म क्यों नहीं लिया? मैं वह शोध करता हूँ। एक ... सेठिया ने नहीं कहा। थोड़ी देर बाद... कहा, समय ऐसा लिया है। कहा था न? सम+अय। ध्रुवपना सिद्ध करना है और परिणमन सिद्ध करना है—दो चीज़ यहाँ है। चैतन्य ध्रुव है और उसकी परिणमन क्रिया है—वह दो सिद्ध करने को सम+अय लिया है। 'समय' (शब्द) पास क्यों किया? पास नहीं किया, परन्तु वह ऐसे गया है। ऐसा कि 'समय' क्यों पास किया? ये सब मुद्दे ऐसे हैं न... ऐसा है। 'समय' (शब्द) क्यों पास किया कुन्दकुन्दाचार्य ने? आत्मा का नाम 'समय' क्यों पास किया? समयसार क्यों पास किया? ब्रह्म कि दूसरा आत्मा—ऐसा नाम क्यों पास नहीं किया? ऐसा कहते हैं....

समय में अपनी जाति चैतन्य कायम रखकर अपने में शुद्ध परिणमन होता है, परिणमन होता है, पर्याय में परिणमन होता है। यह परिणमन (और) नित्य परिणामी... ज्ञायक नित्य परिणामी है—ऐसी बात जैन के अतिरिक्त दूसरे में है नहीं। वेदान्त अत्यन्त कूटस्थ मानता है, बौद्ध क्षणिक मानते हैं। (उनमें) ऐसी चीज़ है नहीं। नहीं तो आत्मा नाम न लेकर 'समय' लिया है, उसका (स्पष्टीकरण) आ गया है। यह कौन? वहाँ प्रश्न उठाया था दिल्ली। बहुत प्रश्न चर्चा विद्यानन्दजी से। ... कैसे? अरे भगवान! क्या हो? ऐसा कि समय कहा... ऐसा है। मैं विचार करता हूँ कि कैसे है? भाई! यह 'समय' तो ऐसा है... देखो! वह तो कहते हैं।

इस अवसर पर... यहाँ कहने के काल में 'समय' शब्द से सामान्य में-संक्षिप्त में तो छहों पदार्थ (आ गये)। पर **उनमें जो कोई 'सार' है...** अब कहो। 'समय' यह शब्द

है उसका और उसमें सार। 'समय' तो प्रत्येक—छहों द्रव्य को कहते हैं। क्यों? कि अपनी जाति रखकर परिणमते हैं—पलटते हैं। सम्+अय... सम्+अय दो शब्द है समय में। समय। सम्=सम्यक् प्रकार से, अय=अपनी जाति रखकर जो परिणमता है, उसको समय कहते हैं। तो छहों द्रव्य अपनी जाति रखकर परिणमते हैं तो छहों को समय कहने में आता है। समझ में आया?

परन्तु यहाँ क्या लेना है? सार है... **उनमें जो कोई 'सार' है, 'सार' अर्थात् उपादेय है...** वह तो जीववस्तु उपादेय है। समझ में आया? भगवान आत्मा, वही सार है। जड़ादि को भले समय कहो, पदार्थ की अपेक्षा सिद्ध करने को। यहाँ तो भई! सबने समय कहा। समय (कहने का) हेतु है। प्रत्येक द्रव्य... आता है न आगे? समय एकीभाव से... समय आता है न? वह तो वस्तु का स्वरूप है। वस्तु का स्वरूप उस प्रकार ध्रुव रहकर पर्याय परिणमति है और नित्य परिणामी वह वस्तु है, इसलिए यह शब्द ही आता है। आता है, लावे कौन? करे कौन? समझ में आया?

ऐसा शब्द बनाओ। बनता है? शब्द की रचना आत्मा कर सकता है? (नहीं)। वह तो कल आया था। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आया था न अन्तिम में? अक्षर से बनता है। सम्+अय। अनन्त परमाणु... सम्+अय+सार। समयसार... समय—सम्+अय। समय (शब्द) तो अनन्त परमाणु का बना है। परमाणु की-जड़ की पर्याय आत्मा कर सकता है? ये तो जड़ है। ये आवाज जड़ है, यह आत्मा कर सकता है? समझ में आया? ईश्वर जगत का कर्ता है? उसी प्रकार आत्मा वाणी का—जड़ का कर्ता है? ईश्वर को कर्ता जगत का माने और वाणी का कर्ता आत्मा को माने—दोनों एक दृष्टि है। दोनों की मिथ्या दृष्टि है। समझ में आया? दोनों मिथ्यादृष्टि के वर्ग में से निकलते हैं। फिर ऐकेडिया के वर्ग में कोई पहले नम्बर हो, कोई अन्तिम नम्बर हो। सब ऐकेडिया नम्बर में है। मिथ्यादृष्टि के वर्ग में सब हैं। ये जैन में आया नहीं। समझ में आया? ऐई पोपटभाई!

सार.... **उपादेय है जीववस्तु...** देखो! भगवान आत्मा... उपादेय में फिर आगे लेंगे विशेष, हों! शुद्ध उपादेय, ऐसा। उसको मेरा नमस्कार। **उपादेय है जीववस्तु...** वस्तु ज्ञायकमूर्ति प्रभु, वही आदरणीय है, ध्रुवस्वरूप ज्ञायकभाव वही उपादेय है, आदरणीय है।

दूसरा कोई आदरणीय है नहीं। समझ में आया? ये तो पुस्तक बाहर बहुत आ गये हैं। सबके पास होगा। घर पर भी होगा। ये कलशटीका। हिन्दी भी हो गयी, गुजराती भी हो गयी। यह तो गुजराती वाँचता... ये तो सब पढ़कर हो गया है, हों! रेकॉर्ड में भी उतर गया है पहले। यहाँ तो गुजराती वाँचते हैं। परन्तु यह हिन्दी हैं तो थोड़े दिन वाँचा जायेगा, फिर गुजराती लेंगे। यह गुजराती में शुरुआत में लेना था। परन्तु यह गुजराती वाँचें तो अन्तर पड़ जाये। मेहमान हैं, हिन्दी हैं, तो थोड़ा लेते हैं। यह तो फिर मंगलाचरण करना। क्या है? ये गुजराती पहले... कहो, समझ में आया?

सार उपादेय **उसको मेरा नमस्कार....** अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, ओहो! भगवान! समय उसमें जीव वह सार, ऐसी चीज़... सार कहते हैं न? लकड़ी के बीच में सार आता है... सार-सार वस्तु कहेंगे? ऐसे आत्मा आनन्दघन... भिन्न—कर्म से भिन्न, शरीर से भिन्न, राग से भिन्न, ऐसा आनन्दघन भगवान, वह सार है। वही सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। मिथ्यादृष्टि को उपादेय नहीं। मिथ्यादृष्टि तो राग की या द्वेष की क्रिया करते, यह मेरी क्रिया है ऐसा मानते हैं। वह उपादेय आत्मा को मानते नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को ऐसा आत्मा उपादेय है। उपादेय समझे? आदरणीय, आश्रय करनेयोग्य उपादेय, अपने हित के लिये जिसका शरण करनेयोग्य है, वह ध्रुवस्वभाव भगवान ज्ञायक आत्मा, वही आदरणीय करनेयोग्य है। समझ में आया?

इस विशेषण का यह भावार्थ—सार पदार्थ जानकर चेतन पदार्थ को नमस्कार प्रमाण रखा। देखो! सार पदार्थ जानकर चेतन पदार्थ को नमस्कार सच्चा रखा। **असारपना जानकर अचेतन पदार्थ को नमस्कार निषेधा।** जड़ को नमस्कार है नहीं। पीछे स्पष्टीकरण आयेगा वाणी में। बाद में व्यवहार कहेंगे वाणी... चैतन्य अनुसारी वाणी है, वह पीछे कहेंगे। समझ में आया?

आगे कोई वितर्क करेगा कि सर्व ही पदार्थ अपने-अपने गुण-पर्याय विराजमान है... देखो! यह तो राजमलजी पहले सिद्ध करते हैं कि महाराज! यह सारपना... **कोई वितर्क करेगा कि सर्व ही पदार्थ...** आत्मा, परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल जितने जगत में पदार्थ हैं, वे सब अपने गुण-पर्याय से स्वाधीन हैं। समझ में आया?

अपने-अपने गुण-पर्याय में विराजमान हैं। कोई दूसरे के कारण से नहीं। प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्तियाँ अर्थात् गुण और पर्याय अर्थात् अवस्था में विराजमान है और स्वाधीन है। दो शब्द हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्याय से विराजमान हैं। देखो! अपनी पर्याय पर से विराजमान है, ऐसा नहीं। विराजमान अर्थात् शोभित है। अपने गुण-पर्याय से ही उसकी शोभा है, पर के कारण से शोभा है ही नहीं। परमाणु लो, एक आत्मा लो। अपने-अपने गुण और पर्याय जो है। परमाणु में अपने-अपने गुण-पर्याय हैं—उससे स्वाधीन है और शोभता है। समझ में आया?

कोई किसी के आधीन नहीं। इतना तो सिद्ध करते हैं, लो। एक आत्मा कर्म के आधीन नहीं, कर्म आत्मा के आधीन नहीं, परमाणु आत्मा के आधीन नहीं, आत्मा परमाणु के आधीन नहीं। इतनी बात से सारी बात शुरुआत करते हैं। यहाँ तो कहे कि नहीं, मैं पर का कर सकता हूँ, मैं शरीर का कर सकता हूँ। धूल में करता है? यह तो धूल मिट्टी है, जड़पदार्थ है। जड़ का कर सकता है? कहो, समझ में आया?

किसी के आधीन नहीं। जीव पदार्थ का सारपना कैसे घटता है? शिष्य का प्रश्न है। जीव का सारपना कैसे घटता है? प्रत्येक पदार्थ अपनी अनन्त शक्ति-गुण और पर्याय से विराजमान है, शोभित है। पर का कोई आश्रय है नहीं। सब स्वाधीन है। यहाँ तो सबको स्वाधीन कहा। निगोद भी स्वाधीन, परमाणु भी स्वाधीन, स्कन्ध में परमाणु स्वाधीन—सबको स्वाधीन कहा। यहाँ तो (वे) कहे कि सिद्ध भी कथंचित् स्वाधीन और कथंचित् पराधीन हैं। अरे भगवान! गजब किया। सिद्ध भी कथंचित् स्वतन्त्र हैं और धर्मास्ति नहीं है तो कथंचित् परतन्त्र हैं। ऊपर धर्मास्ति नहीं तो (आगे) जाने को, तो परतन्त्र हो गये। अरे भगवान! क्या करता है तू प्रभु? आहाहा! वह उसका स्पष्टीकरण करेंगे कि सारपना उसको... सब विराजमान है, स्वाधीन है, किसी के आधीन नहीं, तो यह सारपना उसको—आत्मा को दिया उसका क्या कारण? वह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १३, गुरुवार, दिनांक १७-८-१९६७
कलश - १, प्रवचन नं. २

यह समयसार कलश चलता है। पहला कलश है। (नमः) समयसाराय। नमस्कार इस प्रकार कहा। समयसार को नमस्कार। समय शब्द में तो छहों द्रव्य को समय लागू होता है। छह द्रव्य... भगवान ने कहा न, छह द्रव्य है वस्तु। छहों को सम्+अय (अर्थात्) अपना-निज ध्रुवपना रखकर परिणमन बदलता है। समय में से ऐसा निकलता है। तो सर्व को समय कहने में आता है। उसमें सार क्या है? वह बात है यहाँ। छह द्रव्य में सार है एक आत्मा। समझ में आया? यह सारपना तो आत्मा को घटता है, दूसरे कोई पदार्थ को घटता नहीं। कहते हैं कि सार(पना) आत्मा को क्यों घटता है? ऐसे प्रश्न किया। क्योंकि सर्व ही पदार्थ अपने-अपने गुण-पर्याय में विराजमान हैं। इसलिए तो शंका स्वयं उठी है। इतनी तो लोगों की योग्यता है कि सर्व पदार्थ अपने गुण और पर्याय से स्वाधीन स्वाधीन है, समझ में आया? ऐसा तो वह मानता है। ऐसा ले लिया है। इतनी तो पात्रता है, ऐसा टीकाकार ने मान लिया है।

मुमुक्षु : इसका अर्थ यह है कि यह पात्रता न हो, वह सुनने लायक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने के लायक नहीं। प्रत्येक पदार्थ, आत्मा हो या परमाणु हो... भगवान ने छह द्रव्य देखे, (उसमें) प्रत्येक पदार्थ द्रव्य अर्थात् वस्तु है, उसमें गुण है, कायम रहनेवाली शक्ति और वर्तमान उसकी अवस्था। इतना तो टीकाकार ने श्रोताओं को स्वीकार कर लिया कि इतना तो श्रोता (मानता) है कि प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्याय से विराजमान है और स्वाधीन है। इतना तो वह (श्रोता) स्वीकार करता है। समझ में आया?

ये आत्मा और परमाणु (आदि) सब पदार्थ अपने-अपने शक्ति-गुण और पर्याय— वर्तमान दशा उससे विराजमान है, विराजमान-शोभित है। समझ में आया? शोभित है और स्वाधीन है। समझ में आया? प्रत्येक आत्मा चाहे तो निगोद का हो, चाहे तो सिद्ध, चाहे तो साधक, चाहे तो परमाणु या अखण्ड पिण्ड रजकण का, वह प्रत्येक वस्तु अपनी त्रिकाल शक्ति अर्थात् गुण और वर्तमान दशा उससे ही शोभित है, विराजमान अर्थात् शोभित है। उससे उसकी शोभा है। समझ में आया?

चाहे तो निगोद में हो, तो भी अपने गुण-पर्याय में उसकी शोभा है। पर के कारण से वह है नहीं। और स्वाधीन है। दूसरा शब्द लिया। ऐसा लिया न? विराजमान है और स्वाधीन है। प्रत्येक आत्मा स्वाधीन है। तो कोई कहे कि कर्म के आधीन (है और) कर्म कराता है। ऐसी बात है नहीं। आधीन हो जाये, परन्तु स्वाधीन होकर आधीन होता है। अपनी स्वतन्त्रता रखकर कर्म के निमित्त में आधीन होता है, परन्तु (इसमें) भी वह स्वाधीन है। विकारपने परिणमता है, निमित्त के आधीन, वह भी स्वाधीनपने परिणमता है। पर के कारण से है, ऐसा नहीं। सेठी! समझ में आया?

इतनी स्वीकारता तो टीकाकार ने श्रोताओं में (मानी), पीछे दूसरी बात करते हैं। इतनी तो श्रोताओं में योग्यता होनी चाहिए कि प्रत्येक वस्तु गुण-पर्याय में है तो प्रत्येक अपने से ही शोभती है, टिकती है, रहती है, विराजमान है और स्वाधीन है। राग आदि हो तो भी स्वाधीनता से राग करता है। कोई परपदार्थ जबरदस्ती राग कराता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि 'सत् द्रव्य लक्षणम्' प्रत्येक पदार्थ का होनापना उसका लक्षण है और 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'। प्रत्येक पदार्थ अपनी नयी-नयी अवस्था से उत्पन्न होता है, पुरानी अवस्था से व्यय होता है, जाति से ध्रुव होता है। वह तो उसका सत्पना है, वह सिद्ध किया भाई यहाँ। ये सिद्ध किया कि प्रत्येक वस्तु अपने गुण और पर्याय (अर्थात्) ध्रुव और अवस्था उससे शोभित है, टिकती है, रहती है, शोभा है, उसका स्वावलम्बी ऐसा ही सत्त्व है। समझ में आया? और स्वाधीन है। पर के आधीन होना, वह भी स्वाधीन है। समझ में आया?

कोई किसी के आधीन नहीं... स्वाधीन है, यह अस्ति से कहा। अब नास्ति से कहते हैं। कोई किसी के आधीन नहीं। आत्मा कर्म के आधीन है, कर्म कराता है—ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। बड़ा प्रश्न अभी यही वाँचने में आता है कि कर्म ही सब कराता है। आहाहा! क्या करे? कर्म के कारण ही इस छोटे शरीर में रुकना पड़े, बड़े शरीर में रुकना पड़े। इस शरीर के कारण, ऐसा। यहाँ शरीर के कारण कहा है इसमें। शरीर इतना है न, तो इतने में रुकना पड़े। इतना तो शरीर के सम्बन्ध में पराधीन है या नहीं? यह शरीर के कारण से है। नहीं, नहीं, ऐसा है ही नहीं। अपनी पर्याय की योग्यता से वहाँ रहता है, शरीर के

कारण से नहीं। शरीर बड़ा हो तो बड़ा होना पड़े, शरीर के कारण से, ऐसा नहीं। समझ में आया ? देवीलालजी !

शरीर प्रमाण रहना पड़े या नहीं ? देखो ! बड़ा शरीर हो ... ऐसा होता है, ऐसा। कर्म प्रमाण लिखा ही नहीं, शरीर प्रमाण लिखा है। देखो ! शरीर प्रमाण से तुम्हें भी रहना पड़ता है तो इतना तुम शरीर से पराधीन हो।—ऐसा है नहीं। अपनी पर्याय ऐसी करने में वह चीज़ स्वतन्त्र है। उस समय शरीर प्रमाण से व्यंजनपर्याय-आकृति करने में आत्मा स्वतन्त्र है। समय-समय की अपनी स्वतन्त्रता-स्वाधीनता से ऐसी आकृति में रहता है। समझ में आया ? शरीर के कारण से नहीं। पहले छोटा शरीर था तो उस प्रमाण से रहा, बड़ा हुआ तो उस प्रमाण से रहा, शरीर प्रमाण से (आकार) करना पड़ा—ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या देखने में आता है ? होता है उससे (ऐसा) देखने में आता है ? देखते हो कहाँ से ?

मुमुक्षु : शरीर प्रमाण....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर प्रमाण... परन्तु होता है अपने कारण से। तुम देखते हो उससे, वह दृष्टि में अन्तर है।

मुमुक्षु : शरीर के कारण से नहीं, अपने कारण से....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर में भी समय-समय में अपनी पर्याय की आकृति और परिणमन-बदलना अपने से होता है, पर से नहीं। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' वह बात सिद्ध की है। प्रत्येक समय में प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्ययपने स्वाधीन है। शरीर का उत्पाद-व्यय शरीर में है, आत्मा का उत्पाद-व्यय, नयी अवस्था हो या न हो अपने में है। समय-समय में अपनी आकृति में रहनेवाला है, पर के कारण से ऐसे रहना पड़े, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

कोई किसी के आधीन नहीं... आत्मा कर्म के आधीन नहीं। अपने कारण से आधीन हो, परन्तु कर्म उसको आधीन कर दे, ऐसी वस्तु नहीं। परद्रव्य है। ईश्वर को कर्ता जगत का माने और ये जैन ऐसे माने कि पर के कारण से मैं पराधीन हो गया—दोनों की

दृष्टि विपरीत एक जाति की हो गयी। पोपटभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग। वह (अज्ञानी) कहे कि ईश्वर ने जगत किया, ये कहे कि हमें शरीर के कारण से पराधीन अन्दर होना पड़े। तो यह शरीर तेरा ईश्वर हो गया। कर्म तेरा ईश्वर हो गया (क्योंकि) उसके कारण से तुझे रहना पड़े। समझ में आया? ऐसा है नहीं।

कोई किसी के आधीन नहीं। जीवपदार्थ का सारपना कैसे घटता है? शिष्य का प्रश्न अब आया। स्वाधीन है, शोभित है, किसी के आधीन नहीं, अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव से विराजमान है। तो सारपना तो सबको घटता है? **जीवपदार्थ का सारपना कैसे घटता है?** भगवान! छह पदार्थ में जीव को ही तुम सार... सार... सार... कहते हो, वह कैसे घटता है? **उसका समाधान करने के लिये दो विशेषण कहे।** कहे अर्थात् कहने में आता है। दो विशेषण कहने में आता है। समझ में आया? **कैसा है भाव?** कैसा है भगवान आत्मा का भाव? आत्मा का भाव। '**स्वानुभूत्या चकासते... सर्व भावान्तरच्छिदे..**' एक बात।

इस अवसर पर स्वानुभूति कहने से निराकुलत्व... सुख लेना है मूल तो। सार में सार सुख लेना है। **इस अवसर पर स्वानुभूति कहने से...** आत्मा अपनी शुद्ध अनुभूति करने से, अपने स्वभाव का आश्रय लेकर जो अनुभव करता है तो **स्वानुभूत्या चकासते... निराकुलत्वलक्षण शुद्धात्म परिणमनरूप...** उसमें आकुलतारहित निराकुल लक्षणवाला शुद्धात्मपरिणमनरूप... देखो! शुद्ध आत्म परिणमनरूप **अतीन्द्रिय सुख जानना।** ध्यान रखना। सार में दो शब्द लगा दिया। आत्मा को सार क्यों कहा? एक तो '**स्वानुभूत्या चकासते... सर्व भावान्तरच्छिदे..**' और पीछे कहेंगे कि वह सुख हितरूप है, दुःख अहितरूप है। वह पीछे कहेंगे। पहले ये लेते हैं। भगवान आत्मा अपने में पुण्य-पाप का राग का लक्ष्य छोड़कर, अपना शुद्ध भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी अनुभूति करने से—उसका अनुभव करने से निराकुलता—आकुलता से रहित ऐसा निराकुल लक्षण अतीन्द्रिय सुखपना उसमें उत्पन्न होता है। समझ में आया?

शुद्धात्म परिणमन... वापस वह पर्याय है। क्या कहते हैं? आत्मा है, वह वस्तु हुई, उसमें गुण है, ज्ञान, आनन्द गुण है त्रिकाल। त्रिकाल आनन्द, त्रिकाल ज्ञान गुण है। तो उसका परिणमन करने से आत्मा में निराकुल सुख का-आनन्द का परिणमन-पर्याय प्रगट होती है। आहा! समझ में आया?

स्वानुभूति कहने से निराकुलत्वलक्षण... भगवान आत्मा... परमाणु किस प्रकार से कि दूसरा द्रव्य परिणमन करके सुख उत्पन्न कर सकता है ? उसमें सुख है ? है ही नहीं। जड़ में सुख है ? परमाणु में है ? शरीर में है। पैसा में है ? धूल में भी पैसा में नहीं। हैरान हो गया पैसा हमारा मानकर। पोपटभाई ! पैसा तो जड़ है, धूल है, पुद्गल है। भगवान ने छह द्रव्य में पुद्गल कहा उसको। भगवान ने छह द्रव्य कहे—आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। शरीर तो पुद्गल है, पैसा पुद्गल है। पुद्गल उसका स्वामी है। आत्मा उसका स्वामी है ?

मुमुक्षु : परन्तु हमारे काम में आता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : काम में धूल में आता नहीं। क्या काम में आता है ? ऐई सेठी ! राग करने में निमित्त होता है, दुःख होने में पैसा निमित्त होता है।

मुमुक्षु : इतना तो लाभ हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का लाभ हुआ।

मुमुक्षु : सुख होने में निमित्त नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख होने में निमित्त है ? सुख का अनाकुल अनुभूति लक्षण है। कहते हैं न यहाँ ? समझ में आया ? सार में कैसा घटाया है। सार क्यों है ? कि अपना आत्मा अपनी अनुभूति से... भगवान आत्मा द्रव्य है न वस्तु—पदार्थ और उसके गुण हैं आनन्द, ज्ञान (आदि) अनन्त गुण हैं। उसके गुण की पर्याय स्वानुभूति... देखो भाषा ! ये गुण का अनुभव करता है आत्मा, तो स्वानुभूति—निराकुल लक्षण ऐसा शुद्धात्मपरिणमन—शुद्धस्वरूप का परिणमन—शुद्धस्वरूप का पर्याय में होना, ऐसा जो सुख... समझ में आया ? अतीन्द्रिय सुख। वह अतीन्द्रिय सुख आत्मा में होता है। ऐसा सुख कोई परपदार्थ में तीन काल में होता नहीं। समझ में आया ?

सार(पना) क्यों घटता है जीव को ? और वह कहते हैं कि शुद्ध को सार घटता है, भाई ! ऐसा है। अशुद्ध (जीव) को कहा भले। सारे पदार्थ विराजमान हैं, स्वाधीन हैं—वह बराबर है। परन्तु सार क्यों कहा ? जीव को सार क्यों कहा ? यह जीव कैसा है ? कि जो अपना शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आनन्द प्राप्त किया, केवलज्ञानी

परमात्मा को केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द प्रगट किया, ऐसा है आत्मा। अपने में गुण जो आनन्द का ज्ञान पड़ा है, उसका अन्तर अनुभव करके शुद्धात्मानुभूति निराकुलता लक्षण—जिसमें आकुलता नहीं, ऐसा निराकुल लक्षण—ऐसा स्वरूप शुद्धात्म-परिणमनरूप—शुद्ध आत्मा की अवस्थारूप—शुद्धदशारूप अतीन्द्रिय सुख वहाँ होता है। आहाहा! समझ में आया?

देखो! कैसी रचना राजमलजी ने की है टीका! 'पाण्डे राजमल जैन धर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' सुख और सुख की भाषा तीन में घटायेंगे। सुख तो एक ही घटाना है, परन्तु अनुभूति में अपूर्ण सुख और पूर्णता में पूर्ण सुख। **सर्व भावान्तरच्छिदे,...** केवलज्ञान... उसका यह लक्षण जीव में है, दूसरे में है नहीं। तो उसको सारपना घटता है। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो! **इस अवसर पर...** यहाँ हमें जो कहना है उसमें... जगत को सुख चाहिए है न? जगत तो सुख इसलिए झांवा नाखे है न? झांवा समझते हो? क्या कहते हैं? झपट्टा। पैसा में सुख है, स्त्री में सुख है, इज्जत में सुख है, मकान में सुख है, कपड़े में सुख है, जेवर में सुख है, मौसम्बी में सुख है, लड्डू में सुख है, धूल में सुख है, कारीगरी देखने में सुख है। धूल में भी नहीं, सुन तो सही! कहते हैं, सुख तो तेरे में है—यह आत्मा में सुख है। आत्मा में भगवान ने सुखा देखा है और है। ऐसा सुख की जो प्राणी अनुभूति करके शुद्धात्म परिणमन... परिणमन... परिणमन... परिणमना—होना... जो आत्मा में सुख है, उसी सुखरूप परिणमन अवस्था में होना, वह अतीन्द्रिय सुख (पाने) के लिये आत्मा को सार कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध को सार कहते हैं, ये सिद्ध करना है। शुद्ध को सार... भाई! अशुद्ध को नहीं, शुद्ध को सार। स्वाधीन भले हो, हो, परन्तु सार नहीं। सार तो भगवान आत्मा, अपनी शक्ति में जो मौजूदगी आनन्द की है, उसमें अन्तर एकाकार होकर... अन्तर एकाकार होकर आनन्द का प्रवाहरूप परिणमन हो, उस कारण से अतीन्द्रिय सुख प्राप्त हो। अतीन्द्रिय सुख प्राप्त होकर जानने में आता है, अनुभव में आता है, वह जीव में ही होता है। उस कारण से उसको सार कहने में आया है। समझ में आया? उसमें तो विधि भी बता दी कि आनन्द कैसे प्रगट हो कि स्वानुभूत्या से। समझ में आया?

चकासते... चकासते में अवस्था ली है। ऐसा लिया है न, वह सुखरूपी परिणमन लेना है न। सुखरूप अवस्था को यहाँ लेना है। तो **चकासते** (अर्थात्) प्रसिद्धि हो गयी। आत्मा स्वरूप में त्रिकाल आनन्दरूप था, उसमें एकाकार होकर आनन्द की पर्याय में प्रसिद्धि हुई, वह आनन्द द्वारा आत्मा की प्रसिद्धि हो गयी। समझ में आया? आत्मख्याति नाम... आत्मख्याति का ये श्लोक है न? पहला श्लोक है। उसमें वह भी आ गया। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप जो है, वस्तु में आनन्द पड़ा है, त्रिकाल अतीन्द्रिय आनन्द। परमात्मा को जो प्रगट होता है, वह कहाँ से प्रगट होता है? बाहर से आता है? बाहर में लटकता है कि आ गया? अन्दर में पड़ा है। स्वभाव में सब सामर्थ्य पड़ा है। तो कहते हैं कि उसका अनुभव करने से जो पर्याय में शुद्धात्म परिणमनरूप अनाकुल आनन्द आया, वही सारपना है। उससे ऐसे जीव को सारपना है, ऐसा। समझ में आया? जेठालालभाई!

उसरूप अवस्था है जिसकी... आत्मा की। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा... देखो! कोई पदार्थ में आनन्दरूप अवस्था है, कोई पदार्थ में? और अशुद्ध आत्मा में आनन्दरूप अवस्था है? अवस्था...जिसमें अन्दर में आनन्दरूप अवस्था शक्ति में पड़ी है, उसकी अनुभूति करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के साथ में आत्मा का आनन्द का परिणमन हुआ, उससे वह शोभायमान है, वही उसकी अवस्था है। अशुद्ध उसकी वास्तविक अवस्था नहीं। विकारी अवस्था वास्तव में उसकी नहीं। वह तो आगन्तुक अवस्था, उपाधि, मैल अवस्था है। आहाहा! समझ में आया?

मेहमान आते हैं तो आगन्तुक कहते हैं। मेहमान कितने दिन रहे? दो दिन, चार दिन, आठ दिन, महीना, दो महीना। अभी इतना समय ही है नहीं। काम बहुत हो अर्थात् कि एक दिन, दो दिन। बस अब तो बहुत भाई! पहले तो महीना-महीना रहते हों, महीना-महीना। हमारे भाई वह है न ब्राह्मण तरवाडी... तरवाडी। हमारे तरवाडी ब्राह्मण गाँव में हैं। एक महीना बारात रहती। बारात ऐसी वह एक महीना रहे। बारात का रिवाज था उनका। एक महीना बारात रहे। एक महीने का खर्च... एक महीना जान... एक महीना रहे। वहाँ लोग कहते—तरवाडी कहते कि हमारी बारात आवे तो एक महीना रहे। ऐसी पहले निवृत्ति थी। अभी बनियों को निवृत्ति कहा? एक दिन मुश्किल-मुश्किल से निवृत्ति निकाले। आज और आज लग्न करे और शाम-रात्रि वया आवे। पहले तो साधारण अपने बनियों में

नव टंक था। सात टंक तो जीमना था। नारणभाई! खबर है? सात टाईम तो साधारण। जाय उस दिन और तीन दिन। उसमें जो करे... अन्तिम क्या कहते हैं? प्रीतिभोज। वरोठी करे तो दो समय दूसरे हों। नव समय हो। चार दिन पूरे। लड़के-बड़के जाये तो खुशी हो। वह... निरांते चार-चार दिन रहे। अब निवृत्ति कब यहाँ? मुम्बई में दो बजे जाये और सायं ६ बजे घर वापस आये। यहाँ कहते हैं, उसमें कोई सुख नहीं। समझ में आया?

अशुद्ध दशा आगन्तुक, मैली है, उसको सार कहने में आता नहीं। ये तो संसार है। आहाहा! सार तो भगवान आत्मा अपना अनुभव करके... देखो! .... द्रव्य-गुण में जैसा आनन्द है ऐसा पर्याय में अनुभव करके प्रगट करते हैं। अतीन्द्रिय सुख चौथे गुणस्थान से आया और पूर्ण सर्वज्ञ हो जाये, वहाँ पूर्ण सुख है। सुख से सारपना ले लिया है, शुद्ध को सारपना ले लिया है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को, शुद्ध भगवान आत्मा ध्रुव, उसकी दृष्टि शुद्ध पर होने से उसके परिणमन में शुद्धता को आनन्द आये, ऐसे उसको सार घटता है। समझ में आया?

प्राणभाई! वैसे पैसे-बैसे का सारपना घटित नहीं होता, ऐसा कहते हैं। तुम्हारे तो इस समय बहुत था। इसके विवाह में इतने वर्ष पहले तीस हजार का खर्च था। तीन हजार का मण्डप, तीस हजार का खर्च। कितने वर्ष हुए? ५० वर्ष हुए होंगे या चालीस? पहला विवाह हुआ, लो! (संवत्) १९७६। २४ और २३—४७। ४७ वर्ष पहले। तीस हजार रुपये विवाह में डाले थे इसकी माँ ने। तीन हजार का मण्डप, तीस हजार का विवाह। अभी उन तीस हजार के कितने होते हैं? सुख होगा उसमें कुछ? समझ में आया? आहाहा! धूल में। उस समय तो यह भी माने और उसकी माँ भी माने कि आहाहा! हम तो पैसेवाले सुखी हैं, देखो! हम गृहस्थ व्यक्ति हैं तो अपने विवाह में हजार-दो हजार लोग हों? समझ में आया? ऐसा सुना था, हों! कोई कहता था। उसे तो खबर हो न!

तीस हजार का विवाह। ४७ वर्ष पहले तीस हजार का, पहले विवाह में तीस हजार का खर्च। मण्डप के तीन हजार न! सुखी होंगे ये सब? कहते थे, बहुत सुखी हैं। इसका पिता १५ लाख छोड़कर गया। सुना था, जो हो वह। परन्तु वह सुखी है? धूल में भी नहीं। कौन कहता है सुखी? ऐ पोपटभाई!

मुमुक्षु : सुखी हो तो पोरबन्दर छोड़कर मुम्बई जाये किसलिए ?....

पूज्य गुरुदेवश्री : इकट्ठा करना और सम्हालने का भाव, वह दु:ख; प्राप्त करने का भाव, वह दु:ख; रक्षा का भाव, वह दु:ख, यह खर्च करने का भाव, वह दु:ख, लो! क्योंकि आकुलता है। पैसा रखने का भाव दु:ख, मिलाने का—कमाना दु:ख और उसका खर्च करना (दु:ख, पश्चात्) चाहे जहाँ खर्च करे। वह धर्म के नाम से करे तो शुभराग है, वह आकुलता है। समझ में आया ? वह सुख नहीं, वह सार नहीं। आहाहा!

सार तो.... भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर सर्वज्ञदेव ऐसा फरमाते हैं, भगवान! तू तो आत्मा हो न ? प्रभु! तेरे में आनन्द है न ? सुख है न ? तुम्हें सुख की अभिलाषा है न ? तुम सुख के लिए झांवा-झपट्टे मारते हो। सुख तो अन्दर में है न प्रभु ? अन्दर में दृष्टि करने से अनुभूति का सुख का आना वही उसका सारपना है। आहाहा! समझ में आया ? आठ वर्ष की लड़की हो, अनुभूति हो तो आनन्द ऐसा आवे। पति हो, चक्रवर्ती हो, (परन्तु) मिथ्यादृष्टि हो (तो) दु:खरूप असार है। अरे अरे! गजब भारी! प्रवीणभाई! आया ? राजा हो और खम्मा खम्मा होता हो, हजारों राजा ऐसे चँवर ढालता हो। वहाँ दु:ख है, असार है। और उसकी स्त्री हो छोटी उम्र की बीस वर्ष की, धर्मी सम्यग्दृष्टि हो....

ऐसे श्रेणिक राजा लो। श्रेणिक राजा की चेलना रानी। समझ में आया ? राजा श्रेणिक अर्थात् बड़ा राजा। अनेक हजारों राजा उनकी सेवा करे तैनात में उभा होय। बहुत हीरों का बड़ा सिंहासन। खम्मा अन्नदाता। मिथ्यादृष्टि था श्रेणिक राजा। असार... चेलना रानी सम्यग्दृष्टि... सम्यग्दृष्टि... अनुभूति सार। आहाहा! देखो! समझ में आया ? समझाया, रानी ने पति को समझाया और गुरु सन्त के पास ले गयी और उसने सम्यग्दर्शन पाया, अनुभूति पायी, तीर्थंकरगोत्र बँधा। आयुष्य नरक का बँध गया था (तो) पहली नरक में जाना पड़ा। श्रेणिक राजा वहाँ से निकलकर तीर्थंकर, अगली चौबीसी में तीर्थंकर होंगे। लड्डू बँध गया, फिर लड्डू में से घी निकालकर पूड़ी न बने। लड्डू बन गया उसमें से घी निकालो और दूसरे काम में... घी तो वहाँ रह जायेगा। गुड़ निकालो। गुड़ तो वहाँ रह गया। या तो थोड़ं घी डाला या सुखाओ। दूसरा कोई उपाय है नहीं। ऐसा जो नर्क के आयुष्य का लड्डू बँध गया, स्थिति घट जाये। समझ में आया ? कां स्थिति बढ़ जाये,

परन्तु गति न फिरे। गति में जाना पड़ा, स्थिति घट गयी। चौरासी हजार... परन्तु अनुभूति का सारपना साथ में है, सुखी है। सारपने के कारण वहाँ से निकलकर यहाँ आयेंगे और तीर्थंकर होंगे। महावीर भगवान थे ऐसे ही श्रेणिक राजा आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे और केवल पाकर मोक्ष हो जायेगा। समझ में आया?

इस जगत में तो आत्मा का अनुभव वह सुखरूप, वह सार है, कोई दूसरा सार नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? ११ अंग का, ९ पूर्व का जानपना किया वह सार नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! आहाहा! और कषाय की मन्दता करके कोई पाँच महाव्रत आदि लिया, वह साररूप नहीं, ऐसे कहते हैं यहाँ। आहा! सार तो इसको कहते हैं भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर केवलज्ञानी... अनन्त तीर्थंकर हुए, सर्वज्ञ विराजमान हैं, महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा विराजमान हैं, लाखों केवली विराजमान हैं। साथ में हैं महाविदेहक्षेत्र में मनुष्यपने सीधा, हों। समझ में आया? तीन काल के तीर्थंकरों और केवली ऐसे फरमाते हैं कि सार किसको कहते हैं? आहाहा! भगवान आत्मा अपने सुखस्वरूप का पर्याय में अनुभव करे—अनुभूति करे, उसको सार कहने में आता है। तो शुद्धजीव का सार कहने में आया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक बात।

उसरूप अवस्था है जिसकी... प्रसिद्ध हुआ, निर्मल प्रसिद्धि उसका नाम आत्मख्याति है न? आत्मा अपने आननद से प्रसद्धि हुआ, शुद्धता से प्रसिद्ध हुआ, वही आत्मख्याति। समझ में आया? अपना शुद्धस्वरूप अन्दर पूर्ण है, उसका अवलम्बन लेकर पर्याय में शुद्धता से प्रसिद्ध हुआ, वही आत्मख्याति-आत्मप्रसिद्धि, वही आनन्दरूप, वही साररूप। समझ में आया? यहाँ तो, शुक्ललेश्या की हो तो ये सार नहीं। मिथ्यादृष्टि है और शुक्ललेश्या है, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि परिणाम करते हैं, तो कहते हैं कि अशुद्ध है, यह सार नहीं। यह सार नहीं। कहते हैं...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं, कहे कहे। महाव्रत राग है। क्या राग लेना है? आ जाता है। स्वरूप की स्थिरता करना ये अपना पुरुषार्थ है। समझ में आया? कहते हैं... यहाँ तो तीन बोल में सार घटाया कैसे राजमलजी ने! इसे निकाला कि सारपना क्यों घटता है? एक

तो आत्मा अनुभव करता है तो आनन्द आता है, आनन्द आता है ये शुद्ध जीव को आनन्द आता है। तो शुद्ध जीव ही सार कहने में आते हैं। अशुद्धजीव सार नहीं। आहाहा!

और **सर्व भावान्तरच्छिदे...** दूसरा शब्द है। उसमें भी आनन्द बताना है हों। पूर्ण ज्ञान सहित आनन्द। **'सर्वभाव' अर्थात् अतीत-अनागत-वर्तमान पर्याय सहित...** जब पूर्ण ज्ञान-केवलज्ञान होता है अनुभूति करते-करते... भगवान आत्मा को केवलज्ञान होता है तो एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक आत्मा देखता है, इसको केवलज्ञानी कहते हैं। यह केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वह भी आत्मा के सार में घटता है, क्योंकि उसमें भी अनन्त आनन्द आता है। समझ में आया?

एक तो अनन्त केवलज्ञान सिद्ध करते हैं और उसमें साथ में शुद्ध आनन्द आता है। शुद्ध है न? शुद्ध हो गया तो उसको सारपना घटता है। साधक सार को पूर्ण सार—दो सार, ऐसा कहते हैं। **सर्वभाव अतीत...** भूतकाल के अनन्त द्रव्य, गुण और पर्याय भगवान के ज्ञान में आ जाते हैं। आत्मा के ज्ञान में अनुभूति करते-करते जहाँ पूर्ण केवलज्ञान होता है, तो जो अतीत अनन्त काल हुआ, तो सब ज्ञान में आ जाता है, कोई बाकी नहीं। भूतकाल की कोई बात भगवान को ख्याल में न हो, ऐसा होता नहीं। **अतीत, अनागत...** भविष्य। अनागत अनन्त काल... अननत काल... अनन्त काल सब उसके ख्याल में आ जाता है। काल का तो अन्त नहीं। अन्त नहीं तो उसका ख्याल कैसे आ जाता है? अनागत—(जिसका) अन्त नहीं है, ऐसा ज्ञान में आ गया है। अनादि-अनन्त... शुरुआत नहीं, अन्त नहीं, अनादि है वस्तु। कभी आत्मा नहीं था? कभी नहीं था? कभी नहीं होगा? है... है... है... पूर्व में था, अभी है, भविष्य में रहेगा। ऐसे प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा की जो अनन्त पर्यायें बीत गयी और पर्यायें जो होगी, वह भगवान के ज्ञान में एक समय में जानने में आती है। ऐसी शक्ति हो तो शुद्ध आत्मा में है, अशुद्ध आत्मा में नहीं। शुद्धात्मा के परिणमन में तो सार कहने में आता है। आहाहा!

अतीत-अनागत-वर्तमान पर्याय सहित... देखो! भगवान (आत्मा) का ज्ञान अर्थात् अनुभूति करते केवलज्ञान होता है तो तीन काल तीन लोक के (ज्ञान में) सर्ब पर्यायें ख्याल में आ जाती है। यह जीव इस समय में मोक्ष जायेगा, इस समय में मोक्ष हुआ है—

सब भगवान के ज्ञान में (आता है), कोई बाकी नहीं है। पूर्ण ज्ञान-केवलज्ञान में क्या बाकी है? भगवान का ज्ञान पूर्ण है, उसमें कोई न जानने (में आये) ऐसा रहता नहीं। तीन काल-तीन लोक एक समय में भगवान का ज्ञान अनुभूति का ज्ञान पूर्ण होते ऐसा होता है। **सहित अनन्त गुण विराजमान...** देखो! कौन? जितने पदार्थ... भूतकाल की पर्याय को वर्तमान की अवस्था को अनन्त भविष्य की—ये **पर्याय सहित अनन्त गुण विराजमान...** पर्याय सहित गुण और गुण से विराजमान **जितने जीवादि पदार्थ...** पर्याय, गुण, द्रव्य तीनों ले लिये। समझ में आया?

देखो! कितनी टीका की है इसमें! गृहस्थाश्रम में थे। आहाहा! लोग कहे, स्त्री, पुत्र थे। स्त्री, पुत्र में नहीं थे, सुन न अब! वे तो उनके घर रहे। यहाँ कहाँ घुस गये हैं? अगमनिगम की बात है भगवान की। भगवान का मार्ग लोगों ने सुना ही नहीं कि क्या मार्ग है। मान लिया कि हम भगवान को मानते हैं। धूल भी नहीं मानते। हाँ, गम्भीर, सूक्ष्म निकाला है। देखो! पहले श्लोक में कहते हैं, एक तो **स्वानुभूत्या चकासते...** उससे सार है। एक **सर्वभावान्तरच्छिदे...** आत्मा को दो बोल लागू पड़ते हैं; इसलिए शुद्ध जीव सार है। समझ में आया? तो केवलज्ञान पूर्ण हुआ वह कैसे जानता है? कि प्रत्येक पदार्थ की अतीत, अनागत की वर्तमान पर्यायें सहित, गुणसहित जितने द्रव्य विराजमान हैं, सब भगवान के ज्ञान में एक समय में जानने में आता है। इसलिए उन्हें पूर्ण आनन्द है। भगवान को पूर्ण आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द। आत्मा में पूर्ण आनन्द प्रगट होता है, इसलिए शुद्ध आत्मा को सार कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

उनका अन्तरछेदी... अनन्त गुण, पर्याय सहित विराजमान सर्व पदार्थ हैं, **उनका अन्तरछेदी अर्थात् एक समय में युगपद्...** एक समय में—सेकेण्ड के असंख्यवें भाग को एक समय कहते हैं। आँख बन्द कर, खोले, उसमें असंख्य समय जाये। उसका छोटे में छोटा काल एक समय है। उसमें केवलज्ञानी परमात्मा युगपद् (अर्थात्) एक समय में एक साथ। भूत, भविष्य और वर्तमान एक साथ। यहीं तो पर्याय सहित लिया है। वह कहे, (जो) पर्याय अभी नहीं तो क्यों जाने? ऐसा कहते हैं वे? वर्तमान (जो) पर्याय नहीं उसे प्रगट है ऐसा कैसे जाने? प्रगटरूप नहीं, परन्तु है वैसा सब जानते हैं। **एक समय में युगपद्**

प्रत्यक्षरूप से... भगवान का ज्ञान—ये आत्मा का ज्ञान अनुभूति के कारण से जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ऐसा सारपना आत्मा में है वह जाननशील... एक समय में जाननशील है, प्रत्यक्षरूप जाननशील... क्या कहा समझे ? ये जानने का स्वभाव है। आत्मा अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करके जो केवलज्ञान प्रगट करता है, वह केवलज्ञान का जाननशील (अर्थात्) जानना स्वभाव है। तीन काल तीन लोक एक समय में जानना, (ऐसा) उसका अपना स्वभाव है। पर के कारण से नहीं, पर का नहीं, पर के आधीन नहीं। समझ में आया ?

लोकालोक है तो यहाँ ज्ञान हुआ इतना निमित्त के आधीन हुआ, ऐसा नहीं। अपनी पर्याय का जाननशील स्वभाव है। समझ में आया ? ऐसा भगवान आत्मा... द्रव्य-गुण तो शुद्ध हैं, परन्तु पर्याय में शुद्धता प्रगट करके आनन्द का स्वाद (आया) और उससे पूर्ण आनन्द ने पूर्ण केवलज्ञान प्रगट किया, वही जीवपने का सार है। समझ में आया ? यह समयसार की व्याख्या चलती है। आहाहा! कहते हैं कि वहाँ सोनगढ़ में समयसार... समयसार अर्थात् यह आत्मा। समझ में आया ? यह समयसार तो देखा न नारणभाई ये, नहीं ? कल नहीं देखा हो चाँदी का ? चाँदी का है, चार हजार का है। वह तो पर है, समयसार तो यह आत्मा है। समझ में आया ? आहाहा! गजब परन्तु अर्थ कैसा लगाया है, लो! कितनी एकाग्रता से!

एक समय में युगपद्... भगवान (आत्मा) का ज्ञान अनुभूति करके आनन्द प्रगअ किया और पश्चात् केवलज्ञान प्रगट किया, ऐसा जो भगवान आत्मा एक समय में तीन काल की पर्यायसहित, गुणसहित सब द्रव्य को एक समय में (जाने ऐसा) जाननशील स्वभाव है। युगपद्—एक समय में त्रिकाल। पहले भूतकाल जाने, पीछे भविष्यकाल जाने, पीछे वर्तमान जाने, ऐसा है नहीं। एक समय में भगवान तीन काल एक साथ जानते हैं। आहाहा! ऐसी केवलज्ञान की पर्याय आत्मा में होती है। वह केवलज्ञान के साथ अनन्त आनन्द आता है। उस कारण से आत्मा को सार कहने में आता है। आहाहा! वह बात है। आधीन तो है ही नहीं। यह तो प्रश्न ही नहीं है। किसी के आधीन है कि किसी से करते हैं, यह तो है ही नहीं। परन्तु सारपना क्यों घटता है ? कि अपने में आनन्द जो त्रिकाल पड़ा है, उसका अनुभव करके प्रगट पर्याय में आनन्द का परिणमन करता है, उसको सारपना घटता है। आहाहा! उसका नाम समयसार है। समझ में आया ?

और **एक समय में युगपद् प्रत्यक्षरूप से जाननशील...** प्रत्यक्ष... ज्ञान की (एक) समय की पर्याय... एक समय किसको कहते हैं? आँख मींचे और उघाड़े (वहाँ असंख्य समय जाये)। तीन काल का प्रत्यक्षपना... अनन्त काल में कहाँ (क्या) होगा, सब भगवान के ज्ञान में प्रत्यक्ष है। आगे-पीछे है? आगे-पीछे होगा? भगवान के ज्ञान से बाहर में आगे-पीछे होगा? अक्रम हो जायेगा? वहाँ जब होगा, तब यहाँ भगवान जानेंगे ऐसा कहते हैं कितने। ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान के अनुसार ज्ञेय नहीं। किसी के अनुसार नहीं, सुन न! ज्ञान अनुसार अपने से और ज्ञेय अनुसार अपने से है। आहाहा! यह तो पहले कहा कि अपने-अपने स्वाधीन है और शोभित है। वह तो पहले कहा। ये तो पहले स्वीकार हो गया। आहाहा! ज्ञेय हैं अनन्त पदार्थ (वे) अपने-अपने कारण से परिणम रहे हैं। केवलज्ञान हुआ तो वह आत्मा भी अपने जाननशील से परिणम रहा है। ज्ञेय है तो परिणम रहा है, ऐसा है नहीं।

इसलिए तो कहा, **जाननशील जो कोई शुद्ध जीववस्तु...** आहाहा! यहाँ तो अभी कहे कि केवलज्ञानी वहाँ जब जो होगा, तब यहाँ जानेंगे। निमित्त कौन अनिश्चित... अरे! भगवान के ज्ञान में कुछ अनिश्चित है ही नहीं। जहाँ-जहाँ जो पर्याय—अवस्था प्रगट होगी, तहाँ-तहाँ निमित्त (होगा)—दोनों सुनिश्चित अनादि-अनन्त हैं। निमित्त भी कैसा हो और पर्याय कैसी हो—वह सब सुनिश्चित अनादि-अनन्त है। भगवान के ज्ञान में ऐसा आ गया है। आहाहा! अरे! ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति करे और उसको अनुभव न हो? आहाहा! समझ में आया? भगवान ने देखा ऐसा होगा। भगवान का ज्ञान कैसा है, ऐसी जिसको प्रतीति आयी उसको तो अपना ज्ञायक आनन्दस्वरूप की प्रतीति आ गयी, तब भगवान के ज्ञान की प्रतीति आती है। आहाहा! ऐई!

(संवत्) १९७२ में हमारे (चर्चा) चली थी सम्प्रदाय में। ७२ के वर्ष। ५१ वर्ष हुए। बहुत चली थी सम्प्रदाय में झंझट। हमारे मूलचन्द कहते थे, केवलज्ञानी ने देखा ऐसा भव होगा, अभी (हम) कुछ नहीं पुरुषार्थ कर सके। केवलज्ञानी ऐसा मानते हैं और केवलज्ञानी ऐसा कहते हैं—ऐसा भाषा में आता है? केवलज्ञान की भाषा ऐसी है? ७२ के वर्ष में फाल्गुण सुद १३। कहा, ऐसा नहीं। भगवान का ज्ञान जिसको बैठा है, भगवान के

ज्ञान में 'उसको भव नहीं हैं' ऐसा देखा है। समझ में आया? आहाहा! कहा, तुम्हारे भव होंगे, हमारे भव हैं ही नहीं। उस समय कहा था। तभी अव्यक्तपने था। ऐई! ये तो अन्दर से डोकीयुं-हिलोरें बात आ रही थी न! भव कैसा? भगवान की प्रतीति जिसको हुई, उसको भव कैसा? समझ में आया?

देखने-जाननेवाला भगवान है, मैं भी देखने-जाननेवाला हूँ। बस पूरा हो गया। मैं उसकी नात का-जात का, उसी वर्ग का मैं आत्मा हूँ। उसके आत्मा से मेरा आत्मा कोई दूसरी जाति है? नहीं। बनिया अरबपति हो दशाश्रीमाली और कोई पाँच रुपये के वेतनवाला हो, परन्तु जाति तो एक है या नहीं? समान पाटे पर खाने बैठते हैं या नहीं? बाघरी (निम्न जाति का आदमी) हो पाँच करोड़वाला तो समाने पाटे पर बैठेगा? नारणभाई! होवे तो किसी को अरबों हों और कोई पाँच रुपये वेतन (वाला) गरीब व्यक्ति हो, परन्तु जाति भोज होवे (तो) साथ में बैठेगा। साथ बैठना... निकालना नहीं पड़े... बाघरी दस लाख का आसामी हो, जीमने आया तो, यहाँ नहीं, भाई! बाहर जाओ। परन्तु वह स्वयं ही नहीं आवे। अपने रिवाज है या नहीं? वह सुपारी बाँटते हैं न जब विवाह में, तब हल्का व्यक्ति हो वह दरवाजे के बाहर खड़ा रहे। वहाँ से लेकर चला जाये। और अपनी जाति हो वह अन्दर घुसे। गरीब हो तो भी अन्दर प्रवेश करे। हमारी जाति के हैं। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि प्रभु! हम आपकी जाति के हैं। समझ में आया?

'धर्म जिनेश्वर गाऊं रंगसु, भंग न पडशो प्रीत जिनेश्वर, बीजो मनमंदिर आणुं नहीं।'

पन्द्रहवें धर्मनाथ की स्तुति।

'बीजो मनमंदिर आणुं नहीं, अे अम कुळवट रीत जिनेश्वर।'

हे नाथ! हमारे कुल के रीति के, आपके कुल की जाति के हम हैं। हमारे कुल की रीति ऐसी है कि हम ज्ञान में अन्दर सर्वज्ञ सिवाय दूसरे को बैठने नहीं देंगे। समझ में आया? 'धर्म जिनेश्वर गाऊं रंगसु, भंग न पडशो प्रीत प्रभुजी, बीजो मनमंदिर आणुं नहीं।' सर्वज्ञ परमेश्वर (जैसा) ही मैं आत्मा हूँ, ऐसी पर्याय में प्रतीति है, दूसरा कोई आत्मा में अन्दर आ नहीं सकता। 'अे अम कुळवट रीत जिनेश्वर...' हे तीर्थंकरदेव! जिस कुल में

आपने जन्म लिया, उस कुल के हम हैं। समझ में आया? यह हमारे कुल की रीति... रीति... है हमारी। आहाहा! हम केवलज्ञान... परमात्मा ने केवलज्ञान लिया, हम भी आपकी जाति के (हैं), केवलज्ञान लेकर ही रहेंगे। समझ में आया? आहाहा! यह सारपना है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

देखो न! एक श्लोक में... टीका भी कितनी की है! **जाननशील जो कोई शुद्ध जीववस्तु...** वजन यहाँ है। **जो कोई शुद्ध जीववस्तु... शुद्ध जीववस्तु...** अशुद्ध नहीं, निगोदादि नहीं, पाँच जड़ द्रव्य नहीं, मिथ्यादृष्टि मनुष्यादि नहीं। शुद्ध जीव अनुभवशीलन और पूर्ण... बस, वह सार है जगत में। ऐ न्यालभाई! अरे! ऐसी परमात्मा के घर की बात उसे सुनने को मिले नहीं और ऐसे जैन हैं, ऐसा माने। स्वतन्त्र है.... परमेश्वर त्रिलोकनाथ के क्या कथन हैं? और उनका क्या कहना है? उसका क्या भाव है? खबर नहीं, स्वरूप की दृष्टि नहीं और उसको धर्म हो जायेगा और कल्याण हो जायेगा। कहाँ से हो? भाई! ये तो वस्तु का शुद्ध स्वरूप है ऐसा। यह शुद्धस्वरूप का अनुभव करना वही सार है और पूर्ण प्राप्त करना वह तो सार है ही। आहाहा! **उसको मेरा नमस्कार...** ऐसे शुद्धजीव को मेरा नमस्कार। देखो! समझ में आया? ज्ञान में, ऐसा जीव शुद्ध है, ऐसा भान करके नमस्कार किया है। नमस्कार करनेवाला मैं... मैं भी ऐसा हूँ और आप नमस्कार करनेयोग्य हो, वह तुम भी ऐसे हो, वह हमारे ख्याल में है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अब, **शुद्धजीव को सारपना घटता है...** शुद्ध जीव को सारपना घटता है। जीव में भी... छह द्रव्य में पाँच तो जड़ हैं। यह तो कहीं नहीं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल और पुद्गल—ये पाँच जड़ हैं, अजीव है। एक रहा जीव और उसमें भी शुद्धजीव सार है। अशुद्धजीव सार नहीं। उसमें घटाते हैं। सार तो ले लिया (अल्प) आनन्द और पूर्ण आनन्द, केवलज्ञान। अब, सार क्यों कहा? उसको ही स्पष्ट करते हैं। **शुद्धजीव को सारपना घटता है। सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी।** सार की व्याख्या की। सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। संक्षिप्त भाषा। **सो हितकारी को सुख जानना....** हितकारी को सुख है। आत्मा का आनन्द, वह हितकारी है, बाकी कोई हितकारी है नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव करना, वह आनन्द सार है, वह

हितकर है, बाकी कोई हितकर है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! **सो हितकारी को सुख जानना...** अहितकारी दुःख जानना। अहितकारी दुःख जानना। दुःख अहितकर है, सुख हितकर है। बस, यह संक्षिप्त भाषा। समझ में आया ? पुण्य-पाप, राग-द्वेष, आकुलता, वह दुःख है, ये अहितकर है। समझ में आया ? यह शुभभाव भी हितकर है। वह हितकर का कारण होता है ? अहितकर है, पुण्य-पाप का भाव दोनों अहितकर हैं, दोनों आकुलता, दुःख हैं। दुःख हितकर है ? हित का कारण है ? समझ में आया ? दया-दान, भक्ति आदि का परिणाम मन्द कषाय है। मन्द कषाय तो दुःख है। दुःख, वह हितकर है ? अहितकर है। कैसी भाषा डाली है ! समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : शुद्ध जीव का अर्थ कार्यशुद्धजीव ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध जीव का (अर्थ) कार्यवाला ही यहाँ शुद्ध जीव लिया है। द्रव्य-गुण कहाँ अशुद्ध हैं ? शुद्ध तो कब आया दृष्टि में ? कि शुद्धपर्याय हुई तो 'ये शुद्ध है' ऐसा उसको यहाँ सार लिया है। भाई ! यह तो छठवीं गाथा में आया। पहले छठवीं गाथा में आया। परद्रव्य से लक्ष्य छोड़कर स्वद्रव्य की सेवा की, शुद्धता प्रगट हुई तो 'ये शुद्ध है' ऐसा कहने में आया। भान बिना शुद्ध कैसा तुझे ? समझ में आया ? आहाहा ! आनन्द का अनुभव हुआ तब ये आनन्दस्वरूप आत्मा है, ऐसी प्रतीति हुई। त्रिकाली आत्मा आनन्दमूर्ति है। भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्द की खान है, अतीन्द्रिय आनन्द की। जैसा सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभूति हुई, आनन्द आया अन्तर स्वरूप से। यह आत्मा सारा आनन्दमय ही है। जिसमें से आनन्द आया, वह आनन्दमय है। समझ में आया ? और पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है। सब निकाल— भेदज्ञान हो गया। समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म पड़े, परन्तु बहुत अल्प... बात है, मूल बात है, मूल बात है। मुद्दे की रकम की बात है। बनिये ने पाँच लाख दिये हों, ब्याज हो छह आना। फिर कहे कि ब्याज बीस वर्ष खाया, रुपया मूल पूँजी तो ला ? ये कहे, भाई ! मूल पूँजी नहीं। हाय ! तब तूने क्या ब्याज दिया ?

पहले देते थे न ? जमींदार को दे तो दो-दो लाख देते थे। हमारे दामोदर सेठ थे न वळा में देते थे। दो-दो लाख देते ब्याज के। पूँजी तो लाओ अब। पूँजी-बूँजी नहीं अभी। ब्याज ले लो। होगी तब दूँगा भाईसाहेब ! पूँजी... ब्याज अकेला रह गया, या तुम मर

जाओगे या फिर मिलेगा नहीं, या अवधि लागू पड़ेगी। सरकार की अवधि होती है न! बीस वर्ष खाया जाता है, फिर नहीं, ऐसा लागू किया था। एक बार सरकार ने लागू किया था। निकाला था न! हमारे दामोदर सेठ वहाँ गये थे। घर में जमीन बहुत, दस लाख थे न। पाँच-पचास... वहाँ गये तो... हमारे कमी है। बीस बरस क्या? पच्चीस-पच्चीस वर्ष से खाया। अब सब जायेगा? तुम्हारे अकेले के लिये कानून नहीं है, सारे गायकवाड़ सरकार का है। जिसने बीस वर्ष ब्याज खाया हो जमींदार का, जमीन छोड़ दो। ऐ पोपटभाई! तब यह तो ३०-४० वर्ष पहले की बात है। इसी प्रकार यहाँ तो, छोड़ दे पर का अभिमान अब। हमने खाया और हमने लिया, हमने राज किया... वह तेरे नहीं। समझ में आया? बहुत वर्ष हो गये, अनन्त काल। अब छोड़ दे न! वह तो दुःख था।

मुमुक्षु : खाये-पीये बिना समझे नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये अनन्त काल से राग-द्वेष खाया है न? अनन्त काल से पुण्य-पाप का भाव किया और पुण्य-पाप को भोगा, वह सार नहीं, छोड़ दे अब। उसमें कोई सार है नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व छूट जाता है...

शुद्ध जीव को सारपना घटता है। सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुःख जानना। कारण कि... अब मुद्दो। यह **अजीव पदार्थ—पुद्गल...** पुद्गल है न परमाणु? पैसा, शरीर, लक्ष्मी, इज्जत, वाणी, यह सब पुद्गल है जड़। पैसा, स्त्री-लड़के का शरीर सब पुद्गल है। यह पुद्गल... यहाँ तो कहेंगे कि पुद्गल है, उसमें सुख नहीं और पुद्गल में ज्ञान नहीं। इस परमाणु से लेकर, कर्म से लेकर... कर्म, शरीर, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी सब पुद्गल। तो पुद्गल जो जड़ है, उसमें ज्ञान भी नहीं, उसमें सुख नहीं और उस पुद्गल को जाननेवाले को भी ज्ञान नहीं, सुख नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह लक्ष्मी है, शरीर है, मक्खन जैसा कोमल शरीर हो, तो कहते हैं कि उसमें ज्ञान नहीं, सुख नहीं और उसको जाननेवाले को भी ज्ञान नहीं, सुख नहीं। वह तो परपदार्थ है, उसमें ज्ञान कैसे आया? समझ में आया? आहाहा! **पुद्गल, धर्म...** पहले पुद्गल में लेंगे हों, सब बात। समझ में आया? यह दाल, भात, मौसम्बी, लड्डू-लड्डू... वह कहते हैं

न ? क्या फूलचन्दजी ? शास्त्री हो तुम तो। सभी को कोई न कोई प्रिय वस्तु होती है। किसी को दूधपाक... हमारे दूधपाक कहते हैं। वह दूधपाक को रगड़ करते हैं न ? किसी को दूधपाक बहुत प्रिय है, किसी को चूरमा का लड्डू प्रिय है, किसी को मौसम्बी, किसी को केला, किसी को... समझे ? श्रीखण्ड। खट्टा-मीठा श्रीखण्ड। कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! जो चीज़ है, उस चीज़ में ज्ञान है ? उसमें सुख है ? वह तो ठीक, परन्तु लड्डू को जाननेवाला जो ज्ञान हुआ उसको भी ज्ञान नहीं कहते। पैसा, लड्डू, कर्म... कर्म को लो न भाई! कर्म पुद्गल है या नहीं ? कर्म में ज्ञान, सुख है ? यहाँ तो (कहते हैं कि) कर्म के जाननेवाले को भी ज्ञान, सुख नहीं। आहाहा!

ऐसी भक्ति की है न एक! ... ऐसे नहीं। स्वभाव के ज्ञान सहित ज्ञान हो तो यथार्थ है। अकेला करणानुयोग का पर के सन्मुख का ज्ञान करे तो बेकार है, ऐसा कहते हैं। यह ज्ञान भी नहीं, ऐसा कहते हैं। अपना ज्ञान हुआ नहीं तो पर के ज्ञान को ज्ञान कहते नहीं, यह सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया ? कर्म है न, कर्म ? शरीर नोकर्म, कर्म, वाणी तीन ही लो न। चार। तो चार में ज्ञान भी नहीं, सुख भी नहीं। यह तो ठीक, परन्तु वे चार को जाननेवाला जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान नहीं। उसको ज्ञान कहते नहीं। ज्ञान तो, अपने आत्मा का ज्ञान हो तो ज्ञान कहते हैं। पर का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते नहीं। आहाहा! परलक्ष्यी, पराधीन, एकान्त ज्ञान को ज्ञान कहते नहीं, ऐसा कहते हैं। और सुख नहीं। कर्म, शरीर का ज्ञान होता है, उससे यहाँ सुख नहीं। उसमें सुख नहीं, (उससे) यहाँ भी सुख नहीं। समझ में आया ? इसलिए वह असार वस्तु है पुद्गल। विशेष.... स्पष्ट होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १४, शुक्रवार, दिनांक १८-८-१९६७
कलश - १-२, प्रवचन नं. ३

समयसार (कलश), जीव अधिकार। कलश चलता है पहला। मंगलाचरण। अमृतचन्द्राचार्य समयसार की टीका करते (हुए) पहले मंगलाचरण... अपूर्व मंगलाचरण करते हैं। यहाँ आया कि समयसार को नमस्कार। समय शब्द से आत्मा, सार शब्द से जिसको ज्ञान और आनन्द है। जिसको ज्ञान प्रगट हुआ है और आनन्द प्रगट हुआ है, उसको समयसार आत्मा-शुद्धात्मा कहते हैं। उसको मैं नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सार शब्द की व्याख्या कल की न? देखो! **सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना...** हितकारी तो अतीन्द्रिय आनन्द और सुख जानना। सुख (अर्थात्) अतीन्द्रिय आनन्द, हों। यह लोग (सुख) माने, वह भ्रम है अज्ञानी का। वह तो यहाँ कहेंगे। सुख है कहाँ?

अपने स्वरूप में आनन्द है उसकी दृष्टि करके जो आनन्द प्रगट होता है वही सुख है। समझ में आया? सुख कोई दूसरे में है नहीं। **हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुःख जानना। कारण कि अजीव पदार्थ-पुद्गल...** देखो! एक परमाणु से लेकर जितने पुद्गल हैं, उन पुद्गल में ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। समझ में आया? वीतराग की वाणी भी पुद्गल है। राड नाखे ऐवुं छे। वाणी में तो ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं और शरीर में ज्ञान नहीं, सुख नहीं। कर्म में ज्ञान नहीं, सुख नहीं। समझ में आया? और कर्म के जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। वह कहते हैं न कितने कर्म के अभ्यासी? कर्मग्रन्थ के बहुत अभ्यासी हैं। कर्म वह पुद्गल है, उसका जानना ज्ञान भी नहीं, सुख भी नहीं। क्योंकि कर्म में ज्ञान, सुख नहीं तो उसके जाननेवाले को ज्ञान और सुख नहीं। समझ में आया?

प्रश्न था कि किसी को करणानुयोग का कि आत्मा के ज्ञान बिना अकेला करणानुयोग का ज्ञान, वह ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप उसकी दृष्टि और ज्ञान और आनन्द वही शुद्ध है और वही ज्ञान

और सुख कहने में आता है। समझ में आया? कहते हैं, **पुद्गल...** किसी भी जाति का पुद्गल हो... समझ में आया? गजब बात, भाई! भगवान की प्रतिमा भी पुद्गल है, उसमें ज्ञान, सुख नहीं। उसके जाननेवाले को ज्ञान, सुख नहीं। उसमें तो वह भी आया। ऐ सेठी! भीखाभाई!

मुमुक्षु : यह तो अमृतवाणी है भगवान! अमृत बरसता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार है। हीराभाई के पिता हैं न। कहो, समझ में आया?

पुद्गल उसमें ज्ञान भी नहीं, सुख भी नहीं और पुद्गल के जाननेवाले को भी ज्ञान नहीं, सुख नहीं। समझ में आया? आहाहा! चाहे जितना पुद्गल का ज्ञान हो... कर्मग्रन्थ में ऐसा-फैसा... बहुत कर्मग्रन्थ का ज्ञान है, बहुत ज्ञानी है। नहीं, नहीं, वह ज्ञान ही कहने में आता ही नहीं। आहाहा! सेठी! **धर्म...** धर्मास्तिकाय नाम का पदार्थ है, भगवान ने देखा है। वह धर्मास्तिकाय में ज्ञान भी नहीं, सुख भी नहीं और उसके जाननेवाले को ज्ञान नहीं और सुख नहीं। ऐसा **अधर्म...** अधर्मास्तिकाय में ज्ञान और सुख नहीं। अधर्मास्तिकाय वह द्रव्य है, जड़ है, अजीव है, उसके जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। ओहो! पर्याय तो अपनी है... जानने की पर्याय अपनी है, परन्तु वह परलक्ष्यी पर्याय है, उसमें ज्ञान भी नहीं, सुख भी नहीं। ओहोहो!

आकाश... आकाश में ज्ञान भी नहीं, सुख भी नहीं। सर्वव्यापक आकाश। आकाश के जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। देखो! अर्थ निकाला। **काल...** काल भी अजीव हैं असंख्य अणु। लोक प्रमाण से आकाश के प्रदेश हैं, उसमें असंख्य अणु हैं। उसमें ज्ञान, सुख नहीं और उसके जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। **संसारी जीव...** अब यहाँ जरा प्रश्न है। संसारी जीव को सुख नहीं और ज्ञान नहीं। मिथ्यादृष्टि लेना है यहाँ। भाई! ध्यान रखना, हों! संसारी जीव अर्थात् मिथ्यादृष्टि। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि संसारी नहीं है, सिद्ध है... नो सिद्ध है। तत्त्वार्थसार में आता है। समझ में आया? क्योंकि शुद्धद्रव्य (रूप) परिणमा है। (द्रव्य) जैसा शुद्ध है, ऐसा शुद्ध परिणमा है। यहाँ संसारी में नहीं आता वह। सुनो! समझ में आया? मिथ्यादृष्टि संसारी जीव उसको ज्ञान भी नहीं, सुख भी नहीं। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान भी है और सुख भी है। समझ में आया?

और उसको जाननेवाला... मिथ्यादृष्टि जीव हैं अनन्त निगोद जीव। अनन्त निगोद हैं। प्रत्येक में असंख्य है... इत्यादि-इत्यादि। उसमें ज्ञान, सुख नहीं। उसको जाननेवाला कहे कि हमको निगोद का ज्ञान हुआ, (जीव) असंख्य हैं—अनन्त हैं, ऐसा है—यह ज्ञान नहीं, सुख भी नहीं। समझ में आया?

उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीव को भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं। उनका स्वरूप जानने पर... भाषा समझे? मिथ्यादृष्टि का और पुद्गल का, अजीव का और मिथ्यादृष्टि संसारी जीव का... कथंचित् ये आत्मज्ञान है, दर्शन है, अशुद्धरूप परिणमन है उसकी बात नहीं। **उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीव को भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं।** समझ में आया? यह शास्त्र का ज्ञान... शास्त्र भी पुद्गल है। उसका ज्ञान, वह ज्ञान नहीं, सुख नहीं ऐसे कहते हैं। वाणी ज्ञान नहीं। वाणी विकल्प है, पर है। वह आयेगा। समझ में आया? आत्मा की अनुभूति, वह ज्ञान है। समझ में आया? देखो १३ कलश। १३ कलश। है? पृष्ठ १६। पृष्ठ १६। पहले पेरेग्राफ की अन्तिम की लाईन।..

आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। पहले पेरेग्राफ की... यह पृष्ठ १६। जेठाभाई! कहाँ देखते हो तुम? ऐसे १६ हो या ऐसे हो? तुम ऐसे देखते हो। यह पूरा होता है वहाँ १६ हो, शुरुआत हो वहाँ १७ होओ। समझ में आया? है? १६ पृष्ठ। १६, १६। सोलह पूरा। उसमें पहले पेरेग्राफ की पाँचवीं लाईन। **आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसंग में और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांगज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है।** द्वादशांगज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है। **उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशांगज्ञान भी विकल्प है।** विकल्प है, पराधीन—पराश्रय ज्ञान है। आहाहा! है देवानुप्रिया?

उसमें भी ऐसा कहा है... देखो! द्वादशांगज्ञान में भी ऐसा कहा है कि भगवान की दिव्यध्वनि, द्वादशांग में भी ऐसा कहा है, क्या?—कि **शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है।** हमारा लक्ष्य छोड़कर तुम्हारा अनुभव करो, उसका नाम मोक्षमार्ग और ज्ञान है—ऐसा द्वादशांगवाणी कहती है। वाणी ऐसा कहती है कि हमारे ओर का लक्ष्य छोड़कर तुम्हारे ओर का लक्ष्य करके तुम्हारा अनुभव करो, उसका नाम ज्ञान कहते हैं। द्वादशांगवाणी में ऐसा आया है। आहाहा! जेठालालभाई! यहाँ थोड़ा-बहुत जानपना हो, थोड़ा हो तो ओहोहो! हमने जाना,

बहुत बढ़ गये, दूसरे यह रह गये और यह रह गये। समझ में आया ? और अनुभूतिवाले ज्ञानी हों और धारणा थोड़ी हो और किसी दूसरे को धारणा बढ़ गयी हो, (दूसरा) प्रश्न पूछे और उसको बराबर न आवे तो, ओहो ! हम तो बढ़ गये, ज्ञान विशेष हुआ है। मिथ्यात्व है, सुन तो सही ! समझ में आया ?

शास्त्र का ज्ञान करके उसमें अभिमान करते हैं कि मुझे विशेष (ज्ञान) है, मैं अधिक हुआ—यह मिथ्याशल्य है। आहाहा ! अनुभूति... धर्मात्मा उसको विशेष ज्ञान न हो तो उसको देखकर कोई ऐसा प्रश्नादि (करे और) स्पष्टीकरण न हो, तो (माने कि) क्या इसे ज्ञान है ? हमें ज्ञान है। मिथ्यात्व है। ऐ धन्नालालजी ! आहाहा ! गोपालदासभाई ! कहाँ गये गोपालजीभाई ? कहाँ बैठे ? देखो ! यह तुम्हारा पिता कहता है। अब इसे यह याद आया अभी कि यह समझने जैसा कहते हैं, ऐसा। तुझे तो नहीं पुत्र और क्या कहलाये ? क्या कहलाये ? पुत्र-पुत्री नहीं, स्त्री है। यह समझने जैसी बात है। समझ में आया ?

ओहोहो ! भगवान आत्मा... कहते हैं कि बारह अंग का ज्ञान भी विकल्प है। समझ में आया ? और उसमें भी ऐसा कहा है.... उसमें भी ऐसा कहा है और दिव्यध्वनि में भी ऐसा आया है और गणधर को बारह अंग की रचना की, उसमें भी ऐसा आया है कि हमारी ओर का लक्ष्य छोड़कर तुम्हारे आत्मा का आनन्द का अनुभव करो, उसका नाम हम ज्ञान कहते हैं। आहाहा ! ऐई अमरचन्दभाई ! यह तो वीतरागमार्ग में ऐसी बात है, भाई ! आहाहा ! भगवान आत्मा...

मुमुक्षु : इसकी दृष्टि करने में क्या दिक्कत.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ दिक्कत नहीं। दृष्टि करने में दिक्कत नहीं। राग हो इतना। उसमें राग होता है और राग से जो ज्ञान होता है, वह परावलम्बी ज्ञान है, उसको ज्ञान कहने में आता नहीं। ऐसी बात है। कहाँ गया ? हीराभाई कहाँ गये ? वहाँ बैठे दूर। यह तो.... कहो, समझ में आया ?

भाई ! प्रभु ! जिसमें ज्ञान पड़ा है, यह ज्ञान से ज्ञान का अंकुर पैदा हो, उसका नाम ज्ञान है। समझ में आया ? थोड़ा-बहुत जहाँ ज्ञान हो, पुस्तक या मुखशब्द का, वहाँ उसको ऐसा हो जाये कि मेरे में ज्ञान है। (वह) आगे नहीं बढ़ सकेगा, रुक जायेगा वहीं। किसी

को अनुभव नहीं होता उसका हेतु (-कारण) है कि कितनी अन्दर शल्य पड़ी है। कोई कारण है कि नहीं? समझ में आया? आहाहा! धर्मात्मा-ज्ञानी से भी अपना परलक्ष्यी ज्ञान बढ़ जाता है, उसका जिसको अभिमान है, उसको मिथ्यात्व का शल्य है। समझ में आया? और अपने में भी जितना शास्त्र का ज्ञान हो, उसमें अपनी अधिकाई बताना हो, अपनी अधिकाई पर के पास बताना हो, मैं अधिक हूँ—ऐसा मानता है, वह भी मिथ्यात्वभाव शल्य है। समझ में आया? धन्नालालजी! आहाहा! भाई! प्रभु! तेरी खान तेरे में पड़ी है न? चैतन्य केवलज्ञान का कन्द प्रभु आत्मा है न? भाई! उसका अन्तर में स्पर्श करके ज्ञान हो, उसका अर्थात् स्वसंवेदनज्ञान (है, उसको) ही ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! यह वह कहीं मार्ग! वीतरागमार्ग। आहाहा! यह पर के ज्ञान का अभिमान ही नहीं। अपना भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसका अन्तर्मुख होकर अन्तर में से स्वसंवेदन ज्ञान का अंकुर—अल्प ज्ञान भी हुआ, भगवान कहते हैं कि उसको हम ज्ञान कहते हैं। और आत्मा के ज्ञान बिना ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ जाये, (तो भी) अज्ञान है, बन्ध का कारण है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? पीछे कहते हैं, देखो!

शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है... अर्थात् शुद्धात्मा का ज्ञान, वही ज्ञान है; शुद्धात्मा की श्रद्धा, वही मोक्षमार्ग है और शुद्धात्मा में स्थिरता, वही मोक्षमार्ग है। **इसलिए शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पढ़ने की कुछ अटक नहीं है।** स्वाध्याय करे, आदि हो, परन्तु अटक नहीं कि शास्त्र... सब आ गया सार। आहाहा! ....द्रव्यानुयोग की ओर की दृष्टि हुई है, द्रव्यानुयोग का ज्ञान करे, निर्मल है आदि बात आवे। आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? आवे न, सब लिखा हो। परन्तु समझने का... समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा का पूर चिदानन्दस्वरूप ऐसा जहाँ अन्तर्मुख होकर अपना ज्ञान हुआ, अनुभूति हुई, उसका नाम भगवान मोक्षमार्ग और ज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान मोक्ष का मार्ग है। शास्त्र का ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। परसत्तावलम्बी ज्ञान (उसको) मोक्षमार्ग समकिती कहते नहीं। समझ में आया?

पैसे का अभिमान टलना, पर में सुखबुद्धि जाना और उससे मेरा पैसा है, लक्ष्मी है, शरीर है, मन्दबुद्धि है वह जाना, परन्तु यहाँ तो कहा कि परसन्मुख का ज्ञान वह मेरा है (ऐसा) उसका भी अभिमान जाना, तो अपने स्वभाव में परावलम्बी ज्ञान किया, वह दृष्टि

मिथ्यात्व है। ऐ सेठी! आहाहा! गजब किया। भगवान का मार्ग अलौकिक मार्ग है। सम्प्रदाय में वह बात नहीं चलती, प्रभु! उसे तो ऐसी लगे कि ऐसा क्या है? ऐ अमीचन्दभाई! भाई! मार्ग ही ऐसा है। प्रभु वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसमें राग का अंकुर और पर ओर के बोध का अभिमान सब विकार है, दुःखरूप है। समझ में आया?

कहते हैं कि **संसारी जीव के सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं।** संसारी शब्द से अशुद्ध (जीव) लेना। क्योंकि धर्मी सम्यग्दृष्टि है या धर्मी मुनि है, उसके आत्मा की पर्याय शुद्ध है, ऐसा जिसको ज्ञान हो जाये, उसका आत्मा का जैसा स्वरूप है, ऐसा ज्ञान हो जाये, तो अपना ही ज्ञान हो जाये, उसमें। समझ में आया? क्योंकि आत्मा ऐसा शुद्ध है और शुद्धरूप परिणमन जिसको हुआ है, उसका ज्ञान कब हो? वह आता है न देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा में? यथार्थ में गुरु की श्रद्धा, यथार्थ में गुरु का स्वरूप जाने तो सम्यग्दर्शन हो जाये। समझ में आया? ऐसे यथार्थ में अरिहन्त का स्वरूप जो सर्वज्ञपद आदि है, उसका ज्ञान हो जाये तो सम्यग्दर्शन हो जाये। समझ में आया? उसका ज्ञान कब कहने में आता है? केवली की स्तुति, केवली का ज्ञान कब कहने में आता है? कि अपना स्वरूप केवलज्ञानमय जो है उसका ज्ञान करने से केवली की स्तुति कहने में आयी और केवली के शुद्धजीव का ज्ञान किया, तब कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा!

यह तीन रखा है न, तत्त्वार्थसार में, नहीं? असिद्ध, नोसिद्ध, सिद्ध—तीन बोल हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने स्वयं रचे हैं जीव के तीन प्रकार। एक असिद्ध, एक नोसिद्ध, एक सिद्ध। असिद्ध में मिथ्यादृष्टि, नोसिद्ध में (जैसे) नोकषाय, ऐसे ईसत् सिद्ध सम्यग्दृष्टि, ईसत् सिद्ध सम्यग्दृष्टि, नोसिद्ध नोकषाय ऐसे नोसिद्ध। सिद्ध रत्नत्रयपरिणति अथवा सिद्ध। समझ में आया? वह रत्नत्रय में आया है न प्रवचनसार में? मोक्ष... परिणमे और स्वयं मोक्षरूप... आगे आयेगा और। रत्नत्रयरूप परिणति सिद्ध मोक्षतत्त्व है। लिया है न? संसारतत्त्व। मिथ्यादृष्टि को संसारतत्त्व लिया है। प्रवचनसार में पीछे की पाँच (गाथाएँ) कलगी। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी बाह्य में पंच महाव्रत हो, २८ मूलगुण पालते हो, अन्दर में राग से लाभ मानते हैं, दृष्टि राग पर है, ऐसे जीव को वहाँ संसारतत्त्व में गिनने में आया है। भाई! यह और वाँचा (था, वह) याद आया, ठीक हुआ। संसारी जीव गिने। समझ में आया? यहाँ संसारतत्त्व है, (ऐसा कहा)। समझ में आया?

जिसको आस्रव और बन्ध की रुचि है, स्वभाव का भान नहीं है, ऐसे द्रव्यलिंगी ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़कर और अट्ठाईस मूलगुण पालकर नौंवे ग्रैवेयक गये तो भी संसार तत्त्व है। क्यों? राग और आस्रव का बन्ध वह संसार है। तो आस्रव और बन्ध को जिसने अपना माना, उससे अपने में लाभ माना, वही संसारतत्त्व है। बाह्य से हजारों रानी त्यागकर अट्ठाईस मूलगुण पालते दिखे, भगवान कहते हैं, वही संसारतत्त्व है, संसारतत्त्व दूसरा कोई है नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा संसारतत्त्व... संसारी जीव, लो, तत्त्वार्थसार की अपेक्षा से। ऐसे तो १४वें (गुणसथान) तक (संसारी) लिया है, ये यहाँ नहीं लेना। समझ में आया? अज्ञानी-असिद्ध। वहाँ ऐसा लिया है तत्त्वार्थसार में। समझ में आया?

कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि संसारी असिद्ध जीव चाहे तो द्रव्यलिंगी नौवें ग्रैवेयक में जाने की योग्यतावाला हो, शुभ शुक्ललेश्या हो, परन्तु दृष्टि में मिथ्यात्व है और राग से लाभ मानता है, पुण्य से धर्म मानता है, देह की क्रिया मैं करता हूँ—ऐसी अजीव और आस्रव की रुचि है, वही संसारतत्त्व है। ये संसारतत्त्व जीव को ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। ग्यारह अंग और नौ पूर्व का पढ़ा हो तो भी ज्ञान नहीं, सुख नहीं और उसको जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : .... मेरे बिना होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरे बिना होता नहीं, बस वही पुरुष का अभिमान अज्ञान है। ऐसे तो ग्यारह अंग पढ़ा है... गहरे-गहरे शुद्धस्वभाव का आश्रय नहीं तो उसको राग और निमित्त का आश्रय है ही। समझ में आया? है। शास्त्र में ऐसा है कि भोग के लिये करते हैं—ऐसा लेते हैं। भोग के लिये सीधा करे तो पाप है। परन्तु उसका अर्थ कि अपना आत्मा है, उसका अनुभव नहीं तो राग का अनुभव है, तो (राग के) अनुभव के लिये ये सब क्रिया करता है। राग के अनुभव के लिये उसकी सब क्रिया है। उसके फल में संसार का भव मिलेगा, नौवें ग्रैवेयक तक। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं... देखो! इस 'सार' में से कितना निकाला राजमलजी ने! पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये सब अजीव (और) **संसारी जीव के सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं। उनका स्वरूप जानने पर...** उसका स्वरूप प्रगट हों ऐसा है वैसा। विपरीत जाने, तब तो

(ज्ञान) नहीं। समझ में आया? धर्मास्ति का अर्थ गति करता है, उसको निमित्त है। गति कराता है, ऐसा जाने तो धर्मास्तिकाय का स्वरूप भी जाना नहीं। समझ में आया? और पुद्गल का स्वरूप भी नहीं जाना। अपनी पर्याय से पुद्गल परिणमता है, पर के कारण से नहीं। पर के कारण से परिणमता है, (ऐसा जाने) तो पुद्गल का स्वरूप भी स्वतन्त्र जाना नहीं। उसका उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित परमाणु है, उसको नहीं जाना। ये तो जैसे है, ऐसा जाने तो भी ज्ञान और सुख नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो पहले लिया। सब पदार्थ अपने गुण और पर्याय में विराजमान हैं। सब पदार्थ अनन्त परमाणुओं और अनन्त आत्माओं द्रव्य, अपनी शक्ति अर्थात् गुण और अपनी उत्पाद-व्यय-पर्याय—उसमें सब विराजमान शुद्ध और स्वाधीन हैं। बस, ये तो पहले निश्चित किया। ऐसा ज्ञान करे तो भी उसका नाम ज्ञान और सुख नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पहले (श्लोक) 'नमः समयसाराय' में कितना डाल दिया है!

मुमुक्षु : जाननेवाले का....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; उसका वास्तविक ज्ञान नहीं, अपना वास्तविक ज्ञान। और जो शुद्ध आत्मा हैं परमात्मा, समकिती, मुनि—उनका वास्तविक ज्ञान तो, शुद्धरूप द्रव्य है, गुण है, परिणमन है रागरहित, ऐसा ज्ञान करने जाता है तो अपना शुद्ध का ही ज्ञान हो जाता है। उसका नाम ही शुद्ध यथार्थ ज्ञान है। मिथ्यादृष्टि के स्वरूप का ज्ञान यथार्थ ज्ञान है ही नहीं, परलक्ष्यी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान करने का हेतु तो आत्मा का अनुभव था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेतु तो, आत्मा का अनुभव जब करे, तब वह ज्ञान को निमित्त कहने में आता है। निमित्त कहने में आता है, ऐसा तो आया नहीं। वहाँ और वहाँ रुक गया। समझ में आया? बाह्य ज्ञान छह द्रव्य का, अशुद्ध का अथवा अनन्त निगोद है, ऐसा है, प्रत्येक ऐसा है और इसको प्राण है, इसको... क्या कहते हैं? आहार, शरीर और इन्द्रिय और श्वासोच्छवास, भाषा और मन, इसका ऐसा प्राण है और इसकी ऐसी... है तो क्या कहते

हैं ? उसका विषयरूप जीव का प्राण है, इन्द्रियाँ है, भव है, श्वास है—वह भी है, ऐसा जान ले तो भी जाननेवाले को ज्ञान और सुख नहीं। प्रवीणभाई!

यह तो अजर प्याला है। वीतराग का मार्ग है। परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की वाणी में ऐसा आया कि हमारे सन्मुख का, वाणी के सन्मुख का ज्ञान को भी हम ज्ञान और सुख कहते नहीं। वाणी में ऐसा कहा कि तुम्हारा अनुभव करो, उसमें ज्ञान और सुख है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी वाणी को पूज्यपना कहा न व्यवहार ? ... समझ में आया ? पीछे तो कहेंगे कि वाणी तो अनुभवशील है, भगवान की वाणी तो अनुभवनशील है। वीतराग की वाणी अनुभवशील है, इसलिए केवलज्ञान के अनुसरण स्वभाव... अनुसरणशील—स्वभाववाली है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि **इसलिए इनके सारपना घटता नहीं...** लो, पाँच अजीव पदार्थ उसके द्रव्य-गुण-पर्याय जाने और अशुद्ध संसारी मिथ्यादृष्टि है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, उसके ज्ञान, सुख नहीं और उसके स्वरूप के जाननेवाले को ज्ञान, सुख नहीं। आहाहा! वीतराग मार्ग सारी दुनिया से निराला है। वीतराग कहे, हमने छह द्रव्य कहे, उसमें अशुद्ध जीव है और (अजीव) पाँच हैं, उसको जाने तो भी ज्ञान, सुख नहीं। आहाहा! भगवान! धर्मास्ति, अधर्मास्ति तुम ही कहते हो, सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरा तो कोई कहता नहीं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय का हम ज्ञान करें तो हमें ज्ञान नहीं ? कि नहीं।

मुमुक्षु : अनुभव....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तेरा आत्मा शुद्ध द्रव्य है, उसका अनुभव करके परिणमन करना, उसका नाम ज्ञान और सुख है। बाकी दूसरे का (ज्ञान, वह) ज्ञान और सुख है नहीं। आहाहा! नौ पूर्व पढ़ डाले मिथ्यादृष्टि (तो भी) ज्ञान नहीं, दुःख ही है। अज्ञान है और दुःख है, लो। धन्नालालजी! स्वभाव का स्पर्श नहीं, अनुभव नहीं और ग्यारह अंग, नौ पूर्व पढ़े, तो ज्ञान भी नहीं, सुख नहीं (और) अज्ञान, दुःख है। ज्ञान, सुख नहीं तो अज्ञान और दुःख है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : सभी जीव के द्रव्य और गुण तो शुद्ध है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, (द्रव्य) शुद्ध है तो उसकी पर्याय में कहाँ शुद्धता है ?

पर्याय में शुद्धता आये बिना द्रव्य शुद्ध है, वह जाना ही है कहाँ ? पर्याय में शुद्धपना प्रगट हुए बिना द्रव्य शुद्ध है, ऐसा जाना ही नहीं। समझ में आया ? द्रव्य और गुण शुद्ध है, यह कौन जानता है ? जिसको पर्याय में अनुभव शुद्ध का आया, वह जानता है कि द्रव्य और गुण शुद्ध है। अनुभव में आये बिना द्रव्य-गुण शुद्ध किसको कहना ? समझ में आया ? ऐसी बात है। द्रव्य और गुण तो शुद्ध ही है ? नहीं। शुद्ध किसको कहने में आता है ? कौन जानता है ?

कि जिसको... अपने आ गया न छठवीं गाथा में ? समझ में आया ? भगवान को प्रश्न किया... छठवीं गाथा है न ? समयसार। महाराज ! प्रभु ! आप तो कहते हो कि शुद्ध आत्मा जानना चाहिए... शुद्ध आत्मा जानना चाहिए। प्रभु ! आप शुद्ध किसको कहते हो ? आप शुद्ध किसको कहते हो ? शिष्य को प्रश्न हुआ समयसार की छठवीं गाथा में। शुद्ध आत्मा जानना चाहिए, ऐसा कहते हो तो, प्रभु ! शुद्ध किसको कहते हो ? भगवान कहते हैं, भाई ! परद्रव्य का, कर्म का, राग का... ये कर्म का लक्ष्य छूटते ही राग का लक्ष्य छूट गया। पर का लक्ष्य छोड़कर शुद्धात्मा की सेवा करनेवाले को अपनी पर्याय में शुद्धता का अनुभव हुआ, उसको 'आत्मा शुद्ध है' उसे हम शुद्ध कहते हैं। आहाहा ! भगवान का... चारों ओर मार्ग तो मार्ग परन्तु... (मार्ग में) सभी बातें ठीक-ठीक बैठती है।.... ऐसा मार्ग वह मार्ग, ऐसा मार्ग वीतराग का। समझ में आया ? व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, वहाँ भी यह कहा। धर्मी को अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव है, भान है, वहाँ राग बाकी है उसको जानते हैं। है, उसको जानते हैं। जो (गाथा) १२ में कहा, वही सबमें लागू कर दिया। समझ में आया ?

शुद्ध जीव के सुख है, ज्ञान भी है। सब नकार में से हकार लिया। शुद्ध जीव के सुख है, ज्ञान है। अरिहन्त सिद्ध और सम्यग्दृष्टि आदि शुद्ध हैं और ज्ञान भी है। ऐई ! **शुद्ध जीव के सुख है, ज्ञान भी है।** अभी तो दो ही लेना है। सुख है और ज्ञान भी है आहाहा ! भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव गुण है, उसके सन्मुख होकर अनुभूति हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, स्वरूपाचरण हुआ, आगे बढ़कर स्थिरता हुई, तो कहते हैं, उसी जीव के—शुद्ध जीव के सुख और ज्ञान है और **उसको जानने पर-अनुभवने पर जाननहारे को सुख है,**

ज्ञान भी है। भाषा देखो! शुद्ध जीव को ज्ञान, सुख है और उसके जाननेवाले को... यह शुद्ध है, ऐसा जाननेवाला अपने शुद्ध में चला जाता है। समझ में आया?

शुद्ध जीव के सुख है, ज्ञान भी है। उसको जानने पर—शुद्ध के जाननेवाले जीव को अनुभवने पर... **जानने पर** का अर्थ **अनुभवने पर।** पर का अनुभव वहाँ न आया। शुद्ध का अनुभव करने जायेगा कि शुद्ध है... शुद्ध है, वहाँ अपने शुद्ध का अनुभव आता है, उसको 'पर शुद्ध है' ऐसा अनुभव कहने में आता है। **जानने पर-अनुभवने पर जाननहारे को सुख है, ज्ञान भी है।** आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यपिण्ड प्रभु ध्रुव... ध्रुव... ध्रुवस्वरूप उसका अन्तर में ज्ञान हुआ... ज्ञान हुआ, बस उसको ज्ञान कहते हैं और आनन्द साथ में आया, उसको सुख कहते हैं। समझ में आया? देखो! भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा के मार्ग में ऐसी प्रसिद्धि है। आत्मा प्रसिद्ध हुआ वो ही प्रसिद्धि में आया। समझ में आया? बाहर का ज्ञान और बाहर की इज्जत से प्रसिद्धि में आया, वह प्रसिद्धि में आया ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कहाँ तक आयेगा मंगलाचरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं, कब तक चलेगा मंगलाचरण? अभी लम्बा मंगलाचरण कहा जाता है।

मुमुक्षु : यह तो क्षण-क्षण में चला ही करे, मंगल कहाँ तक मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना तुम्हारे मंगलाचरण में डालना है? कहते हैं। बहुत है। मंगलाचरण में बहुत सार भर दिया है। ओहोहो! 'पाण्डे राजमल जैन धर्मी, समयसार नाटक के मरमी' ऐसा बनारसीदास ने कहा। लोग वर्तमान अपना अभिमान और अपनी कल्पना से आचार्यों के (कथन का) अर्थ करे, पश्चात् उस प्रमाण न माने और दूसरा अर्थ निकले... तेरी कल्पना से अर्थ किया है। आहाहा! बापू! भगवान के शास्त्र का अर्थ करना, वह तो अध्यात्मदृष्टि हो तो यथार्थ हो सकता है। उसके बिना हो सकता नहीं। जैन धरम का मरमी... अनुभव का स्वादवाला... वह कहा न मोक्षमार्गप्रकाशक में? अध्यात्म का रहस्य जाननेवाला समकिती, वही जैनदर्शन का यथार्थ अर्थ कर सकता है। दूसरा तो बाहर में सन्तोष मना दे, ऐसा कर दे... ऐसा कर दे... हो गया, बराबर हो गया। समझ में आया?

ओहोहो ! सर्वज्ञ परमेश्वर... अपना आत्मा ही सर्वज्ञ परमेश्वर है। ऐसा सर्वज्ञशक्तिसम्पन्न प्रभु... सर्वदर्शीसम्पन्न प्रभु... सर्व ज्ञान-दर्शन कहो कि शुद्ध कहो, ऐसा सर्वज्ञस्वभाव का अनुभव—स्व को अनुसर के होना, उसका नाम ज्ञान और सुख कहने में आया है। दूसरे को ज्ञान और सुख कहते नहीं है।

लाखों लोग, करोड़ों लोगों का रंजन कर करे। लोकरंजन.. लोकरंजन... वह तारणस्वामी कहते हैं, जनरंजन। फूलचन्दजी ! आता है या नहीं ? नहीं देखा है ? उसमें जन्मे और देखा नहीं ? तारणस्वामी में आता है... क्या नाम ? ममलपाहुड़, अपने वाँचते थे ज्ञानसमुच्चयसार। उसमें ऐसा लिखा है तारणस्वामी ने। लोकरंजन—जनरंजन करना है तुझे ? जन को प्रसन्न करना है न ? मिथ्यादृष्टि, मूढ है। निगोद जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! मिथ्यात्व का गढ़ निगोद जायेगा। जनरंजन करने में बस प्रसन्न होता है। हा.. हा.. मेरा ज्ञान प्रसिद्धि में आया, मैं प्रसिद्ध हो गया। धूल में भी हुआ नहीं। आत्मख्याति बिना प्रसिद्धि कहाँ से आयी ? ऐसे कहते हैं। आहाहा ! दुनिया में प्रसिद्ध हो गया, उससे आगे बढ़ गया। अरे भगवान ! ऐ देवीलालजी ! चार गति में बढ़ गया।

भाई ! यह मार्ग तो अन्तर का है। अभ्यन्तर का मार्ग ... उसका ज्ञान हो तो उसका नाम ज्ञान और सुख कहते हैं। बाकी परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर के मार्ग में ग्यारह अंग और नौ पूर्व के पढ़नेवाले मिथ्यादृष्टि को भी ज्ञान और सुख है नहीं। जितना मिला उतना सुख, फिर ऐसा कहते हैं कितने। देखो ! नौवें ग्रैवेयक जाये द्रव्यसामायिक करके, तो इतना तो ठीक है ? अरे ! ठीक है ही नहीं। यह ऐसा लिखा है। सामायिक का अर्थ करके... अभी आये है कि सामायिक करके—द्रव्यसामायिक करके... भले भाव हो नहीं। द्रव्यसामायिक से भी नौवें ग्रैवेयक जाते हैं। परन्तु किस समय तुम करते हो ? समझ में आया ? राग मन्द होकर, शुक्ललेश्या होकर, द्रव्यलिंगी साधु चले जाते हैं नौवीं ग्रैवेयक में, उसमें क्या आया ? मक्खी ऊपर चली गयी तो क्या मनुष्य से ऊँची हो गयी ? समझ में आया ? कैसे ? देखो ! राजा नीचे बैठा हो, मक्खी ऊपर चढ़ बैठे। बड़ी हो गयी ? ऐसे समकिती, मुनि आदि नीचे हो और वह नौवें ग्रैवेयक में गया हो। समकिती को कोई ऐसे साधारण परिणाम हो तो पहले स्वर्ग में जाये। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि नौवीं स्वर्ग में गया हो तो क्या ऊँचा हो गया ? आहाहा !

भगवान! यहाँ तो अन्तर का शुद्धस्वरूप उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता की बात कही है, बाकी किसी की महत्ता नहीं। स्वर्ग मिला, पुण्य मिला, उसमें क्या आया? अनन्त बार स्वर्ग मिला है। एक शुभपरिणाम का फल स्वर्ग है उसमें है क्या? समझ में आया? कहते हैं कि **शुद्ध जीव के सुख है, ज्ञान भी है...** मंगलाचरण चलता है। **उसको जानने पर—अनुभवने पर जाननहारे को सुख है, ज्ञान भी है, इसलिए शुद्ध जीव के सारपना घटता है।** समयसार का अर्थ किया। आहाहा! समझ में आया? लो, यह गाथा (कलश) पूरी हुई, ठीक। अब, दूसरी गाथा (कलश)।

पौने तीन घण्टा तो चला। कल, परसों दो घण्टे... चले यह तो चले... भाषा स्वतन्त्र है, परमाणु स्वतन्त्र है भाई! ये तो दूसरी बार वाँचते हैं न? पहली बार पढ़ा, अब दूसरी बार। गुजराती अभी बाकी है। ये तो गुजराती लेना है हों। ये तो तुम हिन्दी हो न? तुम जाओगे तो तुरन्त गुजराती में (चलेगा)। समझ में आया? दूसरी गाथा (श्लोक)।

कलश - २

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥२॥

आहाहा! अमृतचन्द्र आचार्य को अन्दर का रणकार... भणकार... झनकार बजता है। देखो! '**अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः...**' '**प्रत्यगात्मनः**' की व्याख्या 'सर्वज्ञ' की। आहाहा! प्रत्यक्ष अर्थात् सर्वज्ञ। पर से पृथक् हो गया, ऐसा परमात्मा। अकेला पृथक् भगवान जिसका द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, ज्ञानपर्याय पूर्ण शुद्ध, आनन्द पूर्ण शुद्ध। भले अरिहन्त हो। समझ में आया? यहाँ अरिहन्त की व्याख्या है न मूल? उसके अनुसार वस्तु की व्याख्या है न? यहाँ सिद्ध की व्याख्या नहीं है। अरिहन्त हैं, सर्वज्ञ हैं, उनके अनुसार वाणी निकलती है, वह वाणी को यहाँ याद करके शुद्धपना स्वीकारना। समझ में आया?

'**नित्यमेव प्रकाशताम्**' **सदा त्रिकाल प्रकाश को करो।** किसको (नमस्कार किया)? दिव्यध्वनि। समझ में आया? '**अनेकान्तमयी मूर्तिः**' **न एकान्तः अनेकान्तः। अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद, उसमयी वही है स्वरूप जिसका, ऐसी है सर्वज्ञ की वाणी**

अर्थात् दिव्यध्वनि। देखो! '**नित्यमेव प्रकाशताम्**' नित्य प्रकाश को (करनेवाली) वाणी नित्य रहो। '**अनेकान्तमयी मूर्तिः**' अनेकान्त में एकान्त है ऐसा अनेकान्त स्याद्वाद कहा, उसमयी मूर्ति की व्याख्या ली। उसे मूर्ति कहते हैं। स्वरूप जिसका है, **उसमयी अर्थात् वही है स्वरूप जिसका...** वाणी में अनेकान्त स्वरूप आता है। देखो! वाणी में अनेकान्त स्वरूप आता है। अमृतस्वरूप की व्याख्या वाणी में आती है। समझ में आया?

'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' 'वचनामृत वीतराग के...' अमृतस्वरूप भगवान उसकी वाणी को भी अमृत कहा। 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूळ।' वाणी क्या कहती है? परम शान्त और आनन्द को बताती है। 'परम शान्तरस मूळ, औषध जो भवरोग के...' भवरोग का औषध है (भवरोग को) नाश करना। वाणी में बात ये कहने में आती है। 'कायर को प्रतिकूल...' पावैया-हीजडा जैसा हो, उसे ऐसा प्रतिकूल लगे, आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहते हैं।

जामनगर में हीजड़ा था—पावैया था। दृष्टान्त नहीं दिया था एक बार? पहले पावैया बहुत थे। रामजीभाई पावैया की गली में रहते थे। पावैया की गली थी न? वैसे भी पहले पावैया बहुत थे। पावैया का बड़ा मठ था। पावैया का बड़ा मठ था। पावैया समझते हैं? रामचन्दजी! पावैया नहीं समझते? हीजड़ा। वे नपुंसक। पावैया वह नहीं। नपुंसक हीजड़ा होता है न? पहले तो गाँव-गाँव में थे। मुझे खबर है न। समझ में आया? हीजड़ा... हीजड़ा... शास्त्र में आया। पुण्य को धर्म माननेवाले को पावैया-हीजड़ा कहा है, शास्त्र में। पुण्य को धर्म माननेवाले को सर्वज्ञदेव नपुंसक कहते हैं। नपुंसक कहो या पावैया कहो या हीजड़ा कहो। यह समयसार में आता है। क्लीब... क्लीब है। भगवान आत्मा के शुद्धस्वरूप की रचना... राग की रचना (किये) बिना अपने स्वरूप की रचना करे, उसका नाम वीर्य है, उसका नाम वीर्यवान है। राग की रचना करे, वह आत्मा का वीर्य है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पुण्यपरिणाम की रचना करनेवाले को तुम धर्मी मानते हो? वह क्लीब है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि पुकार करते हैं। क्लीब है—नपुंसक है—हीजड़ा है। तेरे

स्वभाव की रचना में तो तेरी पावैया जैसी गति है। पावैया को पुत्र नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि की प्रजा तुझे नहीं। समझ में आया? लो, दिगम्बर मुनि-सन्त ऐसा कहते हैं, क्लीब। भगवान! तेरा वीर्य तो स्वरूप की रचना करे, उसका नाम वीर्य कहने में आता है। राग की रचना करके धर्म माने, उसका नाम वीर्य है? ऐसा वीर्य का तुम अर्थ करते हो? नपुंसक है, तुझे प्रजा नहीं होगी, तुझे सम्यग्दर्शन की प्रजा नहीं होगी, बाँझ रहेगा। समझ में आया? गजब बात, भाई!

वह पावैया था, वहाँ जामनगर। पीछे लश्कर आया। पहले तो लश्कर आता था न, तो गाय को भगा देते थे। शाम को गाय (वापस) आवे तो ले जाते थे। राजा समझे कि निश्चित कोई दुश्मन राजा आया है। फिर गाय लेने जाये और लड़ाई हो। ये गाय ले गये तो पुलिस गयी। ... फिर पावैया कहे, साहेब! हमको तो पुलिस रखो, तुम खिचड़ा तो देते हो हमको। हम पावैया पुलिस का काम करेंगे बराबर। बड़ा शरीर है न उसका। वीर्य तो निकले नहीं तो शरीर बड़ा पुष्ट दिखे। हम काम करेंगे। परन्तु तुम कात नहीं कर सको, राजा कहे। विभा जाम। तुम नहीं कर सकते। अरे! करेंगे हम। फिर पुलिस में नौकरी पर रखा।

उसमें एक आया लश्कर चढ़ाई करके। उसे भेजा कि जाओ। बड़ा शरीर भरावदार... गायें इस ओर आयी तो गायें भगायी। भगावी समझते हो? पीछे... उसमें बड़ी नदी आयी, उसमें चट्टान होती है न चट्टान? नदी में उतरने का आता है न वह? उतरना आया, उसमें जरा पावैया की वाणी निकली। मूल पावैया—हीजड़ा थे। पावैया की वाणी निकली, कुछ ऐसा बोला कि ऐ... ऐसा... अमुक... वहाँ वे कहे कि... यह तो हीजड़ा है। वापस मुड़े राजा और ठीक सा... राजा के पास गये, विभा! तेरा खींचड़ा खाकर गीतड़ा गायें, बाकी हमारा काम नहीं। तुमने पहले नहीं कहा था? तुमने पहले नहीं कहा था? विभा! तेरा खींचड़ा खाकर गीतड़ा गाते हैं, बाकी हम.... कहा था तुमको पहले कि यह तुम्हारा काम नहीं। खींचड़ा खाओ और रहो नीचे। इसी प्रकार राग से धर्म माननेवाले और ऐसे राग से मुझे धर्म होगा, वह पावैया जैसा है। राग को जीतने की ताकत तो तुझमें है ही नहीं। हम धर्मी हैं... हम धर्मी हैं... धर्मी हैं। धर्म में नहीं घुस पायेगा तू। जेठालालभाई! आहाहा!

'**नित्यमेव प्रकाशताम्**' सदा काल-त्रिकाल प्रकाश करो। देखो! तो सही। वीतराग

की वाणी त्रिकाल रहेा। उसका अर्थ कि त्रिकाल रहो तो हमारे विकल्प भी सुनने में रहे और शुभ रहे, परन्तु शुभ कायम न रह सके। समझ में आया ? तो शुभ का अभाव करके हम शुद्ध हो जायेंगे, ऐसा प्ररूपण है उसमें। समझ में आया ? त्रिकाल की वाणी, ऐसा है और ऐसा विकल्प रहे तो हमारा (विकल्प) शुभ रहकर... हमारी दृष्टि तो हमारे ऊपर है। समझ में आया ? पीछे अशुभ बीच में न आवे, किसको ? कि जिसकी दृष्टि अन्दर आत्मा में है उसको। वाणी त्रिकाल तुम जयवन्त रहो, उसका अर्थ है कि भले विकल्प हो, परन्तु हमारा आदर उसमें नहीं है। हमें अशुभ बीच में नहीं आता तो विकल्प तोड़कर हम निर्विकल्प हो जायेंगे। समझ में आया ? विकल्प के कारण से नहीं हों। फिर कोई कहे कि देखो ! इसमें आया थोड़ा।

मुमुक्षु : स्वभाव की सन्मुखता से ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अन्दर आश्रय स्वभाव... है तो शुभ, परन्तु ऐसी वाणी का योग रहो। इसका अर्थ क्या ? कि मुझे अशुभभाव न आओ। उसका अर्थ क्या ? कि अशुभभाव आये बिना शुभभाव लम्बे काल तक रह सके नहीं। शुभ का अभाव करके स्थिर हो जाये, उसकी यहाँ बात करते हैं। समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात है। कोई ऐसा कहे, भगवान ! तुम्हारी वाणी जयवन्त वर्तो... जयवन्त वर्तो। वाणी जयवन्त वर्तो (उसमें) तुम्हारा क्या काम है ? समझ में आया ? उसका अर्थ ये है कि वाणी ऐसी हो तो हमारा लक्ष्य भी शुभ में रहे भले, तो अशुभ बीच में आये नहीं। तो अशुभ बीच में न आये, इसकी दृष्टि का जोर आत्मा के ऊपर है, वाणी पर नहीं, विकल्प पर नहीं। अशुभ बीच में न आये, शुभ ही अकेला रहे, किसको ? स्वभाव पर जोर है उसको। अमरचन्दभाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

जयवन्त रहो। देखो, भाई ! सवेरे किसी ने प्रश्न किया था। जयवन्त रहो। आये थे न ? प्रश्न किया था न रास्ते में ? किसने किया था ? तुमने किया था। लो, जयवन्त का अर्थ यह है। स्वयं जयवन्त का अर्थ कि मुझे अशुभ बीच में न आये और शुभ रहे। त्रिकाल (-कायम) तो रहेगा ही नहीं। हमारा स्वभाव पर जोर है, साधक स्वभाव पर। साधक (दशा) में जब विकल्प होता है तो वाणी (निमित्त) होती है, परन्तु वह वाणी का लक्ष्य

और राग दीर्घ काल रहेगा नहीं। बीच में अशुभ आनेवाला नहीं। वहाँ (शुद्ध में) रहता तो शुभ में आने का रहता ही नहीं। अशुभ बिना रहे तो शुभ ही आये और शुभ अकेला लम्बे काल तक न रहे। तो शुभ को छोड़कर स्वभाव में जायेगा, उसका नाम जयवन्त कहने में आया है। देखो! हमारे राजमलजी वकील भी प्रसन्न हो गये। समझ में आया? बुद्धिवाला है न? न्याय तो पकड़े न कि क्या है? समझ में आया? आहाहा!

जहाँ-तहाँ माँगने आता है न कि हे परमात्मा! भव-भव में तुम्हारा शरण होजो। भव भव का अर्थ दूसरा है। भव-भव में शरण का अर्थ, जब तक मेरे में विकल्प है, तब तक तुम्हारा लक्ष्य रहेगा और अशुभ आयेगा नहीं। अशुभ आयेगा नहीं (और) शुभ लम्बे काल तक रहेगा नहीं। अशुभ बिना अकेला शुभ लम्बे काल तक रहता ही नहीं। लम्बा काल समझते हो?

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम अन्दर पलटा खाकर जाये शुद्ध... समझ में आया? उस अपेक्षा से यहाँ 'जयवन्त हो' ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? **सदात्रिकाल प्रकाश को करो इतना कहकर नमस्कार किया,...** ऐसा कहते हैं। उस जाति का बहुमान किया। सदा काल हो, ये बहुमान हुआ। नमस्कार किया ऐसे कहा न? देखो न! दूसरी पंक्ति है। **इतना कहकर नमस्कार किया।** नमस्कार का अर्थ, जय हो, उसका नाम बहुमान किया। समझ में आया? तो उसके बहुमान में अपना बहुमान अपने में है, तो पर का बहुमान विकल्प से करते हैं। बीच में अशुभ न आये और शुभ छोड़कर शुद्ध में आ जायेगा, वीतराग हो जायेगा, उसको यहाँ जयवन्त कहने में आया है। ऐसी सर्वज्ञ की वाणी दिव्यध्वनि है।

इस अवसर पर आशंका उपजती है... गजब टीका कैसी! उसमें ऐसा है। **इस अवसर पर आशंका उपजती है कि कोई जानेगा कि अनेकान्त तो संशय है...** अनेकान्त तो संशयवाद है, कोई ठिकाना नहीं। ऐसा भी है, वैसा भी है, वैसा भी है—उसको अनेकान्त कहते हैं। ऐसे कहनेवाले कहते हैं। अनेकान्त तो संशयवाद है। संशय मिथ्या... निर्णय-निर्धार तो हुआ नहीं कि क्या है? व्यवहार से भी होता है, निश्चय से भी होता है, निमित्त से भी होता है, उपादान से होता है, क्रमबद्ध भी होता है, अक्रमबद्ध भी होता है—

उसका नाम अनेकान्त कहते हो तुम ? यह तो संशय है। अरे ! ऐसा अनेकान्त नहीं, सुन तो सही ! अनेकान्त में तो निर्णय है। समझ में आया ? **संशय मिथ्या है...** अनेकान्त(मय) वाणी में संशय हुआ, संशय तो मिथ्या है, तो वाणी मिथ्या हो गयी।

उसके प्रति ऐसा समाधान करना—अनेकान्त तो संशय को दूरीकरणशील है... संशय को दूर करने का उसका स्वभाव है। अनेकान्तमय का तो संशय को दूर करने का अभाव है। अपना आत्मा अपने से है, पर से नहीं, शुद्ध स्वभाव से मोक्ष है, अशुद्ध से नहीं—ऐसा अनेकान्त तो संशय का दूरीकरणशील है। दूरीकरण शील अर्थात् स्वभाव। अनेकान्त में संशय का नाश करने का स्वभाव है। समझ में आया ? कैसे ? वह कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण शुक्ल १५, शनिवार, दिनांक १९-८-१९६७
कलश - २, प्रवचन नं. ४

ये समयसार कलश, जीव अधिकार चलता है। दूसरा कलश। क्या कहते हैं? देखो! **अनेकान्तमयमूर्ति...** वास्तव में तो भगवान आत्मा का अपना स्वरूप ही अनेकान्तस्वरूप है। सर्वज्ञ को लेंगे, आत्मा को भी लेना है। आत्मा अनेकान्त अर्थात् स्वपने अस्ति (है और) परपने नास्ति है, अभेद, भेद—ऐसे अनेक-अनन्त धर्म की मूर्ति आत्मा है। उसको जिनवाणी दिखाती है और अन्तर में ज्ञानस्वभाव मति-श्रुतज्ञान भी अपने आत्मतत्त्व को दिखाता है और केवलज्ञान, अन्तर में अनन्त गुणसम्पन्न भगवान आत्मा को केवलज्ञान भी प्रत्यक्ष दिखाता है। तीनों को यहाँ सरस्वती अथवा अनेकान्त कहने में आया है। यहाँ मुख्य वाणी को लेकर पीछे सर्वज्ञ में अनन्त गुण-धर्म हैं, ऐसा लेंगे। सर्वज्ञ अनन्त धर्मसम्पन्न हैं, ऐसा लेंगे। समझ में आया?

पहले श्लोक में 'नमः समयसाराय' में यह कहा... सार शब्द से शुद्ध चैतन्यमूर्ति उसको बतानेवाली वाणी को यहाँ नमस्कार करते हैं। तो कहते हैं कि त्रिकाल जयवन्त वर्तो। भगवान की वाणी ऐसे स्वरूप को... शब्द लिया है यहाँ, **जिस प्रकार उपजता है उसी प्रकार जानना।** ऐसा शब्द लेंगे। शब्द है न इसमें? जिस प्रकार जहाँ उपजता है, उसी प्रकार जानना। वाणी का निमित्त है और अपनी पर्याय में अपनी योग्यता से (ज्ञान) उत्पन्न होता है और उसी प्रकार से अर्थात् वाणी सुनकर, अपने ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि देकर अपनी ज्ञान की पर्याय द्वारा आत्मा को देखता है, उसे भी वाणी द्वारा देखने में आया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया?

कहते हैं कि वाणी कैसी है? कि अनेकान्त(मय)। अथवा वस्तु ऐसी अनेकान्त(मय) है। तो कोई कहे कि अनेकान्त तो संशय है। कोई निश्चित निर्धार तो उसमें आया नहीं। ऐसी किसी की शंका है। संशय तो मिथ्या है, कोई निर्धार न हो कि कैसा आत्मा है? कैसी पर्याय है? कैसे परमात्मा हैं? कोई निर्धार ही न हो तो संशय मिथ्यात्व में जाता है। **उसके प्रति ऐसा समाधान करना-अनेकान्त तो संशय को दूरीकरणशील है।** वाणी अनेकान्त(मय) है, संशय को दूरीकरणस्वभाव(वाली है) और आत्मा भी

अनेकान्त(मय है), मिथ्यात्व का नाश करने का स्वभाव(वाला है)। समझ में आया? अनेकान्त... आत्मा ही अमृतस्वरूप है, रागस्वरूप नहीं, विकाररूप नहीं—ऐसा जो अनेकान्त ज्ञान, समझ में आया? वह भी जहर जो मिथ्या संशय है, उसको नाश करनेवाला है। तो कहते हैं, **संशय को दूरीकरणशील...** वाणी और ज्ञान है। **और वस्तुस्वरूप को साधनशील है।** वस्तु के स्वरूप को सिद्ध करने में साधन स्वभाव है। साधनशील है, ऐसा कहने में आया। जैसी वस्तु है, ऐसा स्वरूप सिद्ध करने में वाणी में साधनशील ऐसा उसका स्वभाव ही है।

अब, **उसका विवरण—जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु है, वह द्रव्य गुणात्मक है।** देखो! बहुत संक्षिप्त में कहते हैं। जो कोई वस्तु है तत्त्वं, सत्लक्षणं, सत्मात्रं। आता है न भाई पंचाध्यायी में पहले? यहाँ यह बात रखी। राजमलजी का शब्द है, यह पंचाध्यायी। यह राजमलजी की टीका है। अब अभी यह वाँचते लक्ष्य में आया, लो। समझ में आया? जीव तत्त्वं, सत्लक्षणं, सत्मात्रं। ऐसा लिखा है श्लोक की शुरुआत करते हैं। आत्मा है तत्त्वं, सत्लक्षणं... सत् लक्षण और आत्मा लक्ष्य, ऐसा भी कहा और पीछे सत्मात्रं (कहा)। सत्स्वभावमात्र है, यह अभेद कर दिया। समझ में आया? भगवान आत्मा तत्त्वं, सत्लक्षणं... सत् द्रव्यलक्षणं... सत् द्रव्यलक्षणं (कहा) तो भेद पड़ गया। और उसको ही उसको सत्मात्रं (कहा तो) अभेद (हुआ)। यह सत्स्वरूप ही है। सत्स्वरूपी वही अनेकान्त। भेद-अभेद बताया वही अनेकान्त है। समझ में आया? वही बात कहते हैं लो। यह तो वाँचते हुए लक्ष्य आ गया कि यह दो बोल क्यों रखे हैं? सत्तास्वरूप में दो बोल रखे हैं। वहाँ सत्तास्वरूप में भी दो बोल पंचाध्यायी के रखे हैं। क्या कहते हैं?

जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु है.... कोई भी आत्मा (कि) परमाणु होनेवाला पदार्थ है—सत्तास्वरूप पदार्थ है, **वह द्रव्य-गुणात्मक है। वस्तु** (है, वह) उसके गुणस्वरूप ही वस्तु है। आत्मा है तो उसके गुणस्वरूप है, परमाणु है तो उसके गुणस्वरूप है। समझ में आया? और उसमें जो सत्ता अभेदरूप से द्रव्यरूप कहलाती है, यह अनेकान्त। जो सत्ता अभेदरूप से द्रव्यरूप कहलाती है सत्मात्रं... सत्मात्रं... आत्मा सत्मात्रं (अर्थात्) सत् ही है। ये अभेद हुआ। सत् ही है। सत् में गुण-पर्याय सहित है। सत् अर्थात् 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' और 'सत् द्रव्यलक्षणं।' तो आत्मा सत्स्वरूप ही है, उत्पाद-व्यय-

ध्रुवस्वरूप ही है—तीनों स्वरूप ही है। उसका नाम अभेद कहने में आता है। सूक्ष्म है जरा।

मुमुक्षु : उसमें एकरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एकरूप है, वह तीन सत्रूप एक ही हैं, ऐसा। और सत् लक्षण और लक्ष्य द्रव्य, ऐसा भेद अभेद में होता नहीं। सत्स्वरूप... उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत्स्वरूप, ऐसा। सत् का अर्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (युक्तं) सत्। सत् सर्व द्रव्य, ऐसा। समझ में आया?

द्रव्य गुणात्मक है। उसमें जो सत्ता अभेदरूप द्रव्यरूप कहलाती है, वही सत्ता भेदरूप से गुणरूप कहलाती है। देखो! भगवान आत्मा सत्... सत्... 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्', 'सत् द्रव्यलक्षणं' ऐसा भेद करना, वह भेद व्यवहारनय है, भेद है और सत्मात्रम् कहना उसका नाम निश्चय है। वह एक ही सत्ता में दो (नय) लगाये। अभेद सत्ता को भेद से कहना, उसका नाम अनेकान्त है। धन्नालालजी! सूक्ष्म बात आयी अब। भगवान आत्मा... देखो! पर से कुछ सम्बन्ध नहीं किसी भी द्रव्य को। प्रत्येक द्रव्य अपना गुण-पर्यायरूप सत् है और सत्मात्रम् द्रव्य है। यह अभेद है, उसको भेद करके कहना... अभेद है, उसको भेद करके कहना, उसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया?

जो वस्तु अभेद एकरूप गुण-पर्यायरूप सत् है, सत् द्रव्यलक्षणम्, ऐसा भेद न करके 'सत्', वही द्रव्य। देखो! उत्पाद-व्यय-गुणरूप सत्, वही द्रव्य। पर के साथ सम्बन्ध कुछ न रहा। समझ में आया? पर की पर्याय से यहाँ पर्याय होती है, ऐसा है नहीं (और) इस पर्याय से पर में पर्याय होती है, ऐसा रहा ही नहीं। क्योंकि 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य(युक्तं) सत्' और 'सत् द्रव्यलक्षणं' ऐसा भेद करना, वह भी व्यवहार है। अभेद सत्... उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत्... सत्मात्र वस्तु... सत्मात्र वस्तु... उसे ही भेद करके सत्लक्षणवाली कहना उसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया?

अभेद को लक्ष्य करके एकरूप कहना, भेद को लक्ष्य करके दोरूप कहना... देखो! नियत क्रम में भी वह लागू पड़ता है। जो समय में नियत है, उसी समय उसको अनियत कहना। समझ में आया? क्रमबद्ध है? क्रमबद्ध व्यवस्थित है। अक्रम है? हाँ, पर

की (-निमित्त की) अपेक्षा से अनियत है, नियत नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा सत्स्वरूप है या सत्रूप ही है। भेद करते हैं तो वही सत्ता भेदरूप से गुण कहलाती है। सत् गुण, द्रव्य-गुणी। सत् गुण, द्रव्य गुणी (कहा तो) भेद हो गया। सत्मात्रं (कहने से) अभेद हो गया।

मुमुक्षु : व्यवहार का नाम अनेकान्त.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का नाम अनेकान्त नहीं है। कौन कहता है व्यवहार का नाम अनेकान्त है? व्यवहार तो एक अंश—एक धर्म हो गया। अनेकान्त अर्थात् एक (नहीं) अनन्त, जिसमें अन्त अर्थात् गुण-धर्म रहते हैं, उसका नाम अनेकान्त कहते हैं। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु में अनन्त धर्म रहते हैं—अस्ति-नास्ति, सत्-असत्... सत्-असत् समझे? स्व से सत्, पर से असत्, वह भी धर्म है उसका। सत्-असत् धर्म है उसका। अपने से सत् है, पर से असत् है। पर की पर्याय जो है, उससे आत्मा की पर्याय असत् है। क्या कहते हैं ये? पर की पर्याय से अपनी पर्याय उत्पन्न नहीं होती क्योंकि पर की पर्याय की अपेक्षा से अपनी पर्याय असत् है। अपनी पर्याय की अपेक्षा से अपनी पर्याय सत् है, परन्तु पर की अपेक्षा से असत् है। पर के कारण से पर्याय कभी हो, ऐसा नहीं है ऐसा स्वतन्त्र सत् का स्वयंसिद्ध स्वरूप है। समझ में आया?

यहाँ तो कहेंगे, जिस प्रकार उपजे... ऐसी भाषा है। **जिस प्रकार उपजता है, उसी प्रकार जानना,...** यूं। ऐसे वाणी है तो निमित्त। समझ में आया? परन्तु अपनी पर्याय में, वह क्या कहते हैं, ऐसा लक्ष्य करके अपनी पर्याय में ज्ञान हुआ, तो निमित्त से हुआ, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से तो अपनी पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। वीतराग की वाणी के काल में भी सुननेवाले की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। क्योंकि अपनी पर्याय... उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य(मय) उसका पदार्थ है। तो वह अपनी पर्याय से उत्पन्न होता है, पर की पर्याय से उत्पन्न होता नहीं। समझ में आया? बड़ा झगड़ा। अनेकान्त... इसे ही अनेकान्त कहते हैं। पर से होता नहीं और अपने से हो, पर से नहीं, उसका नाम अनेकान्त है। अपने से हो और पर से हो, उसका नाम अनेकान्त है ही नहीं। जो एक वस्तु में अभेद कहा, वही भेद। समझ में आया? जो स्व से है, वही पर से नहीं, ऐसा उसको लागू पड़ता है।

मुमुक्षु : एक में दो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक में दो, एक में अनन्त... एक में अनन्त। अपनी एक-एक समय की पर्याय अपने द्रव्य-गुण से नहीं, पर से नहीं, पूर्व की-बाद की पर्याय से नहीं।— ऐसी एक समय की पर्याय में अनन्त सप्तभंगी उठते हैं। धन्नालालजी! सूक्ष्म बात है, भाई! एक समय की पर्याय में अनन्त सप्तभंगी। ऐसा स्वयंसिद्ध है, पर से नहीं—ऐसा अनेकान्त उसको कहने में आता है। ऐसे नहीं कि पर से भी है और अपने से है—उसका नाम अनेकान्त है ही नहीं। इसलिए वह दृष्टान्त दिया। वहाँ लिखा वही यहाँ आया। राजमलजी की टीका पंचाध्यायी है। यहाँ भी उनकी टीका है। वहाँ ७वीं-८वीं गाथा है। नहीं ? आठवीं है। यहाँ दूसरे (कलश) में डाला है। पंचाध्यायी है न पंचाध्यायी ? राजमलजी ने बनाया है। बहुत विद्वत्ता से बना है।

इसका नाम अनेकान्त है। देखो! **वस्तुस्वरूप अनादि-निधन ऐसा ही है।** क्या कहते हैं ? अपना स्वरूप... अपने से नयी पर्याय का उत्पन्न होना, पुरानी का व्यय होना और ध्रुवपने रहना, ऐसा गुण-पर्यायस्वरूप सत्रूप और सत्मात्रं... सत्लक्षणं और सत्मात्रं, ऐसा ही अनादि-अनन्त स्वरूप आत्मा का और प्रत्येक पदार्थ का है। सहारा किसका ? देखो भाई! ऐसा लिया है। **किसी का सहारा नहीं।** उसमें कोई तर्क का आश्रय नहीं कि ऐसा क्यों ? अपनी पर्याय से अपना (सहारा) है, अपने गुण से अपना (सहारा) है, द्रव्य अपने से है। एक-एक गुण अपने से है और परगुण से नहीं। जेठालालभाई! अनन्त गुण जो आत्मा में हैं (उसमें) प्रत्येक गुण-एक गुण को परगुण की सहाय बिल्कुल नहीं। अपने से है, पर से नहीं, उसका नाम अनेकान्त है। एक गुण अपने से भी है और पर से भी है, यह अनेकान्त नहीं। स्वतन्त्र एक समय का गुण और एक समय की पर्याय। द्रव्य तो है ही। अपने से है, पर से नहीं। अपनी दृष्टि द्रव्य में लगाना है। क्योंकि द्रव्य में सब उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—पूरा सत् अपने में ही है। तो पर्याय का लक्ष्य द्रव्य में लगाना है। समझ में आया ? और उससे सम्यग्दर्शन होता है।

आगे जिस वाणी को नमस्कार किया... इसलिए अनेकान्त प्रमाण है। इस कारण से अनेकान्त को प्रमाण कहा। क्योंकि वस्तु का स्वरूप अनादि-अनन्त ऐसा ही है।

अनादि-अनन्त, देखो! अनादि-अनन्त (कहने से) सिद्ध में भी आ गया या नहीं उसमें? सिद्ध भी वहाँ अपने से रहते हैं और पर से नहीं, (ऐसा) आ गया या नहीं उसमें? सिद्ध वहाँ रहते हैं, वह धर्मास्तिकाय आगे नहीं, इसलिए (आगे नहीं जाते)—ऐसा नहीं। सिद्ध भी वहाँ पर्याय में अपने से है, पर से नहीं। अनादि-अनन्त वस्तु ऐसी है। निगोद से लेकर सिद्ध और परमाणु से लेकर स्थूल स्कन्ध—सब अपने गुण-पर्याय में ध्रुवपने रहते हैं, उत्पादपने-व्ययपने होकर ध्रुवपने रहते हैं। वही उसका सत्स्वरूप है। उस सत् के भेद करो तो सत् उसका गुण है। सत्वान का... सत्वान का सत्गुण है। भेद न करो सत्स्वरूप ही है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है थोड़ी। आहाहा!

यह रक्षा है यह रक्षा। लो भाई! यह रक्षा की आयी बात। भगवान आत्मा अपने से सत् है, महाप्रभु है। समझ में आया? उसमें तो लिखा है। समय... समय की व्याख्या की है न समय की। समयसार... समयसार... समयसार... सम्=सम्यग्दर्शन, अय=ज्ञान, सार=चारित्र। समयसार उसमें से तीन रत्न निकाले। धन्नालालजी! सम्+अय+सार। भगवान आत्मा सम्=सम्यग्दर्शन—पूर्णानन्द स्वरूप की प्रतीति, अय=ज्ञानस्वरूप का स्वसंवेदनज्ञान, सार=अन्दर चारित्र स्थिर होना वह। समयसार तीन रत्न को भी लागू पड़ता है। समझ में आया?

पाँच पद को लगाया है। अरिहन्त को, सिद्ध को, आचार्य को, उपाध्याय को, साधु को—सब समयसार में से निकाला है। अपने तो (लेना है कि) तीन रत्नत्रयपर्याय, उसका नाम ही समयसार है। समझ में आया? द्रव्य-गुण तो एक ओर रहे। अखण्ड अभेद चैतन्यप्रभु के अन्तर में सन्मुख होकर प्रतीति अर्थात् सम्... सम्... सम्यग्दर्शन। वही अखण्ड ज्ञायकभाव का ज्ञान... पर का ज्ञान का तो... वह ज्ञान उसका नाम अय... सम्+अय। सम्यग्दर्शन, अय-ज्ञान। सार-स्वरूप में रमण करना, वह सार चारित्र। सार सुख। आत्मा के आनन्द में रमण करना, वह चारित्र। कहो, समझ में आया? उसका—आत्मा की निर्मल निर्विकारी पर्याय का नाम समयसार है। वह भगवान की वाणी बताती है, भगवान ने पूर्णानन्द की प्राप्ति की, साधकजीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान में परिणमते हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ बाहर की कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की क्या कहें ? यह तो अन्तर की बात है। भाषा कहते हैं बाहर की। वाणी है।

भाषा कैसी ली है ? कि **जिस प्रकार बने उस प्रकार ज्ञान समझना।** निमित्त से तो ऐसा समझना और वाणी में कहते हैं कि तेरा स्वभाव अभेद है, वहाँ दृष्टि दे। **उभयनयविरोध-ध्वंसिनी** में आता है न ? जिनवाणी में उपादेय आत्मा को कहा। **जिनवचसि रमन्ते...** कोई वाणी में रमने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। पाठ में तो ऐसा लिया है। **जिनवचसि रमन्ते...** है न ? चौथी लाईन। किसमें ? देखो ! **जिनवचसि रमन्ते...** देखो ! यह है। '**जिनवचसि**' देखो ! है न ? आसन्न भव्य जीव ! **जिनवचसि...** पाँचवाँ पृष्ठ है। ऊपर से नौवीं पंक्ति। **(जिनवचसि) दिव्यध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु, उसमें सावधानपने रुचि-श्रद्धा-प्रतीति करते हैं। विवरण-शुद्ध जीववस्तु का प्रत्यक्षपने अनुभव करते हैं, उसका नाम रुचि-श्रद्धा-प्रतीति हैं।** जिनवचन का अर्थ ऐसा नहीं कि वाणी में रमना। जिनवाणी में कहा हुआ उपादेय शुद्धात्मा... वह कहा देखो ! समझ में आया ? दिव्यध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु। वह कहते हैं कि देखो ! वे ऐसा कहते हैं, **जिनवचसि**-वाणी में रमने से लाभ होता है। ऐसे कहते हैं। देखो ! पाठ बोला अमृतचन्द्राचार्य का। चन्दुभाई ! पाठ क्या है ? **जिनवचसि...** वाणी में रमना है ? वाणी तो परलक्ष्यी वस्तु है, वहाँ रमना तो राग है। वाणी में आया ऐसा शुद्ध उपादेय भगवान आत्मा... शुद्ध चैतन्यवस्तु वाणी में उपादेयपने आयी है। इसके सिवाय सब भेद और राग और निमित्त हेयपने कहने में आये हैं। समझ में आया ? मार्ग ऐसा लगे, बड़े पण्डित गोता खा जाये। समझ में आया ?

वे कहते हैं, राजमल का आर्षवचन नहीं, बस जाओ। परन्तु आर्षवचन में कहना क्या है ? सुन तो सही ! आर्षवचन क्या कहते हैं ? आर्षवचन वीतरागभाव बताते हैं। पंचास्तिकाय में नहीं आया ? सारे जैनशास्त्र का—चार अनुयोग का सार वीतरागभाव है। क्या उसमें कहा ? वीतरागभाव उसमें क्या कहा ? निमित्त, राग, भेद की अपेक्षा छोड़कर अभेदस्वभाव की अपेक्षा करना, उससे वीतरागता आती है—वह सारा चार अनुयोग का सार है। समझ में आया ? चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। वीतरागता कैसे होती है ? वीतरागता कैसे होती है ? राग के लक्ष्य से होती है ? निमित्त के लक्ष्य से होती है ? भेद के

लक्ष्य से होती है ? तो उसका अर्थ ये हुआ कि सारा जैनशास्त्र का सार, चैतन्य भगवान एकरूप अभेदरूप पर दृष्टि करके रमना वही सारे शास्त्र का सार है। समझ में आया ?

जिसमें वीतरागता उत्पन्न हो। वीतरागता कब उत्पन्न होती है—प्रगट होती है ? अभेद पर दृष्टि से, स्थिरता से वीतरागता उत्पन्न होती है। भेद है, ज्ञान करने की चीज़ है। भेद, राग, निमित्त जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य है नहीं। ऐसा वीतराग की वाणी में कहा। समझ में आया ? उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु... **रमन्ते...** सावधानपने अन्तर में रुचि-श्रद्धा-प्रतीति का अनुभव करके करते हैं, उसका नाम भगवान ने **जिनवचसि रमन्ते** कहने में आया है। कहीं वाणी में रमना नहीं है। लिखा है न उसमें ? भावार्थ में लिखा है। ... ऐसा लिखा है। प्राप्ति नहीं। देखो ! **वचन पुद्गल है, उसकी रुचि करने पर स्वरूप की प्राप्ति होती नहीं।** पुद्गल में प्राप्ति है ? **इसलिए वचन के द्वारा कही जाती है जो कोई उपादेय वस्तु, उसका अनुभव करने पर फल प्राप्ति है।** समझ में आया ?

बहुत सरस बात कही ! अभेद का आश्रय करना, उसमें वह भी आया कि भेद तो है... भेद है। अभेद का आश्रय करना, उसका अर्थ क्या आया ? शुद्ध जीववस्तु उपादेय है, शुद्ध भगवान शुद्धात्मा आदरणीय है, उसका अर्थ हुआ कि अशुद्धता है, भेद है, निमित्त है, परन्तु आदरणीय नहीं। आदरणीय एक है। (भेदादि) आदरणीय नहीं और आदरणीय एक है, उसका नाम अनेकान्त कहने में आता है। शुद्ध वस्तु भी आदरणीय, भेद भी आदरणीय है—यह अनेकान्त है ही नहीं। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म। वीतराग का तत्त्व ऐसा सूक्ष्म (लगे) लोगों को। अन्दर में स्वसन्मुख होने में क्या चीज़ कैसी है... बहार से भटक... भटक... भटक... यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा। विकल्प और पर और पर से... समझ में आया ?

और फिर ऐसा कहते हैं वे। यहाँ .... तीर्थ और यात्रा, मूर्ति तो उसमें नहीं आयी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और कहते हैं ने ? कि जिनवचन में सब गुण हैं, मूर्ति में नहीं। और एक ऐसा कहते हैं। मूर्ति में क्या गुण है ? जिनवचन में तो, भगवान के जितने गुण हैं, वे वाणी में आये हैं। वाणी में गुण आते हैं ? ऐई ! वाणी में गुण न आवे केवली का ?

मुमुक्षु : कथन आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कथन तो वाणी है, जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय में जड़ की शक्ति है, जड़ का गुण आया। आत्मा का गुण उसमें आया? समझ में आया? वे कहते हैं, जिनवाणी पूज्य है। भगवान की मूर्ति पूज्य नहीं। क्यों नहीं? कि मूर्ति में गुण नहीं, जिनवाणी में गुण हैं। दोनों एक ही बात हुई। जिनवाणी में गुण कहाँ है? जिनवाणी तो, यहाँ कहेंगे, पुद्गलात्मक है। वह तो अचेतन है। क्या अचेतन में जीव का गुण आया? भाई! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिनवाणी में सब गुण हैं, ऐसा निर्णय करो। मूर्ति में कुछ है नहीं। नहीं तो तुम्हारा बड़ा दोष रह जायेगा। समझे?

मुमुक्षु : जीव के गुण जीव में।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव का गुण जीव में है। वाणी में है? तब कहे, कहने में आती है (उस) वाणी में गुण आत्मा का आता है तो वाणी आती है या नहीं? नहीं। समझ में आया? वह कहते हैं देखो! क्या कहते हैं यहाँ अपने?

जिस वाणी को नमस्कार किया है, वह वाणी कैसी है? 'प्रत्यगात्मनस्तत्त्वं पश्यंती' (प्रत्यगात्मनः) अर्थात् **सर्वज्ञ वीतराग।** भाषा देखो! समझ में आया? नहीं तो **प्रत्यक् आत्मनः** भिन्न आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं, उसका नाम भी प्रत्येक आत्म कहने में आता है। प्रत्यक् अर्थात् द्रव्यकर्म, नोकर्म से भिन्न और भावकर्म से कथंचित् भिन्न। पहले आया न? जयचन्द पण्डित। प्रत्यक् आत्मा कहे न प्रत्यक्? प्रत्यक् अर्थात् भिन्न आत्मस्वरूप। समझे?

तत्त्वं पश्यंती। आत्मा का तत्त्व जड़कर्म से भिन्न, नोकर्म से भिन्न है और पुण्य-पाप के विकल्प से कथंचित् भिन्न है। ऐसे सर्वथा भिन्न नहीं है, पर्याय में है। द्रव्य-गुण में है नहीं। ऐसे आत्मा को जो वाणी दिखाती है, उसको यहाँ अनेकान्तमय दिव्यध्वनि कहने में आती है और जो सम्यग्ज्ञान दिखाता है, उसको भावसरस्वती कहने में आता है। भावश्रुतज्ञान है न, भावश्रुतज्ञान? भावश्रुतज्ञान, वह आत्मा को दिखाता है, उसको भी सरस्वती कहने में (आता है) और केवलज्ञान को भी सरस्वती कहने में आता है। अनन्त गुणरूप परमात्मा को ज्ञान साक्षात् देखता है। यहाँ उसमें पहले वाणी ली है। किसकी वाणी? ऐसे बताना है। किसकी वाणी? कि प्रत्यक् आत्मा की। प्रत्यक् आतमा अर्थात्

सर्वज्ञ वीतराग। देखो! पहले स्थापन किया। सर्वज्ञ वीतराग की अनुसारी की वाणी के अतिरिक्त कोई भी मान्य हो सके नहीं। कल्पना से छद्मस्थ ने कहा हो, उस वाणी को शास्त्र कहते नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ वीतराग....

उसका विवरण—प्रत्यक् अर्थात् भिन्न; भिन्न अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित... भगवान आत्मा। सर्वज्ञ परमेश्वर द्रव्यकर्म से भिन्न हैं। चार कर्म अघाति बाकी हैं तो भी भिन्न हैं। उनकी वाणी लेनी है न? भाई! यहाँ अरिहन्त की वाणी लेनी है, सिद्ध को वाणी (कहाँ हो)? देव का नाम कहा। 'देव-शास्त्र-गुरु तीन', ऐसा कहते हैं या नहीं? वन्दन में (स्तुति में) आता है या नहीं? देव, शास्त्र... ये शास्त्र। गुरु में तो आत्मा ले लिया—अपना आत्मा ही ले लिया। वन्दन में ऐसे कहते हैं कि नहीं? वह आ गया है अपने पूर्व में। 'देव-शास्त्र-गुरु तीन'। पहले देव को वन्दन नमः समयसार में (आया)। शास्त्र को नमन यहाँ किया (और) गुरु का विनय तीसरे में, अपना स्वरूप ऐसा मैं प्रगट करूँगा, उमसें आया। 'देव-शास्त्र-गुरु' तीन आता है या नहीं वन्दन में? शास्त्र को नमन करते हैं। तो शास्त्र जिसके मुख में से निकले, वे परमात्मा कैसे हैं? समझ में आया?

सर्वज्ञ की वाणी को शास्त्र कहते हैं। तो सर्वज्ञ कैसे हैं? जिसको द्रव्यकर्म... द्रव्यकर्म अर्थात् आठ कर्म, भावकर्म अर्थात् विकल्पादि, शरीर (आदि) नोकर्म से रहित... **ऐसा है आत्मा—जीवद्रव्य जिसका, वह कहलाता है प्रत्यगात्मा...** कहते हैं, लो। केवलज्ञानी को यहाँ ही प्रत्यक् आत्मा कहते हैं। प्रत्यक्—पृथक् हो गये। विकल्प से, कर्म से, शरीर से पृथक् हो गये, इसका नाम सर्वज्ञ परमात्मा है। यह सर्वज्ञ परमात्मा की व्याख्या... पहले राग था, कर्म था, नोकर्म का सम्बन्ध था। सम्बन्ध था, वह छोड़कर प्रत्यक्-पृथक्... प्रत्यक्-पृथक्... प्रत्यक्-पृथक् हो गये। पूर्णानन्द की प्राप्ति एक समय में त्रिकाल ज्ञान जिनको उत्पन्न हुआ, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा... अब आया कहो, समझे? **उसका स्वरूप...** सर्वज्ञ का स्वरूप... सर्वज्ञ का स्वरूप... **उसको अनुभवनशील है।** सर्वज्ञ के स्वरूप की अनुभवनशील वाणी है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा को एक समय में त्रिकाल पूर्ण ज्ञान, आनन्द आदि प्रगट हुआ, पर से पृथक् अपने में परिपूर्ण हुए, उनकी वाणी... वाणी भगवान की अनुभवशील है। वाणी

भगवान की अनुभवनशील है। अनुभवनशील है वाणी। ऐ धन्नालालजी! यह क्या अनुभवनशील? अनुभवनशील का अर्थ, सर्वज्ञ भगवान जिन्हें त्रिकाल ज्ञान है... वह कहते हैं देखो! अन्दर।

भावार्थ इस प्रकार है—कोई वितर्क करेगा कि दिव्यध्वनि तो पुद्गलात्मक है, अचेतन है। दिव्यध्वनि तो... अनुभवनशील की व्याख्या करते हैं अब। अनुभवनशील क्यों कहा? **दिव्यध्वनि तो पुद्गलात्मक है, अचेतन है। अचेतन को नमस्कार निषिद्ध है।** तुम तो अचेतन को नमस्कार करते हो और **अचेतन को नमस्कार निषिद्ध है।** देखो! वाणी पुद्गल है, हों! वाणी में केवली का गुण बिल्कुल नहीं। चाहे तो समयसार हो या आचारांग, सूयगडांग आदि हो... (उसमें) भगवान का गुण या आत्मा का गुण उसमें बिल्कुल नहीं, वह तो जड़ की पर्याय है। समझ में आया?

परन्तु बोले, इतना गुण तो आता है या नहीं भाषा में? भाषा में (गुण) आये बिना समझ में क्यों आता है अन्दर? परन्तु वाणी में कुछ भी गुण जो न आवे तो वह गुण के समझने का कारण क्यों हो? यह वस्तु ऐसी है, ऐसी नहीं है—ऐसा जो यहाँ भान-बोध (होता) है, वह बोध का अंश जो वाणी में न आवे तो पर को वाणी का लाभ और ज्ञान कैसे होता है? धन्नालालजी! बिल्कुल आत्मा की पर्याय का अंश भी वाणी में आता नहीं। वाणी तो एकदम अचेतन है। आहाहा! अचेतन का द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों अचेतन हैं। अचेतन द्रव्य है, उसका भाव भी अचेतन है और उसकी पर्याय भी अचेतन का भाव है। उसमें चैतन्य का किंचित् भाव आया नहीं। सर्वज्ञ की कही वाणी, इसलिए उसमें कुछ भाव है, बिल्कुल झूठ है। समझ में आया? कहते हैं, उसकी व्याख्या करते हैं। अभी छोड़ कहाँ दिया है? अभी आता है न। अनुभवनशील की व्याख्या आती है।

दिव्यध्वनि तो पुद्गलात्मक है... उसके प्रति समाधान करने के निमित्त यह अर्थ कहा कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है... यह अनुभवशील की व्याख्या की। अनुभवन अर्थात् जो सर्वज्ञपद है, उसके अनुसार ही वाणी अपने से परिणमती है। समझ में आया? जो सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ परमात्मा विराजते हैं सर्वज्ञपद में, उनके अनुसरने के योग्य ही वाणी का स्वभाव है। वाणी में प्रमाणता तो अपने से है, वाणी

की प्रमाणता तो अपनी पर्याय से है। पर के प्रकार से है ? सर्वज्ञ के कारण से उसमें व्यवहार प्रमाणिकता कहने में आती है। और ऐसा नहीं, वह प्रमाण पावे... वाणी है, वह स्वयं प्रमाणतारूप है। स्वयं अपनी पर्याय से प्रमाणतारूप है। परन्तु स्वयं पर्याय... दिव्यध्वनि परमाणु की पर्याय है (वह) स्वयं अपने से प्रमाणितपने (परिणमती है)। समझे ? प्रमाण है, अपने से प्रमाण है, पर से प्रमाण नहीं। पर से प्रमाण तो व्यवहार (से) कहा। समझ में आया ? यहाँ तो भाषा कैसी है ? **वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है...** वाणी अपने से है तो वह स्वयं अपने से प्रमाणित है। निश्चय से अपने प्रमाण से है। पर से प्रमाण कहना तो व्यवहार है। परन्तु सर्वज्ञ जैसे हैं, ऐसी वाणी अपने कारण से परिणमी है, तो सर्वज्ञ अनुसारिणी कहने में आया है। आहाहा!

देखो! कैसी भाषा ली है! अनुभवन... अनुभवन... अनु-(अनुसरकर), (भवन)-होना, शील-(स्वभाव)। जैसा सर्वज्ञस्वभाव है, वैसा अनुसरण होकर होना, ऐसा परमाणु की पर्याय का अपना स्वभाव है। समझ में आया ? सर्वज्ञ हैं तो उस कारण से वाणी का परिणमन ऐसा हुआ है—ऐसा नहीं। स्वतन्त्रपने, मात्र निमित्त जैसा ज्ञान है, ऐसे अनुसरके भवन होना, ऐसा परमाणु की पर्याय का स्वयंसिद्ध शील-स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। अनुभवनशील है। अपना पुद्गल-दिव्यध्वनि का स्वभाव ऐसा है कि अनुभवनशील है। जैसे सर्वज्ञ हैं, ऐसे अनुसरके होना, ऐसा परमाणु का-दिव्यध्वनि का अपना स्वभाव है। पर जैसा है, ऐसा होना यह अपना स्वभाव है। पर के कारण से नहीं। आहाहा! अमरचन्दभाई! समझ में आया ?

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ हुआ न निमित्त-नैमित्तिक। परन्तु नैमित्तिक अपने से है। नैमित्तिक अपने शील-स्वभाव से है। वाणी अपने से अनुभवनशील वाणी है। पर का अनुकरण करके होना, परन्तु यह अपना स्वभाव है। पर के कारण से ऐसा है, ऐसा नहीं। यहाँ सर्वज्ञ हैं तो वाणी को ऐसा होना पड़ता है, ऐसा नहीं। अरे! समझ में आया ? वाणी तो स्वयंसिद्ध प्रमाणिकता है। निश्चय से स्वयं प्रमाणता है। नहीं तो वह वाणी का... वाणी में स्व-पर वार्ता कहने का अपना स्वभाव है, आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! यहाँ

तो अभी वाणी में... समझ में आया? आत्मा सर्वज्ञ हुआ, एक समय में त्रिकाल ज्ञान-आनन्द हो, तो वाणी का स्वभाव ऐसा है... अपना—वाणी का स्वभाव ऐसा है कि उसका (निमित्त) है ऐसा अनुसरके होना—अपने में होना, यह उसका शील-स्वभाव है, ऐसा कहते हैं, भाई! उसके (निमित्त के) कारण से नहीं। कैसी भाषा प्रयोग की है! आहाहा!

यहाँ भाव जो है, वह तो अपने में है... समझ में आया? श्रद्धा-ज्ञान आदि जो भाव है, वह तो अपनी पर्याय में यहाँ है। परन्तु वाणी जो निकलती है, उसको अनुसरके... उसके अनुकरणरूप भवन-वाणी में अपने से होना, (ऐसा) वाणी का स्वभाव है। इस भाव के कारण ऐसा स्वभाव है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? देखो! भारी गड़बड़। भगवान... यहाँ तो वाणी को सिद्ध करते हैं। परन्तु वाणी कैसी है? कि सर्वज्ञ अनुसारिणी। जैसा सर्वज्ञ भगवान का ज्ञान है... वाणी तो अपनी पर्याय से वाणी परिणमती है, वह नैमित्तिक है; भगवान का ज्ञान निमित्त है। केवलज्ञानी का ज्ञान निमित्त है और योग निमित्त है। यहाँ वाणी का कहनेवाला लेना है न, भाई? केवली का योग निमित्त है और ज्ञान निमित्त है। निमित्त का अर्थ, उसके (-उपादान के) प्रमाण से उसमें (-निमित्त में) होना ऐसा नहीं। वह (उपादान) तो अपने कारण से होता है, तब उसको निमित्त कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

वाणी में उस समय में ऐसी पर्याय होने का अपना ही स्वभाव है। देखो तो सही! क्या कहते हैं? पोपटभाई! भगवान आत्मा के ज्ञान की तो बलिहारी है। उसकी तो बात ही क्या कहना! भगवान चिदानन्दस्वरूप अपने आश्रय से सर्वज्ञपद प्रगट किया है, वह पूर्व की पर्याय से नहीं, राग से नहीं, निमित्त से नहीं। अपने द्रव्य के कारण से प्रगट हुआ है। वास्तव में तो पर्याय, पर्याय से उत्पन्न हुई है। सर्वज्ञपद भी अपनी पर्याय से उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? परन्तु वह सर्वज्ञपद है तो वाणी में ऐसा आता है कि छह द्रव्य हैं, उसमें अनन्त गुण हैं, छह द्रव्य में अनन्त गुण हैं, प्रत्येक में अनन्त पर्याय हैं, पर्याय स्वतन्त्र हैं। ऐसा वाणी में आता है। जैसा यहाँ ज्ञान में है, वैसा आता है। परन्तु वाणी वह अपने कारण से परिणमी है, वाणी का अपना स्वभाव ही ऐसा है। समझ में आया?

मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से... वाणी का ऐसा ही स्वभाव है, ऐसा ही उस

समय की अपनी पर्याय में अनुभवनशील... भाषा तो डाली है न! राजमल भी जोरदार! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा... उसको—सर्वज्ञ को प्रत्यक् कहते हैं। उसका जो स्वरूप... सर्वज्ञ का स्वरूप... सर्वज्ञ का स्वरूप... सर्वज्ञ का स्वरूप... केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द आदि, उसका स्वरूप उसको अनुभवनशील... उसके स्वरूप को अनुसरके होना, (ऐसा) परमाणु की पर्याय का अपना स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। सोगनचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : वाणी का माहात्म्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी का माहात्म्य वाणीरूप से कहना है। वाणी का माहात्म्य वाणीरूप से कहना है। वाणी का माहात्म्य सर्वज्ञ से उसमें घुस गया है? कनुभाई! सर्वज्ञ हैं ऐसी वाणी क्यों आयी? केवलज्ञान है... केवलज्ञान है... केवलज्ञान ऐसे उत्पन्न हुआ और परमानन्द साथ में है, चतुष्क प्रगट हुआ है, शक्तिरूप अनन्त था, एकाकार होकर प्रगट हुआ (तो) वाणी ऐसी ही निकलती है। वाणी में कोई सम्बन्ध है या नहीं? केवलज्ञान का कुछ अंश अन्दर स्पर्श करता है या नहीं? इसके बिना ऐसी वाणी आती है? ऐ देवानुप्रिया! कहाँ गये हीराभाई?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! सुन तो सही, भाई! वाणी में ज्ञान से प्रमाणता कहना, वह तो व्यवहारिकभाव है। आहाहा! क्योंकि पूरी बात उड़ जाये... नहीं तो तत्त्व की बात उड़ जाये। समझ में आया? वाणी में अपने में-पुद्गल में ताकत ऐसी है... वह प्रवचनसार में कहा नहीं? वाणी अपने कारण से परिणमती है, हम परिणमाते नहीं, हमारे कारण से वाणी निकली नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी स्वतन्त्रता स्वीकारे... पर्याय में ऐसी स्वतन्त्रता वाणी में? समझ में आया? देखो! एक और (कहे कि) पुद्गल की शक्ति ऐसी है कि केवलज्ञान को रोकती है। भाई! देखो सुनो! एक ओर ऐसा कहा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कि देखो! पुद्गल की अचिन्त्य शक्ति कि केवलज्ञान को भी रोका है। उसका अर्थ, अपनी केवलज्ञान की पर्याय अपने से हीन हुई है, (तब) वह पुद्गल की पर्याय की ऐसी निमित्तरूप शक्ति है। पुद्गल में निमित्तरूप शक्ति है। वह क्या उपादान को रोकती है? समझ में आया? सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान भगवान की पर्याय, उसके सामने यह पुद्गल की

उत्कृष्ट केवलज्ञानावरणीय... केवलज्ञानावरणीय की पर्याय जो पुद्गल की उत्कृष्ट शक्ति है, ऐसी कोई पर्याय जगत में दूसरी नहीं कि जो केवलज्ञान में विघ्नरूप निमित्त हो। ऐसी यह एक ही शक्ति है। समझ में आया?

दिव्यध्वनि में ऐसी शक्ति है... समझ में आया? उस समय में दिव्यध्वनि ऐसी है कि जैसा सर्वज्ञपद है, जैसा उनको छह द्रव्य कहने हैं, स्वतन्त्र जीव उपादेय कहना है—ऐसी वाणी अपने कारण से अनुभवनशील होकर निकलती है। आहाहा! समझ में आता है चिमनभाई? भारी सूक्ष्म परन्तु। आहाहा! भाई! यह द्रव्य है या नहीं? तो द्रव्य का उसका स्वकाल है या नहीं? परमाणु का दिव्यध्वनि के समय उसका स्वकाल है या नहीं? (परमाणु की) स्वकाल की पर्याय क्या केवलज्ञान के स्वकाल के कारण से होती है? समझ में आया? आहाहा! वीतराग का मार्ग देखो तो सही! दिव्यध्वनि (रूप) परमाणु की पर्याय में (परिणमन), उसी दिव्यध्वनि के काल में वह परमाणु में ऐसी पर्याय अनुभवनशील है कि जैसा यहाँ सर्वज्ञ ने जाना (है, ऐसा) कहना है, ऐसी ही वाणी अपने कारण से अनुसरण करके निकलती है, अपने कारण से। समझ में आया?

उसका अर्थ ऐसा नहीं कि दिव्यध्वनि में भगवान के कोई गुण की पर्याय आ जाती है। आत्मा के गुण का कोई अंश उसमें आ जाता है, ऐसा है नहीं। उसमें ऐसा स्वभाव है कि जैसी वस्तु की स्थिति है, ऐसा प्रतिपादन करे, यह परमाणु की पर्याय—दिव्यध्वनि की शक्ति है। आहाहा! उड़ा न अभिमान, छोड़ न...। मैं भाषा करता हूँ, मैं समझता हूँ, (अज्ञानी) ऐसा कहता है, बराबर देखता हूँ, बराबर जहाँ चाहिए वहाँ मैं ऐसा कर सकता हूँ, बराबर अभी बोलूँ, एकदम बोलूँ, जोर से बोलूँ... सुन तो सही भगवान! यह तेरे में है ही नहीं। तेरा भाव है, ऐसी वाणी निकलती है वह अपने कारण से निकलती है, तेरे कारण से नहीं। आहाहा! यह वह कुछ भेद! समझ में आया?

कहते हैं, अचेतन को क्यों नमस्कार किया? वह बात चलती है। समझ में आया? अचेतन है, तो क्यों (नमस्कार) किया? भाई! **अचेतन को नमस्कार निषिद्ध है, उसके प्रति समाधान...** उसके निषेध का समाधान करते हैं या नहीं? **अचेतन है, अचेतन को नमस्कार निषिद्ध है।** तो उसको नमस्कार क्यों किया? सुन तो सही, भगवान! एक बात

है... **उसके प्रति समाधान करने के निमित्त यह अर्थ कहा कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है।** सर्वज्ञस्वरूप—अनुसारिणी... सर्वज्ञस्वरूप—अनुसारिणी हों, सर्वज्ञस्वरूप-रूप नहीं। **सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है।** सर्वज्ञ के स्वरूप का अनुसरण करने का (वाणी की) अपनी पर्याय में ताकत है। समझ में आया?

कोई कहता था, बोलते समय उसमें कुछ ज्ञान आता है या नहीं तुम्हारा? आये बिना हमको क्यों बोध होता है? दूसरा कहता है और ये सुनता है, तो ये ऐसा है (ऐसी) श्रद्धा में अन्तर पड़ता है न? वाणी में तुम्हारी श्रद्धा का जोर आता है कि अंश आता है तो अंश से लाभ होता है या नहीं? ऐ भीखाभाई! आहाहा!

एक वस्तु की स्वतन्त्रता तो देखो! यहाँ सर्वज्ञपद हुआ तो वाणी में उसी समय में अपने कारण से उसके अनुसरण होना, (ऐसा) अपना शील-स्वभाव अपने से है; पर से है नहीं। आहाहा! तब कहते हैं कि वक्ता प्रमाणे वचन प्रमाण... वक्ता प्रमाणे वचन प्रमाण। कहते हैं कि नहीं? पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण। वह तो पुरुष के प्रमाण से वचन का प्रमाण आया। सर्वज्ञ पुरुष के प्रमाण से वचन प्रमाण आया। उसमें स्वयं प्रमाण क्या आया? वह तो व्यवहार से बात है। आहाहा! ऐ देवानुप्रिया! बड़ी चर्चा ली है उसमें फिर.... वह चर्चा में आया है। उसने पूछा है कि वाणी भी स्वत: प्रमाण है कि परत: प्रमाण है? वाणी स्वत: प्रमाण है। पण्डितों के बीच चर्चा हुई है खानिया में। कहाँ गये देवीलालजी? कहाँ बैठे? समझ में आया?

यह वाणी निकलती है भगवान की, वह स्वत: प्रमाण है या पर से प्रमाण है? स्वत: प्रमाण जड़ से प्रमाण क्या आया? जड़ में प्रमाणता कहाँ आयी? प्रमाणता तो ज्ञान में आती है। देवीलालजी! ऐसा प्रश्न उठा है न भैया? प्रमाण तो ज्ञान है। ज्ञान को प्रमाणता आती है कि जड़ को प्रमाणता आती है? अरे, सुन तो सही! यहाँ ज्ञान की प्रमाणता की कहाँ बात है? समझ में आया? प्रमाणता अर्थात् उसकी अपने स्वभाव की योग्यता अपने से है या पर से है? वाणी की प्रमाणता निश्चय से अपने से है या पर से है? निश्चय से अपने से है। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ के साथ में ऐसी वाणी आयी तो वाणी को भी हम नमस्कार करते हैं। समझ में आया? व्यवहार से सिद्ध किया है। नमस्कार में व्यवहार सिद्ध

किया है। निश्चय तो सिद्ध किया, साथ में ऐसा विकल्प भगवान की वाणी को वन्दन करने का आता है, शुभभाव ऐसा होता है। क्योंकि वाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी निकली है। समझ में आया? तो वाणी को उस कारण से नमस्कार करने में आता है। समझ में आया? धन्नालालजी! यह अनुभवनशील की इतनी व्याख्या है। आहाहा!

अर्थ कहा कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है। सर्वज्ञ (स्वरूप)-अनुसारिणी की व्याख्या (कि) वह अनुभवनशील है। भगवान केवलज्ञानी प्रभु की ॐ दिव्यध्वनि जो निकलती है, वह अपने से निकलती है। उस समय में वह परमाणु की पर्याय में ऐसी स्व-पर वार्ता कहने की ताकतरूप से परिणमती है। शील अर्थात् उसका ही स्वभाव है। परमाणु में ऐसा स्वभाव है कि ॐ ध्वनि निकलती है, भगवान के कारण से नहीं। समझ में आया? देखो तो सही! सर्वज्ञ की वाणी में... ऐसे छह द्रव्य, नौ तत्त्व, नौ तत्त्व में भी एक आत्मा उपादेय है, पंचास्तिकाय में एक शुद्ध आत्मा अस्तिकाय ही उपादेय है, छह द्रव्य में एक शुद्ध द्रव्य-आत्मा ही उपादेय है—ऐसा वाणी कहती है (और) भगवान के ज्ञान में भी ऐसा है। ऐसी वाणी स्वतन्त्र है, भाई! बापू! तुझे परमाणु की पर्याय की स्वतन्त्र स्वभाव की शीलता... देखो न! शब्द प्रयोग किया शील... उसका स्वभाव है। भाई! तेरा स्वभाव तो, जानना-देखना तेरा स्वभाव है, वह पर के कारण से नहीं। तेरा स्वभाव जानना-देखना, वह पर के कारण से नहीं, राग के कारण से नहीं, निमित्त के कारण से नहीं, पुस्तक के कारण से नहीं, वाणी के कारण से नहीं। समझ में आया?

तेरा जो जानन-देखन शील-स्वभाव है, यह तेरा स्वभाव है। राग आता है, उसको भी जानना और त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप है, उसको भी जानना—यह तेरा जाननशील स्वभाव है। पर की अपेक्षा बिल्कुल नहीं। ऐसे वाणी में कथन करने की स्वतन्त्र ताकत है। पर की अपेक्षा आयी तो उस प्रमाण से वाणी परिणमी है, ऐसा है ही नहीं—ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ हैं तो उस प्रमाण से वाणी को परिणमना पड़ा है, ऐसा है नहीं। बड़ी निमित्त-नैमित्तिक की पृथक्ता बताते हैं। **ऐसा माने बिना भी बने नहीं।** देखा? **ऐसा माने बिना भी...** कहते हैं कि सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ को अनुसरण करके वाणी अपने से उस समय में परिणमी है, ऐसा व्यवहार मानना पड़ेगा। सर्वज्ञ-अनुसारिणी वाणी है, ऐसा व्यवहार जानना। समझ में आया? निश्चय से अपने से है, उसकी अनुसारिणी है, यह व्यवहार है।

उसका विवरण—वाणी तो अचेतन है। उसको सुनने पर जीवादि पदार्थ का स्वरूपज्ञान... देखो! वाणी **सुनने पर जीवादि पदार्थ का स्वरूपाान जिस प्रकार उपजता है...** भाषा देखो! जिस प्रकार... जिस प्रकार उपजता है तेरे से। समझ में आया? तब उसको निमित्त कहने में आता है। निमित्त है तो (ज्ञान) उपजता है तेरे में, ऐसा नहीं। आहाहा! गजब वाणी भाई यह तो! **जीवादि पदार्थ का स्वरूपज्ञान...** देखो! ऐसा आया न। उसमें आया था न पहले कि उनका स्वरूप जानने पर... उसमें आया था न पहले? **उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीव को भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं।** परन्तु वहाँ ऐसा आया था पहले श्लोक में 'नमः समयसाराय' में। 'नमः समयसार' में आया था न? **अजीव पदार्थ-पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल के और संसारी जीव के सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं और उनका स्वरूप जानने पर भी जाननहारे जीव को भी सुख नहीं...** उसका स्वरूप जैसा है, ऐसा जाने तो भी उसको ज्ञान नहीं। ज्ञान तो अपने (को जानने से) आया तब ज्ञान कहने में आता है। समझ में आया? लो!

स्वरूपज्ञान जिस प्रकार उपजता है, उसी प्रकार जानना। अपने स्वरूप में वाणी निमित्त पड़ती है, अपनी पर्याय में उस प्रकार का ज्ञान उपजानेयोग्य है। एक बात। वाणी में आया कि शुद्ध उपादेय है, तो पर का लक्ष्य छोड़कर अपने में (ज्ञान) उत्पन्न होता है तो जो वाणी में पूर्व में थी, उसको निमित्त कहने में आया है। ऐसा **जिस प्रकार उपजता है, उसी प्रकार जानना—वाणी का पूज्यपना भी है।** लो, वाणी का भी पूज्यपना भी है। व्यवहार से वाणी भी पूजनीक कहने में आती है, भगवान की अनुसारिणी वाणी अपने से निकली है तो भी। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १, रविवार, दिनांक २०-८-१९६७
कलश - २-३, प्रवचन नं. ५

समयसार कलश, (जीव) अधिकार चलता है। दूसरा श्लोक है दूसरा। पहले में क्या आया और दूसरे में क्या आता है? पहले में यह आया कि आत्मा को सार क्यों कहा? समयसार कहा न? सार का अर्थ, अपना आत्मा अथवा सर्वज्ञ परमात्मा का आत्मा। अपना शुद्ध आत्मा जानने से ज्ञान और सुख होता है, उस कारण से आत्मा को सार कहने में आया है। समझ में आया? समयसार-सम्यक् प्रकार से आत्मा अपने(रूप) परिणमन करके... सार अर्थात् शुद्ध स्वरूप परमानन्दमूर्ति अपना ध्रुव आनन्द उसका अनुसरण करके शुद्धज्ञान का प्रगट होना और आनन्द का प्रगट होना, उसका नाम समयसार कहने में आता है। ऐसा कहकर अपने आत्मा को भी वन्दन किया और सर्वज्ञदेव को भी वन्दन किया। समझ में आया?

'देव-शास्त्र-गुरु तीन' आता है या नहीं वन्दन में? पहले में देव को (नमस्कार) किया, दूसरे में शास्त्र को करते हैं। कैसा शास्त्र होना चाहिए? सर्वज्ञज्ञान का अनुसरण करनेवाली वाणी। देखो! पहले वह सिद्ध किया है। सर्वज्ञपना जिसको प्रगट हुआ है एक समय में... वह कहेंगे। वह प्रश्न यहाँ आया है। कैसे हैं सर्वज्ञ वीतराग? वही यहाँ आया है। कैसे हैं सर्वज्ञ वीतराग कि जिनको अनुसरण करके वाणी अपनी पर्याय से परिणमन हुई है? अनुभवनशील कहा न? सर्वज्ञ जिसे एक समय में ज्ञान और आनन्द पूर्ण प्रगट है, उनको अनुसरण करके अर्थात् वे तो निमित्त हैं, परन्तु वाणी अपनी पर्याय से—भाषावर्गणा से ऐसी दिव्यध्वनिरूप स्व-पर वार्ता कहने की ताकतरूप जो भाषा परिणमती है, उसको यहाँ दिव्यध्वनि कहते हैं। वह दिव्यध्वनि सर्वज्ञ के अनुसार हुई है। अनुसार कैसा? जैसी सर्वज्ञ वीतराग पर्याय प्रगट हुई है, वाणी में ऐसा ही कथनरूप परिणमन वाणी के अपने कारण से हुआ है। समझ में आया? आहाहा!

अनुभवनशील कहा न? सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी परिणमती है। अपने कारण से हों, वाणी अपने से। सर्वज्ञ सर्वज्ञ से परिणम रहे हैं, परम आनन्दरूप परमात्मा अपने से परिणमे हैं, वाणी अपने से परिणमी है। सर्वज्ञ का तो निमित्त है, परन्तु निमित्त के अनुसरण

का अर्थ—जैसा ज्ञान है, वीतरागता है, आनन्द है, जैसे उसमें छह द्रव्य जानने में आये और जिसकी वाणी में... जानने में (अर्थात्) उपदेश में छह द्रव्य में आत्मा ही उपादेय है, ऐसा जो सर्वज्ञ के ज्ञान में था, ऐसी वाणी परिणम गयी है। समझ में आया? अपने कारण से।

सर्वज्ञ तो निमित्त हैं। वाणी में—दिव्यध्वनि की पर्याय में भी इतनी ताकत है कि जैसा सर्वज्ञ ने ज्ञान में देखा, जाना, अनुभवा, ऐसी वाणी अपने कारण से परिणमती है, उस वाणी को सर्वज्ञ अनुसारिणी कहने में आती है। इसलिए वह वाणी पूज्य है। समझ में आया? एक तो शुद्धात्मा सिद्ध किया और पीछे वाणी। किसकी वाणी मानना? जो सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी हो। छद्मस्थ अपनी कल्पना से कहे, उसकी वाणी मान्य नहीं। समझ में आया? सन्त या समकिती जो कहते हैं वह, सर्वज्ञ जो कहते हैं, उसी अनुसार कहते हैं। अपनी कल्पना से नहीं। ऐसी सर्वज्ञ वाणी को यहाँ पूज्यपना (कहा) और नमस्कार करने में आया है।

अब कहते हैं, **कैसे हैं सर्वज्ञ वीतराग?** कि जिसके अनुसरण करके वाणी अपने कारण से परिणमी है। **अनन्तधर्मणः...** यह विशेषण आया। कैसे हैं सर्वज्ञ भगवान? पर्याय में, हों। **अनन्तधर्मणः...** अनन्त का अर्थ ऐसा किया राजमलजी ने कि अनन्त न कहते **अति बहुत हैं गुण जिनके...** ऐसा शब्द लिया। अनन्त का अर्थ किया। अति बहुत हैं... अति बहुत हैं, ऐसा। कितने गुण हैं? अति बहुत गुण हैं। जिसकी गुण की संख्या का अन्त नहीं, इसलिए अनन्त का अर्थ अति बहुत (किया)। सर्वज्ञ पर्याय में तीन काल, तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय समस्त जानने में आये, ऐसी ताकत सर्वज्ञ की पर्याय में है। ओहोहो!

ऐसे यहाँ मांगलिक किया। ऐसी सर्वज्ञ की वाणी को यहाँ पूज्यपने माना। सर्वज्ञ को भी साथ में वन्दन किया है। **अति बहुत हैं गुण...** धर्म का अर्थ गुण किया। पाठ है **अनन्तधर्मणः...** अनन्त धर्म धर्म का अर्थ गुण किया। गुण का अर्थ है पर्याय। समझ में आया? सर्वज्ञ पर्याय एक समय में पूर्ण जानने की शक्ति (रखती है)। इसमें कितनी शक्ति है? अति बहुत पर्याय हैं जिसकी। तीन काल, तीन लोक जानने का सामर्थ्य—ताकत है, उससे अनन्तगुणे पदार्थ हो और त्रिकाल से दूसरा काल हो तो भी जानने की ताकत है। ऐसी अनन्त बहुत दशा ज्ञान की पर्याय में प्रगट हुई है। समझ में आया?

ऐसा सर्वज्ञ पर्याय का जो निर्णय करे... '**जो जाणहि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं, सो जाणहि अप्पाणं...**' अपना स्वभाव त्रिकाल सर्वज्ञस्वभाव है, उसमें से सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हुई है। ऐसा प्रगट जिसको है, उसका अनुसरण करनेवाला... वह पर्याय प्रगट हुई किसमें से? द्रव्य में से। मैं भी सर्वज्ञस्वभावी हूँ, ऐसा अन्तर स्वभाव का अनुसरण— अनुकरण करके जो पर्याय प्रगट होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं, **अनन्तधर्मणः...** आहाहा! उन्होंने 'अनन्त' ऐसा अर्थ नहीं किया पण्डितजी ने। अनन्त नहीं लिया। **अति बहुत...** क्या कहा! आकाश के जो प्रदेश हैं, उससे भी अनन्तगुणे गुण एक आत्मा में हैं। आहाहा! समझ में आया?

छह माह आठ समय में छह सौ आठ जीव मुक्ति को पाते हैं। छह माह और आठ समय में। ऐसा-ऐसा अनन्त काल बीत गया। ऐसी सिद्ध की संख्या जो अनन्त हुई, उससे अनन्तगुने तो जीव हैं संसार के। उससे अनन्तगुनी तो संसार के जीव की संख्या है। उससे अनन्तगुनी तो परमाणु की संख्या है। समझ में आया? उससे अनन्तगुनी तो त्रिकाल के समय की संख्या है। उससे अनन्तगुने आकाश के प्रदेश की संख्या है। आकाश... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... यह स्वभाव की बात चलती है हों। सुनो!

जहाँ आकाश का (क्षेत्र) स्वभाव इतना... इतना कि कोई माप (नहीं)। है... है... है... ऐसे चला जाता है। कहीं 'नहीं है' ऐसा आता ही नहीं। क्या है यह चीज़? समझ में आया? क्षेत्र का स्वभाव भी अस्तिरूप ही चलता जाता है, कहीं नास्ति आती नहीं। क्या कहते हैं यह? समझ में आया? ऐसा अस्ति... अस्ति... ऐसे सारी दसों दिशा में आकाश... आकाश... आकाश... है... है... है... कहीं 'नहीं है' ऐसा नहीं आता। 'है' का अन्त नहीं... 'है' का अन्त नहीं। ओहो! क्षेत्रस्वभाव। उसके यह जितनी संख्या में प्रदेश हैं, प्रदेश... प्रदेश... उसकी जितनी प्रदेश की संख्या है, उससे अनन्तगुनी एक आत्मा में (गुण की) संख्या है। यहाँ पर्याय की बात करते हैं। इतनी अनन्तगुनी, आकाश के प्रदेश से अनन्तगुनी पर्याय सर्वज्ञ को एक समय में प्रगट हुई है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे सर्वा परमात्मा उनको जो वन्दन करे, उनका आदर करे... पहले कहा न समयसार में? '**वंदितु सव्व सिद्धे**' सर्व सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ। समझ में आया?

उसमें पड़ी है बड़ी बात। सर्व सिद्ध... अनन्त... अनन्त... ऐसे सिद्ध... एक-एक

(समय) में आकाश के प्रदेश से अनन्तगुनी... ऐसे अनन्त सिद्ध। इसकी सत्ता का समूह—गंज जिसकी प्रतीति में आता है और अपना उसमें वन्दन करते हैं... तो कहाँ से वन्दन किया ? अपनी पर्याय में अनन्त सिद्ध स्थापन करके, राग, अल्पज्ञता, निमित्त की रुचि छोड़कर ज्ञायकभाव की रुचि करते हैं तो अनन्त सिद्ध को वन्दन करते हैं, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ?

देखो ! आचार्य (कहते हैं), मेरे आत्मा में और तुम्हारे आत्मा में अनन्त सिद्धों को स्थापन करके मैं समयसार कहूँगा। आहाहा ! तुम्हारा लक्ष्य सिद्ध समान स्वरूप तेरा है , उस पर तेरा लक्ष्य होना चाहिए। और ऐसा यथार्थ लक्ष्य करके जो समयसार सुनेगा तो तुम्हारे में समयसार अर्थात् आत्मा की प्राप्ति होगी, होगी और होगी। वह कहते हैं। समझ में आया ?

तो कहते हैं, सर्वज्ञ... **अति बहुत हैं गुण जिनके... भावार्थ इस प्रकार है—कोई मिथ्यावादी कहता है कि परमात्मा निर्गुण है...** गुण बिना के हैं। गुण कैसा ? गुण-गुणी ऐसा भेद क्या ? उसका अर्थ करते हैं। **गुण विनाश होने पर परमात्मपना होता है।** वे कहते हैं। **गुण विनाश होने पर परमात्मपना होता है।** ऐसा अज्ञानी कहते हैं। यहाँ, गुण की पर्याय प्रगट हो तो परमात्मा होता है, ऐसी बात कहने में आती है। समझ में आया ? अरे ! सिद्धपद स्मरण में जिसको आया, उसको सब रागादि पर्याय, अल्पज्ञता और पर का विस्मरण हो जाता है। सर्वज्ञ का स्मरण आया, उसको अल्पज्ञता, राग और निमित्त का विस्मरण हो जाता है। तब सर्वज्ञ का स्मरण किया, ऐसे कहने में आता है। यहाँ तो फिर वाणी लेनी है। उसके अनुसार वाणी निकली हो, उसको शास्त्र कहते हैं, इसके अतिरिक्त दूसरे को शास्त्र कहते नहीं। समझ में आया ?

सर्वज्ञ जिसके शासन में नहीं, जिसके धर्म में सर्वज्ञ नहीं, तो उसमें सर्वज्ञ अनुसारी वाणी नहीं। समझ में आया ? और वाणी नहीं तो उसमें शास्त्र यथार्थ आते नहीं। कहते हैं, ऐसे परमात्मा जिनको अनन्त पर्याय प्रगट हुई हैं और गुण हैं, उनको गुण का नाश कहने में आता है तो परमात्मा का ही नाश हुआ, कहते हैं। **गुणों का विनाश होने द्रव्य का विनाश है।** देखो ! यह शास्त्र का विनय किया। समझ में आया ?

बनारसीदास में ऐसा श्लोक है कहीं। प्रत्येक (पद) है न प्रत्येक श्लोक का। दूसरा श्लोक लिया देखो! **जोग धरै रहै जोगसौं भिन्न, अनन्त गुनातम केवलज्ञानी।** जोग धरै... यही वाणी केवली की ली है न। **जोग धरै रहै जोगसौं भिन्न....** भगवान का केवलज्ञान... ऐसे सयोगी हैं, परन्तु योग से भिन्न हैं। ज्ञान का स्वरूप योग से भिन्न हैं। समझ में आया? **जोग धरै रहै जोगसौं भिन्न, अनन्त गुनातम केवलज्ञानी। तासु हृदे-द्रहसौं निकसी, सरितासम ह्वै श्रुत-सिंधु समानी।** उनके हृदय में से—ज्ञान में से... वाणी का रणकार वाणी के कारण से आया, परन्तु हृदय से आया, ऐसा कहने में आता है। **याते अनंत नयातम लच्छन, सत्य स्वरूप सिधंत बखानी। बुद्ध लखै...** सम्यग्दृष्टि ही वीतराग की वाणी को जान सकते हैं, अज्ञानी वीतराग की वाणी को पहिचान सकते नहीं। समझे? उसमें लिखा है, देखो! मिथ्यादृष्टि कोरे व्याकरण, कोषादि के ज्ञाता... भाई! अकेला व्याकरण और कोष, शब्द, ऐसा और वैसा जाननेवाला भगवान की वाणी को पहिचान नहीं सकता। समझ में आया?

ऐसे लोगों को आदिपुराण में अक्षरम्लेच्छ कहा है, अक्षरम्लेच्छ। अन्तर में भाव क्या है? किस नय से कथन है? क्या रहस्य है? ऐसा **बुद्ध लखै...** सम्यग्दृष्टि ही वाणी को जान सकते हैं। समझ में आया? श्रीमद् में कहा न? अन्त में कुछ है या नहीं? अनन्त नयात्मक गुण... 'अनन्त नय निक्षेपे व्याख्यानी है...' फिर? सकल... हितकारिणी... है न भाई! देखो न, उसमें है या नहीं? .... वाणी मोक्षमाला में है न अन्तिम? अन्तिम है न? 'अनन्त अनन्त भावभेद से भरेली भली...' १६ वर्ष में कहते हैं। 'अनन्त अनन्त नय निक्षेपे व्याख्यानी है, सकल जगत हितकारिणी हारिणी मोह, तारिणी भवाब्धि मोक्षचारिणी प्रमाणी है।' १६वें वर्ष में। ऐ राजमलजी!

'उपमा आप्यानी जेने तमा राखवी व्यर्थ, आपवाथी निज मति मपाई में मानी है।' वाणी में कहा..? अमाप वस्तु है। अब कौन जाने यह... 'अहो! राजचन्द्र, बाल ख्याल नथी पामता अे, जिनेश्वर तणी वाणी जाणी तेणे जाणी छे।' यह ऊपर वजन आया है। 'जिनेश्वर तणी वाणी जाणी तेणे जाणी छे।' अज्ञानी को पता नहीं कि जिनेश्वर (की वाणी) में क्या कहने में आता है? समझ में आया?

ऐसा एक आया था ९९ के वर्ष में श्वेताम्बर साधु। कहे, समयसार वह वाणी

भगवान की नहीं, वह तो गुरु की वाणी है। अरिहंत की वाणी दूसरी है। कहा, बहुत अच्छा। खबर है ? ९९ में आया था यहाँ। कहा, क्या है तुम्हारा नाम ? दर्शनविजय। अच्छा भैया! भव्य-अभव्य का निर्णय किया है कि तुम भव्य हो या अभव्य ? यह निर्णय नहीं किया। अरे! भव्य-अभव्य का निर्णय नहीं किया (और) तुम जिनवाणी का निर्णय कर सकते हो ? समझ में आया ? जिसको अनन्त संसार करना है... और वाणी में अनन्त संसार का अभाव बताना है... अनन्त संसार का अभाव भगवान ने किया तो वाणी में तो संसार के अभाव की वाणी निकलती है। जिसको अनन्त संसार करना है, वह जिनकी वाणी की परीक्षा कर सके नहीं। तीन काल में हो सके नहीं। समझ में आया ? देखो न कहा न। 'जिनेश्वर तणी वाणी जाणी तेणे भणी छे।' १६ वर्ष में श्रीमद् ने कहा। देवानुप्रिया! राजमलजी! तुम्हारे कितने वर्ष हुए ? सोलह वर्ष की बात है।

यहाँ कहा, **बुद्ध लखै....** वीतराग की वाणी तो ज्ञानी जाने कि क्या उसका निश्चय का रहस्य है। व्यवहार से क्या कहा है ? निश्चय से क्या कहा है ? वह तो बुध लखे। शब्द में ऐसा का ऐसा ये लिखा है, ये लिखा है। सब लिखा है, परन्तु क्या है ? व्यवहारनय के लखाण का फल संसार है, सुन न! समझ में आया ? **बुद्ध लखै न लखै दुरबुद्ध...** ये दुरबुद्ध की व्याख्या की अक्षर म्लेच्छ में। **सदा जगमाँहि जगै जिनवानी।** जिनवाणी जगत में... वह यहाँ कहते हैं, लो। ऐसी वाणी को मेरा नमस्कार।

अब आचार्य स्वयं अपने को गुरु स्थापित कर कहते हैं। 'देव-शास्त्र-गुरु तीन' ऐसे आता है न ? मेरा आत्मा ही मेरा गुरु है, उसकी शुद्धि मुझे टीका करते-करते होगी, वह बात कहते हैं।

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।

यह बहुत सरस अर्थ किया....

मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतैः ॥३॥

आहाहा! **मम परमविशुद्धिः भवतु...** शास्त्रकर्ता अमृतचन्द्राचार्य महाराज,

कुन्दकुन्दाचार्यदेव उनके गणधर समान, जिनकी वाणी में गर्भ—रहस्य क्या था, उसको बोलने की ताकतवाले भगवान अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त मुनि वनवासी वन में रहनेवाले। सन्त तो वन में ही रहते हैं। आत्मा के आनन्द की मस्ती में—अतीन्द्रिय आनन्द की मस्ती में, वन में जैसे बाघ-सिंह रहे, वैसे आत्मा की मस्ती में वन में सन्त रहते हैं। समझ में आया? इस शास्त्र के (कर्ता) अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं। **मुझे शुद्धस्वरूप प्राप्ति... मुझे शुद्धस्वरूप प्राप्ति...** क्या कहते हैं? है? **परम-सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध-निर्मलता...** मेरी निर्मल पर्याय परम विशुद्ध हो, परम निर्मल हो, उत्कृष्ट निर्मल हो, सर्वोच्च दशा हो। यह शास्त्र कहते-कहते मेरी निर्मलस्वरूप दशा हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

देखो! इसमें भी गड़बड़ करते हैं। आयेगा। **निर्मलता होओ। किससे?** देखो! **समयसार** का अर्थ शुद्ध जीव। **शुद्ध जीव, उसके उपदेश से...** शुद्ध जीव का मैं उपदेश करता हूँ अथवा टीका करता हूँ, वह टीका करने से मेरी शुद्धि हो। क्या कहते हैं? उसमें से निकालते हैं कि देखो! टीका करना तो विकल्प है और टीका करते-करते शुद्धि हो, वह तो विकल्प से शुद्धि होती है। ऐ अमरचन्दभाई! अरे भगवान! अर्थ करनेवाले... परन्तु इसलिए तो इसमें कहा है कि दुर्बधि लखे (जाने) नहीं। भाषा ऐसी है देखो! **समयसार व्याख्येव...** इसमें समयसार ऐसा शब्द नहीं? '**एव**' कहाँ गया? इतना ही आया? '**समयसार व्याख्या एव...**' '**एव**' कहाँ गया? '**एव**' रह गया? '**एव**' कहाँ गया? यहाँ तो पहला '**एव**' पर वजन दिया जाता है। नहीं डाला हो शब्द? नहीं कहा? इसके ऊपर तो वजन है, ठीक। '**समयसार व्याख्या एव...**' ऐसा है न पण्डितजी? रह गया लगता है। ठीक। मुझे तो... '**समयसार व्याख्या एव**' इसमें वजन है। वह तो कहते हैं, देखो! समयसार की टीका करते-करते मेरी शुद्धि हो जाओ। उसका अर्थ दूसरा है। धन्नालालजी! बात तो ऐसी है। समयसार... '**एव**' शब्द कहाँ डाला गया देवानुप्रिया?

देखो! **उपदेश से हमको शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होओ। समयसार व्याख्या एव... व्याख्या एव... व्याख्या एव...** व्याख्या के साथ में '**एव**' चाहिए न, भाई? '**व्याख्या एव...**' लो, यह निकाला नया अर्थ का। मूल तो संस्कृत का अर्थ... **व्याख्या एव...** इसमें से लोग निकालते हैं न! भाई! शुद्धात्मा की व्याख्या होगी और टीका होगी—उसके अर्थ में क्या है? उस काल में मेरी धुणी तो शुद्ध ध्रुव पर ही चलती है। उस वक्त में भी मेरे

शुद्धस्वरूप की ओर मेरी दृष्टि है। समझ में आया? उस काल में मेरी शुद्धि हो जाओ। उसका अर्थ—उससे नहीं, परन्तु उस काल में मेरी शुद्धि हो जाओ। ऐसे कहने में आता है। चन्दुभाई!

वह अर्थ ऐसा करे। अरे भगवान! क्या करे? ये टीका शब्दों से बनती है। वह तो पहले कह गये न? भगवान की वाणी भी शब्द से परिणमती है। भगवान की वाणी भगवान से नहीं बनी है। भगवान से, वाणी-दिव्यध्वनि भी भगवान से बनी नहीं। तो अमृतचन्द्राचार्य से श्लोक बने उसकी तो मना करते हैं आगे। यह वाणी से परिणमी है, हमारा कुछ कर्तव्य है नहीं। उसमें भी (लोग) कहते हैं कि वह तो अहंकार छोड़ने को कहते हैं, परन्तु बनायी तो उन्होंने है। भाई! बने किससे? परमाणु की आवाज या शब्द, अन्दर कल्पना उठे कि ये अक्षर ऐसा हो, यह कल्पना भी क्या आत्मा की चीज़ है? (नहीं)। उसके क्या आत्मा की शुद्धि होती है? (नहीं)। समझ में आया?

शुद्धि तो, मेरा चैतन्य भगवान अनाकुल आनन्दस्वरूप उस पर मेरी दृष्टि का जोर है, मैं शुद्धस्वरूप में रमणता करता हूँ, उसमें मेरी तल्लीनता है, तल्लीनता की वृद्धि उस काल में हो जाओ, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? और श्रोता को भी ये कहते हैं, '**वंदितु सव्व सिद्धे।**' भगवान! तुम्हारे हृदय में हम सब सिद्धों को स्थापते हैं। सिद्ध की मण्डली करते हैं। आहाहा! सर्व सिद्धों को तुम्हारी पर्याय में-तुम्हारे आँगन में स्थापते हैं... आँगने में—पर्याय में स्थापते हैं। अब सुनो! हम कहते हैं सुनो। तुम्हें भी... जैसे हमें पूर्ण निर्मल की प्राप्ति होगी, ऐसा लक्ष्य करके समयसार सुनोगे तो तुम्हें भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होगी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बात है यह। वस्तुस्थिति ऐसी है। लोग कल्पना से कहे, ऐसा अर्थ (नहीं)।

भाई! आत्मा तद्दन निर्विकल्प वस्तु, राग बिना की चीज़ आनन्दमूर्ति है, उसको तो रागरहित स्वरूप के साधन से ही निर्मलता होती है। साधन से निर्मलता होती है। साधन नाम की अन्दर शक्ति है और स्वरूपसाधन पर्याय हो, उससे निर्मलता होती है। कोई राग से निर्मलता होती है? टीका करने से—पर ओर के लक्ष्य से निर्मलता होती है? समझ में आया? दृष्टान्त ऐसा दिया है। अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं कि टीका करते मुझे विशुद्धि

होओ। भगवान! वे तो कहते हैं, हमें वर्तमान काल में ऐसा शुद्ध... ऐसा शुद्ध... ऐसा शुद्ध... जो भगवान ने कहा ऐसा हमारी दृष्टि में है, ऐसा कहते समय हमारा शुद्धस्वभाव ऊपर का जो घोलन है, वह घोलन बढ़ जायेगा। समझ में आया? घोलन समझे? अन्तर में लीनता बढ़ जायेगी। बस वह बात कहते हैं। शुभ विकल्प से और पर के लक्ष्य से कभी आत्मा की शुद्धि होती नहीं। समयसार अर्थात् भगवान आत्मा चिदानन्द... आहाहा! जिसकी वार्ता सुनने से मुझे आनन्द आवे, तो उसके अनुभव के आनन्द का क्या कहना? ऐसा कहते हैं। आनन्द... आनन्द... परम विशुद्धि कहते हैं। मन्द (राग) करते, विकल्प करते-करते भी हमारा स्मरण है न कि हम शुद्ध हैं... शुद्ध हैं। शुद्ध का परिणमन चलता है। समझ में आया? ऐसे उपदेश से हमको शुद्ध की प्राप्ति हो।

यह शास्त्र परमार्थरूप है, वैराग्योत्पादक है। वैराग अर्थात् पर से, राग से नास्तिपना करने का यह शास्त्र है। समझ में आया? राग उत्पादक नहीं। जिसमें से राग हो, ऐसा शास्त्र नहीं, वीतराग का शास्त्र है। वैराग्य अर्थात् पुण्य और पाप दोनों से ही हटकर अपने स्वभाव में वैराग्य की प्राप्ति हो, अस्ति की प्राप्ति तो है ही स्वभाव की दृष्टि से, परन्तु पर से, राग से हटकर अपनी वैराग्य की प्राप्ति हो, उसका बतानेवाला शास्त्र है। समझ में आया? यह तो दुनिया को रंजन करना है और बाद में स्वर्ग भी मिलेगा, भोग भी मिलेगा, ऐसा मिलेगा—ऐसी बात करनेवाला शास्त्र नहीं। यह तो वीतरागता बतानेवाला है, अकेली वीतरागता। वैराग्य उत्पाद करनेवाला... सारी दुनिया की उपेक्षा, शुभ विकल्प से लेकर सारी दुनिया की उपेक्षा (और) स्वभाव की अपेक्षा, ऐसा कहनेवाला शास्त्र है। समझ में आया? और इसका नाम ही शास्त्र कहते हैं। कोई भी वीतराग का शास्त्र पर से उपेक्षा करावे और स्व की अपेक्षा करावे, उसका नाम वीतरागी शास्त्र कहने में आता है।

यह शास्त्र परमार्थरूप है, वैराग्योत्पादक है। भारत-रामायण के समान रागवर्धक नहीं है। ऐई! जिसमें राग बढ़े, लड़ाई, ऐसा है और कैसा है—ऐसा नहीं। यहाँ तो राग का नाश करके भगवान आत्मा वीतरागीबिम्बपने प्रगट हो, वीतरागीस्वरूप जिसका है, वह वीतरागी पर्यायपने प्रगट हो, ये शास्त्र में कहने में आता है। तो ये शास्त्र वैराग्य कहनेवाला है। देखो! ऐसे कहते हैं कि राग करना, राग से लाभ होगा, ऐसा शास्त्र में नहीं आयेगा। समझ में आया? भाई! व्यवहार, राग उससे लाभ होगा, ऐसा शास्त्र में नहीं आयेगा। यहाँ

तो राग का अभाव करने का वैराग्य शास्त्र है। उदास... उदास... सारी दुनिया से उदास। पुण्य का विकल्प शुभभाव, (उससे) उदास। छोड़, उपेक्षा कर। भगवान चिदानन्द परमात्मा पूर्ण शुद्ध प्रभु उस पर लक्ष्य कर, ध्येय कर, लगनी कर, आश्रय कर।—ऐसा बतानेवाला यह समयसार शास्त्र है।

कैसा हूँ मैं? 'अनुभूतेः' अनुभूति-अतीन्द्रिय सुख, वही है स्वरूप जिसका ऐसा हूँ। लो। मैं तो अतीन्द्रिय सुखमय हूँ। समझ में आया? मैं आत्मा अतीन्द्रिय सुखरूप ही हूँ। द्रव्यरूप से अनादि सुखरूप हूँ, थोड़ा सुख प्रगटा है और थोड़ा मैल है, वह पीछे घट जायेगा। समझ में आया? द्रव्यार्थिकनय से मैं शुद्ध आनन्दस्वरूप ही हूँ। उसका ये अर्थ हुआ... भाई! क्या कहना है? ऐई! द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध हूँ, उसका अर्थ यह कि द्रव्यार्थिकनय का भान हुआ तो सारा आनन्द है, ऐसा कहने में आता है और भान हुआ तो आनन्द भी पर्याय में आया है। पर्याय में जरा मलिनता साथ में है, वह बात भी कहेंगे। समझ में आया? मैं आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु हूँ। मेरे में आनन्द है, मेरा आनन्द परिपूर्ण है। ऐसी दृष्टि हुई तो मेरी पर्याय में भी आनन्द आया है। आनन्द द्वारा, आत्मा अतीन्द्रिय पूर्ण है, ऐसा हमने द्रव्यार्थिकनय से निश्चय किया है। परिणमन है अन्दर। परिणमन... यह डालेंगे, वह अशुद्ध का परिणमन डालेंगे। द्रव्य से ऐसा हूँ, परन्तु मेरी परिणति में ऐसी कचास है, वह सिद्ध करेंगे। समझ में आया?

मैं द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध हूँ, परन्तु द्रव्य शुद्ध हूँ कब? समझ में आया? ये शुद्ध है... भगवान आनन्द है... यह आनन्द है, यह शुद्ध है, ऐसा अन्तर में पर से हटकर आनन्द के सिवा—आनन्द में लीन हुए बिना 'यह आनन्द है' ऐसा निर्णय नहीं आता। समझ में आया? उसका नमूना लक्ष्य में आये बिना 'यह आनन्द है', शुद्ध की आनन्द पर्याय अनुभव में आये बिना 'यह शुद्ध है'—ऐसा प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया?

मैं तो मेरी **अनुभूति-अतीन्द्रिय सुख, वही है स्वरूप जिसका...** देखो! भाषा अनुभूति ली, लेंगे त्रिकाली पाठ में। **और कैसा हूँ? 'शुद्धचिन्मात्रमूर्तेः'** अनुभूति—मेरी परिणति में आनन्द है और मेरा सारा स्वरूप ही आनन्द(मय) है। समझ में आया? देखो! साधक जीव की व्याख्या। **'शुद्ध चिन्मात्रमूर्तेः' रागादि-उपाधिरहित चेतनामात्र**

स्वभाव है जिसका। समझ में आया? अतीन्द्रिय सुख है, वस्तु त्रिकाली चिन्मूर्ति है, परन्तु पर्याय में जरा कलुषितता है, वह प्रसिद्ध करने को यह बात कहते हैं। क्या कहते हैं, समझ में आया?

चेतनामात्रमूर्त... मूर्त स्वभाव है। **भावार्थ इस प्रकार है—द्रव्यार्थिकनय से द्रव्यस्वरूप ऐसा ही है।** लो, द्रव्यस्वरूप ऐसा ही है। अनुभूति डाल दी उसमें—द्रव्यस्वरूप में। समझ में आया? क्या कहा? द्रव्यार्थिकनय से ऐसा हूँ, उसमें अनुभूति भी डाल दी साथ में। भाई! यह क्या अनुभूति? अनुभूति निर्मल हों। शुद्ध द्रव्य हूँ... शुद्ध द्रव्य हूँ, मेरी अनुभूति अतीन्द्रिय सुखरूप है। मेरी अनुभूति तो, मैं जैसा हूँ, ऐसी मेरी अनुभूति आनन्द(रूप) है। समझ में आया? द्रव्यस्वरूप हूँ... ऐसा द्रव्यस्वरूप हूँ... भगवान आत्मा... अपना स्वरूप ऐसा है और अनुभूति आनन्द(रूप) है, ऐसा मेरा द्रव्यस्वरूप है।

'**अविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः**' देखो! अर्थ करेंगे। कर्म को पहले नहीं याद करेंगे। कर्म को पहले नहीं याद करेंगे। पहले तो सीधा... अर्थ करना हों। विशेष कितना कहते हैं देखो! **निरन्तरपने अनादि सन्तानरूप विषय-कषायादिरूप अशुद्ध चेतना...** मेरी पर्याय में जरा मलिनता है। देखो! मेरी पर्याय में थोड़ी मलिनता अनादि की है। अनादि का अर्थ? मलिनता कभी नाश हुई थी और प्रगटी, ऐसा नहीं। क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वरूप आनन्दमूर्ति, अनुभूति में आनन्द... वस्तु शाश्वत् आनन्द और अनुभूति आनन्द(रूप)। ऐसे होते हुए भी मेरी पर्याय में अनादि काल से विषय-कषाय की परिणति है। अशुद्ध की परिणति है, पर का लक्ष्य करके थोड़े कषायरूप परिणति है। समझ में आया?

कहो, ये मुनि कहते हैं छठवें गुणस्थान में। अनुभाव्य है न? अनुभाव्य का अर्थ, **विषय-कषायादिरूप अशुद्ध चेतना...** ऐसा लेना। उसके साथ है। वह (कर्म) अनुभाव और (अशुद्धता) अनुभव्य, ऐसे न लिया। समझे? अनुभाव और अनुभाव्य उसमें सन्धि नहीं ली। मेरी अपनी पर्याय ऐसी है ऐसे लिया। मैं ऐसा (अशुद्ध)स्वरूप हुआ हूँ, मेरी पर्याय में कलुषितता अनादि की है। समझ में आया? मुनि हैं तो भी कहते हैं कि यह राग पहले सर्वथा छूट गया था और नया आया है, ऐसा है नहीं। अनादि रागवासित बुद्धि, भाई!

वह पंचास्तिकाय में (आता है)। यही यहाँ भी कहते हैं। अनादि से पहले व्यवहार आया—ऐसा है ? निश्चय का भान है, निश्चय का तो अनुभव है और पूर्व का अनादिवासित राग शेष रह गया है। समझ में आया ?

पंचास्तिकाय। वह भी अमृतचन्द्राचार्य की बात है, यह भी अमृतचन्द्र की बात है। ओहोहो ! अर्थ करने में कितनी गड़बड़ करे, पूरे जैनशासन को मसल डालते हैं। वीतरागस्वरूप है, भाई ! स्वाश्रय से लाभ है, पराश्रय से लाभ है नहीं। तीन काल, तीन लोक में पराश्रय से (लाभ नहीं)। त्रिलोकनाथ परमात्मा भी हो तो उसके आश्रय से आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? यह कहते हैं कि देखो ! शास्त्र में ऐसा आता है। जिनेश्वर के जिनबिम्ब को देखने से मिथ्यात्व का टुकड़ा हो जाता है। क्या ऐसे देखते हैं तो होता है ? करण मानना कहाँ से ? अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण किये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। ... भगवान की ओर देखने से करण होता है ? यह लिखा है न ?

बात पहली ये चली थी। पहली बात चली थी। जब फूलचन्दजी के साथ पहली बात चली, तब उन्होंने कहा। अेला ! परन्तु यह कहते हैं कि अन्दर करण में है तो... समझ में आया ? नहीं तो सिद्धान्त तो है या नहीं ? अन्तर्मुख परिणाम जब अधःकरण, अपूर्वकरण का चलता है, उसका तो पर ऊपर लक्ष्य है ही नहीं और उसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। क्या पर के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है ? अमरचन्दभाई ! अरे ! शास्त्र के अर्थ इतने करे, अर्थ के अनर्थ करे और माने कि इसमें बराबर शास्त्र की श्रद्धावाले है। क्योंकि व्यवहारनय से... तुम तो व्यवहारनय को उड़ा देते हो। तुमको शास्त्र की श्रद्धा है नहीं। ऐई धन्नालालजी !

व्यवहारनय से कहा है... व्यवहारनय से कहा है, ऐसा कहकर उड़ा देते हो। अरे भगवान ! बापू ! व्यवहारनय से कहा है, वह जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। आदरनेयोग्य भगवान आत्मा चैतन्य प्रभु है। (उसका) तुझे माहात्म्य न आवे और पर का माहात्मय रहे, तब तक अन्तर के माहात्म्य में जाये—यह हो सके नहीं। कहते हैं, हमारा कलुषितभाव **अशुद्ध चेतना उसके साथ है व्याप्ति अर्थात् उसरूप है।** ऐई ! उसके साथ में व्याप्ति ली, भाई ! वह निमित्त के साथ नहीं। देखो ! कैसा अर्थ किया है ! यह बाद में लेंगे। बाद में लेंगे।

निमित्त कौन है, यह पाठ फिर लेंगे। परन्तु पहले यह उपादान सिद्ध करना, ऐसा। समझ में आया?

मैं भगवान आत्मा मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द(मय) हूँ और मेरी पर्याय भी आनन्दरूप हुई है, फिर भी पर्याय में अनादि वासना(रूप) थोड़ा रागादि का विषय-कषाय है। उस कारण से... देखो! सम्यग्दृष्टि और साधक का विवेक! जितनी निर्मलता हुई है, उतनी निर्मलता को निर्मलता जानते हैं, साथ में जितनी मलिनता है, उसको मलिनता जानते हैं। साधक है या नहीं? **विषय-कषायादिरूप अशुद्ध चेतना, उसके साथ है...** क्या उसके साथ है? **निरन्तरपने अनादि सन्तानरूप विषय-कषायादिरूप अशुद्ध चेतना, उसके साथ है व्याप्ति अर्थात् उसरूप है विभावपरिणमन, ऐसा है...** देखो! मेरा विभाव परिणमन मेरे से है। उपादान से पहले सिद्ध करते हैं। समझ में आया? चैतन्य प्रभु शुद्ध द्रव्य आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द(मय) है, उसका बोध होकर अतीन्द्रिय आनन्द की दशा पर्याय में धर्मी को होती है। मुनि होते हुए भी साथ में अनादि की वासना का अंश भी पर्याय में व्याप्त है। उसकी साथ में व्याप्ति है, पर के साथ हमारी व्याप्ति नहीं। समझ में आया?

कितना अर्थ एक श्लोक में डालते हैं, देखो! **विभावपरिणमन, ऐसा है कलंकपना जिसका...** देखो! मेरे परिणमन में विभाव कलंक है। आहाहा! मुनि तो देखो! जिसे अल्प-एकाध भव में मुक्ति है, हों! ऐसे अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य। एक भव देव का हो। ऐसी जिसकी ताकत... ऐसी ताकत कि पंचम काल में ऐसा काम किया। समझ में आया? एकाध भव करके मोक्ष चले जायेंगे। मोक्ष चले जायेंगे। कहाँ जाना है? अपनी शुद्ध पूर्ण पर्याय प्राप्त करेंगे। वे कहते हैं, अरे भगवान! अनादि से मेरी पर्याय में थोड़ा राग है, हों! इस राग की टीका करते-करते नाश हो जाओ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मेरी लगनी तो भगवान शुद्ध में लगी है। समझ में आया? आहाहा!

परन्तु पर्याय में विषय-कषायदिरूप... विषय शब्द से भोगादि नहीं हों, परन्तु पर के ऊपर लक्ष्य है। समझ में आया? उसका नाम विषय। स्वविषय पूर्ण हुआ नहीं, स्व-आश्रय पूर्ण हुआ नहीं तो अभी पर ऊपर मेरा लक्ष्य रहता है, तो पर के लक्ष्य से तो कषाय उत्पन्न होती है। ऐ वजुभाई! देखो, यह टीका! **है कलंकपना जिसका...** आहाहा! क्या

कहते हैं ? मैं वस्तु तो शुद्ध हूँ भगवान ! ऐसी निर्मल पर्याय भी प्रगट हुई है, परन्तु इतनी मलिनता है अभी राग की। पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, कहने का विकल्प उठता है, सुनने का विकल्प उठता है, वह कलंक-मैल है। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

एक ओर कहे, मुनि को अशुभभाव की तो गन्ध भी नहीं, भाई ! सुनो ! ... कहते हैं। समझ में आया ? यह बात यहाँ आयी न ? मुनि को तो अशुभभाव की गन्ध नहीं। आता है न, मोक्षमार्गप्रकाशक में ? शुभकषाय का उदय जरा आता है शुभभाव, कहते हैं कि मुझे कलंक है। आहाहा ! अरे ! मैं आनन्दमूर्ति हूँ न प्रभु ! मेरी परिणति शुद्ध थोड़ी तो है, परन्तु ये थोड़ा (अशुद्ध) भाव रह गया है न, वह कलंक है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : अज्ञानी जिसको कथंचित् अच्छा माने, उसे वे (ज्ञानी) कलंक माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको लाभदायक माने, शुभभाव से लाभ होता है, ऐसा माने। न्याय तो मिलाना पड़ेगा या नहीं ? एक तो मुनि स्वयं हैं और कहते हैं कि मुझे थोड़ा कलंक है। मुनि को अशुभभाव तो होता नहीं। यह बात करते हैं, टीका करने के काल में बात करते हैं। भाई ! आहाहा ! विवेक का तो सागर है न !

भगवान आत्मा... मैं तो आनन्द हूँ, अमृतस्वरूप हूँ। मेरी पर्याय में भी आनन्द तो आया है, परन्तु अनादि की वासना अभी थोड़ी है। अशुभ नहीं है, परन्तु शुभराग भी मुझे कलंक है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो हमारी शोभा है, (अज्ञानी) कहते हैं, शुभभाव तो हमारी शोभा है। यह तो कहते हैं कि प्रभु ! हमें विकल्प-कलंक उठते हैं न... विकल्प उठते हैं न। हमारा निष्कलंक स्वभाव... निष्कलंक स्वभाव... इतना-इतना कलंक है, हों नाथ ! आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी श्रद्धा कैसी करना ? ज्ञान कैसा करना ? कैसे राग को अपने में मलिनता जानना—सब उसमें विवेक आता है। आहाहा ! इतनी ताकत ! जिसने कुन्दकुन्दाचार्य के हृदय खोलकर टीका की। पंचम काल में कुन्दकुन्दाचार्य ने तीर्थंकर जैसा काम किया, अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा (काम किया).... मुझे कलंक है... आहाहा !

मुमुक्षु : देशना करने का विकल्प भी कलंक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलंक है। बात तो यह, ध्वनि तो यह है, भाई ! आहाहा ! और

जिस भाव से जन्म धारण होगा, वह कलंक है। शर्मजनक कलंक। योगसार में कहते हैं न? अरे! हम पंचम काल के मुनि हैं तो भव तो आयेगा। हमको केवलज्ञान तो हो नहीं (सकता), पुरुषार्थ इतना है नहीं। यह राग कलंक है और भव भी कलंक है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा के शुद्ध आनन्दस्वरूप पर सम्यग्दृष्टि साधक की दृष्टि पड़ी है। समझ में आया? यहाँ थोड़ा राग आया तो वे कहे, मुझे कलंक है। यह अनादि का कलंक है... अनादि का कलंक है। कभी कलंक छूट गया था और नया हुआ है, ऐसा नहीं है। अनादि का अर्थ, मैं मिथ्यादृष्टि हूँ अनादि से, ऐसा नहीं। वह कलंक का भाव... मैं परमानन्द की मूर्ति शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा उसमें—पर्याय में इतना शुभराग का कलंक है, भगवान! टीका करते... करते यह मेरा कलंक नाश होकर निर्मलता हो जाओ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मेरा लक्ष्य, जोर चैतन्य पर है। चाहे जो मैं विकल्प में आऊँ, लिखने में लक्ष्य हो, मेरा लक्ष्य अन्तर से चूकता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि का मुख्य लक्ष्य ध्रुव पर है। पर्याय और व्यवहार का मुख्यपना सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। वह बात सिद्ध करते हैं। ओहोहो! दिगम्बर सन्तों ने धर्म को रखा है, प्रसिद्ध किया है या नहीं? ऐसी वाणी। न्याय में देखो तो अकेला सत्य जड़ते हैं। कलंक... महाराज! प्रभु! मुझे कलंक है इतना। आहाहा! ऐ पोपटभाई!

मिथ्यात्व है नहीं, अशुभभाव है नहीं। मुनि हैं न? शुभभाव है, (वह) कलंक है। समझ में आया? **कलंकपना जिसका ऐसा हूँ।** ऐसा हूँ, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर्याय में ऐसा हूँ, ऐसा मेरा ज्ञान जानता है। पर्याय में मुझे राग है, (वह) मैं जानता हूँ। मुझे ख्याल में है। मैं मुनि हुआ, सम्यग्दृष्टि हुआ, तो मलिनता बिल्कुल चली गयी है, ऐसा नहीं। न हो तो सर्वज्ञ हो जाये। सर्वज्ञ नहीं, तो मेरी अवस्था में राग... राग... पर्यायदृष्टि—अवस्थादृष्टि में राग दिखता है। **पर्यायार्थिकनय से जीववस्तु अशुद्धरूप से अनादि की परिणमी है।** मलिनता अनादि की है। वस्तु तो अनादि की शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसा भान हुआ तो भी मलिनता अनादि की रही है। समझ में आया? अनादि की हुई तो सम्यग्दर्शन क्या हुआ उसमें? ऐई! अनादि की रही तो सम्यग्दर्शन कहाँ आया? सोगनचन्दजी! राग

की पर्याय रही है। वह जितनी रही, वह अनादि की है। जो थोड़ी रही है, परन्तु ये अनादि की है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उस अशुद्धता के विनाश होने पर जीववस्तु ज्ञानस्वरूप सुखस्वरूप है। मेरे अन्तर लक्ष्य में भगवान आत्मा का घोलन होता है, उससे अशुद्धता का नाश होकर, मैं जीववस्तु ज्ञानस्वरूप सुखरूप हूँ। ज्ञानस्वरूप... अकेला ज्ञान हो जायेगा, अकेला आनन्दरूप हो जायेगा, उसका नाम मुक्ति और मोक्ष कहने में आता है।

आगे कोई प्रश्न करता है कि जीववस्तु अनादि से अशुद्धरूप परिणमी है... अब भाई! लिया। अब बात। उपादान में अशुद्धता पर्याय से सिद्ध करके, फिर दोष में (निमित्त लिया)। अपनी पर्याय में दोष है, कलंक है, मेरे से है, मैं ऐसा हूँ। द्रव्य से शुद्ध हूँ, पर्याय में इतनी शुद्धता-अशुद्धता है। आहाहा! समझ में आया? देखो तो सही! निश्चय का भान और व्यवहार का ज्ञान। निश्चय का भान और व्यवहार का ज्ञान। निश्चय का भान अर्थात् आदर से, ऐसा। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि की यह चीज़ और साधकपना ऐसा होता है। वह भी अपना दृष्टान्त देकर सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

अब कहते हैं... इतना सिद्ध करके... मैं वस्तु भगवान... पहले तो **समयसार व्याख्या एव...** समयसार की टीका करते मेरी मलिनता का नाश हो जाओ अथवा तो मैं शुद्ध हो जाऊँ, ऐसे कहते हैं। मलिनता नहीं, मैं शुद्ध हो जाऊँ। भाई! ऐसा कहा न पहले। मेरी शुद्धि हो जाओ। मलिनता का नाश, ऐसा नहीं कहा। ये टीका करते मुझे परम विशुद्धि हो, इतना कहा। बस वहाँ पहले अस्ति से लिया। टीका करते (समय) मेरा ध्यान स्वभावसन्मुख है, मेरी शुद्धि हो जाओ। अब कहते हैं, पर्यायदृष्टि में मेरी कलंकदशा है, ये मेरे ख्याल में है। वह मेरे से है, अभी मेरे ख्याल में है। समझ में आया?

४७ नयी आते हैं न ४७ नय? श्रुतज्ञानी गणधर भी, अपनी परिणति में राग की परिणति है, वह अपने से है, ऐसा जानते हैं। ऐई! गजब भाई! एक ओर कहे कि राग पर का है, विभाव पर का है। अरे! सुन तो सही। समझ में आया? चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना जिनको अन्तर्मुहूर्त में होती है, ऐसे छद्मस्थ गणधर, परन्तु अपनी पर्याय में राग (है और) राग का कर्तृत्व परिणमन है, मेरे में परिणमन है—ऐसा (उनका) ज्ञान जानता है। समझ में आया? वह परिणमन कोई कर्म के कारण से है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

ईश्वरनय आया न ईश्वरनय ? मैं ही निमित्त आधीन होकर विकाररूप परिणमन स्वतन्त्रपने करता हूँ, ऐसा मैं परतन्त्र हूँ। समझ में आया ? मैं ही निमित्त आधीन होकर राग करता हूँ, ऐसा मैं स्वतन्त्र होकर करता हूँ। ऐसा मैं मेरे से परतन्त्र हूँ। इस रीति से मैं परतन्त्र हूँ। समझ में आया ? कहते हैं, ऐसी अशुद्धता में निमित्त कौन है ? निमित्त कोई चीज़ है या नहीं ? **वहाँ निमित्तमात्र कुछ है या नहीं है ? उत्तर इस प्रकार—निमित्तमात्र भी है।** निमित्तमात्र भी है। भाषा देखो ! निमित्त भी दूसरी चीज़ है। भगवान आत्मा अशुद्धपने जितना परिणमता है, उसमें दूसरी चीज़ निमित्तमात्र... निमित्तमात्र का वजन (न) करते... एक निमित्तमात्र है। वह कुछ कराती नहीं। समझ में आया ? विकार को वह चीज़ कराती नहीं।

कितना स्पष्टीकरण करते हैं ! उपादान-निमित्त आदि सबका स्पष्टीकरण आ जाता है, लो। निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त और क्रमबद्ध—पाँचों का उसमें स्पष्टीकरण है। सर्वज्ञता आयी न पहली ? सर्वज्ञ पहले सिद्ध किये न ? सर्वज्ञ भगवान... उसमें ऐसा लिया है टीका में। .... माप होता है न। .... ये उसमें लिया है..... अध्यात्म तरंगिणी। कितना ? कि इतना ..... धारा आती है न ! अनन्त का माप यह सब प्रगट किया है केवली। पूर्ण प्रगट किया है। इनकी संख्या है। गोम्मटसार में आया है। केवलज्ञानी की कितनी पर्याय। तो कितने कहते हैं न ? कि इतना प्रगट हो, परन्तु सर्व अपेक्षित धर्म उसके ज्ञान में नहीं आते। ऐसी बात है (नहीं)।

भगवान के ज्ञान में सब तीन काल, तीन लोक अपेक्षित-निरपेक्ष सब धर्म आ जाते हैं। अपनी पर्याय अपने से निरपेक्षपने से निरपेक्ष परिणमती है। ऐसा भगवान का निर्णय करे तो क्रमबद्ध का निर्णय आ जाता है। क्रमबद्ध का निर्णय करे तो भगवान का निर्णय आ जाता है। क्रमबद्ध का निर्णय द्रव्य के निर्णय में आ जाता है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय, द्रव्य के लक्ष्य बिना क्रमबद्धपर्याय का (निर्णय) होता नहीं। सर्वज्ञ का निर्णय, द्रव्य के स्वभाव बिना सर्वज्ञ का निर्णय होता नहीं। सम्यग्दर्शन, भूतार्थ के आश्रय बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं।—सबकी एक ही बात है। नवरंगभाई ! इसके साथ में कहते हैं, हमें मलिन परिणाम थोड़ा है, वह कलंक है। उसमें निमित्त कोई है। वह कौन है, यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण कृष्ण २, मंगलवार, दिनांक २२-८-१९६७
कलश - ३-४, प्रवचन नं. ६

समयसार (कलश), जीव अधिकार का तीसरा कलश चलता है। आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त-मुनि हैं, उन्होंने यह कलशटीका बनायी है। कहते हैं, हमारा आत्मा वस्तुदृष्टि से तो अनन्त आनन्दस्वरूप और शुद्ध त्रिकाल चिन्मूर्ति है और (हमारे) आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, (उससे) हमें हमारी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो। समझ में आया? व्याख्या करने का हेतु मेरा यह है। लोग समझे... दुनिया समझे, न समझे उसका प्रश्न यहाँ नहीं लिया। यह व्याख्या-टीका... यह रागवर्धक शास्त्र नहीं है। वैराग्य-वीतरागवर्धक शास्त्र है। वीतरागवर्धक शास्त्र कहने में—उपदेश के काल में—मैं टीका करूँगा, उस काल में—मेरी अनुभूति आनन्दरूप हो, अतीन्द्रिय सुखरूप हो, ऐसी पहली प्रार्थना की है। समझ में आया?

सुननेवाले को भी ऐसे कहते हैं कि तुझे आत्मा परमानन्दरूपी अनुभव हो, ऐसी तेरी प्रार्थना होनी चाहिए। समझ में आया? तो कहते हैं, हम टीका करते हैं... देखो! यह (टीका) भारत रामायण के समान रागवर्धक नहीं; वैराग्यवर्धक है। और मेरी पर्याय में जरा शुभभाव होता है, अनुभूति में पूर्ण आनन्द नहीं है तो वह मेरी पर्याय में कलंक है। समझ में आाय? यह चिल्लाहट करते हैं न कि शुभभाव से धर्म होता है। यहाँ तो कहते हैं, अरे! मेरी पर्याय में जरा शुभभाव आया है, वह मुझे कलंक है। आहाहा! आचार्य जैसे मुनि... समझ में आया? जिनको तीन कषाय का अभाव है, वीतरागता प्रगट बहुत हुई है और पर्याय में थोड़ा... अशुभभाव तो है ही नहीं, थोड़ा शुभभाव है तो इतनी झंखना—अन्तर की भावना है कि मैं तो शुद्ध आनन्दमूर्ति हूँ, ऐसी ही मेरी परिणति—पर्याय पूर्ण आनन्दरूप हो जाओ। यह जो कलंक लगा है उसका नाश हो। यह व्याख्या करते-करते मेरी लक्ष्य और मेरी दृष्टि तो शुद्ध चैतन्य ऊपर ही रहेगी। आहाहा! समझ में आया? उस कारण से कलंक मुझे है, वह नाश हो।

कैसा है कलंक? अशुद्धपना अनादि से है। मेरी पर्याय में अशुद्धपना जो थोड़ा भी रहा ये अनादि से है। समझ में आया? कभी अशुद्धता छूटी है और फिर अशुद्धता हुई है,

ऐसा है नहीं। कहते हैं कि कलंक का निमित्त कौन है ? समझ में आया ? निमित्तमात्र कुछ है या नहीं ? पहले तो सिद्ध किया कि अपनी परिणति अपने से कलुषितता से परिणम रही है। शुभरागरूपी मलिनता, मेरे पुरुषार्थ के अपराध से मैं कलुषितपने परिणम रहा हूँ, ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया ? मेरी वस्तु शुद्ध चैतन्यमूर्ति, मुझे अनुभूति वर्तमान में है, परन्तु परम विशुद्धि हो, परम आनन्दरूप हो, ऐसी मेरी भावना है। और मेरी पर्याय में वर्तमान में मैं राग आदि से हुआ हूँ—परिणमा हूँ। '**कल्माषितायाः**' आहाहा! समझ में आया ?

भगवान अतीन्द्रियस्वरूप प्रभु ऐसे अनुभव में यह थोड़ा शुभभाव का कलंक कैसे रहा ? देखो! दुनिया तो शुभभाव में धर्म मानती है। यहाँ कहते हैं कि मुझे कलंक है। सोमचन्दभाई! ऐसा कहते हैं। कलंक है, कहते हैं। टीका करने का शुभ विकल्प उठे, वह कलंक है, ऐसा कहते हैं, लो। मैं आत्मा रागरहित... मेरी चीज़ रागरहित है और मेरी परिणति भी रागरहित पूर्ण होनी चाहिए। इस समय में मुझे पूर्ण शुद्धि है नहीं। आचार्य कहते हैं, जरा कलंक है। कलंकपना परिणमा है मेरे कारण से। कोई कहे कि शुभभाव राग कोई कर्म के कारण से हुआ है, ऐसा नहीं है। कितना सिद्धान्त सिद्ध करते हैं! मलिनता का अंश भी अपने पुरुषार्थ की कमी से हुआ है। कोई कर्म के कारण से मेरे में मलिनता का अंश है—ऐसा नहीं है, यह तो पहले सिद्ध किया। अब निमित्त कौन है, इतना सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? विकार है मेरे में—पर्याय में, तो निमित्त कौन है, बस इतनी बात करते हैं।

वह कौन, वही कहते हैं—'मोहनामनोडनुभावात्' है ? **पुद्गलपिण्डरूप आठ कर्मों में मोह एक कर्मजाति है....** ध्यान रखना! कैसी टीका करते हैं! आठ कर्म है न, उसमें मोहकर्म की एक जाति कर्म की है। समझ में आया ? वह मोहकर्म का मुझे निमित्त है। इस कलुषित परिणाम में मोहकर्म (निमित्त है)। मोहकर्म कैसा ? यह मोहकर्म कैसा ? उसकी व्याख्या भिन्न रीति से करेंगे। क्या कहते हैं ? उसमें भी ऐसा लिया कि मेरी परिणति में मोहकर्म निमित्त है। मेरी परिणति... यहाँ तो कहते हैं कि मोहकर्म कैसा ? क्या मेरी परिणति में निमित्त है ? समझ में आया ? यहाँ वर्तमान विकार है तो पूर्व का मोहकर्म निमित्त है, इतना न कहकर, कौन सा मोहकर्म मेरी परिणति में निमित्त है ? समझ में आया ? देखो!

उसका उदय अर्थात् विपाक... कर्म जो मोहकर्म है, उसका पाक आया। **भावार्थ इस प्रकार है—रागादि-अशुद्धपरिणामरूप जीवद्रव्य व्याप्य-व्यापकरूप परिणमा है।** फिर सिद्ध तो वह करते हैं। मेरा आत्मा... देखो! दूसरे को समझते हैं इस रीति से कि तुम्हारा आत्मा आनन्दरूप है, ऐसी दृष्टि करो और तुम्हारी पर्याय में जरा कलुषितता है, वह अपने से व्याप्य-व्यापकरूप परिणम रही है। मलिन परिणाम व्याप्य है और आत्मा ही व्यापक है। कर्म उसमें व्याप्य और कर्म विकार कराता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? राजमलजी कितनी स्पष्ट टीका करते हैं, लो! यह कितने पण्डित लोग चिल्लाहट करते हैं। कितने ही हों। विकार कर्म से होता है... विकार कर्म से होता है... अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं कि विकार मेरे से होता है, तब कर्म निमित्त कहने में आता है।

कहते हैं, मेरा आत्मा... **रागादि-अशुद्धपरिणामरूप जीवद्रव्य व्याप्य-व्यापकरूप परिणमा है।** भाषा देखो! आत्मा वस्तु आनन्दरूप होने पर भी, पर्याय में थोड़ी शुद्धता प्रगट है (और) फिर भी जो थोड़ी अशुद्धता रही है, वह मेरा आत्मा ही मलिनतारूप परिणमा है। आचार्य जैसे महामुनि सन्त 'णमो लोए आइरियाणं।' 'णमो लोए सव्व आइरियाणं', ऐसा। समझ में आया? 'णमो लोए सव्व साहूणं' है न? यह 'सव्व' पाँचों में लागू पड़ता है। 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आइरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।' ये पाँचों में (ऐसा) पद है, हों! अकेला अन्त में तो अन्तदीपक कहा है। समझ में आया? सोमचन्दभाई!

धवल में ऐसा लिया है। शास्त्र में लिया है कि णमो लोए सव्व साहूणं... (सव्व) जो अन्तिम (पद) में कहा है, यह अन्तदीपक है, परन्तु पाँचों में लागू पड़ता है। मणीभाई! समझ में आया? 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं' ऐसा शब्द है मूल तो। 'लोए सव्व साहूणं' अन्त में कहा, परन्तु सबको लागू पड़ता है, ऐसा धवल में पाठ है। वीरसेन स्वामी दिगम्बर महामुनि थे। 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं' (अर्थात्) जहाँ-जहाँ अरिहन्त विराजमान हैं लोक में—सब (जगह) में (उन्हें मेरा नमस्कार)। 'णमो लोए सव्व सिद्धाणं'। सर्व सिद्ध क्यों कहा? कोई यहाँ से सिद्ध होते हैं, कोई रास्ते में हो... समझ में आया? और वहाँ (सिद्धशिला पर) हो, सर्व लोक में विराजमान सिद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ। 'णमो लोए सव्व सिद्धाणं।' अपने तो यहाँ लेना है 'णमो लोए सव्व आइरियाणं'। यह आचार्य हैं। णमो

लोए सव्व आइरियाणं में (आ गये) हैं। आचार्यपद है... गणधर भी स्मरण करते हैं तो कहते हैं, 'णमो लोए सव्व आइरियाणं।' मैं उनको नमस्कार करता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

वे आचार्य कहते हैं, मेरी परिणति में... गणधर जिनको नमस्कार करे... बारह अंग की रचना करे न? बारह अंग की रचना में णमो अरिहंताणं... ऐसा पहले आता है। बारह अंग चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करनेवाले गणधर 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं' (कहते हैं), पीछे शास्त्र की रचना करते हैं। उसमें आया, 'णमो लोए सव्व आइरियाणं।' ये आचार्य कहते हैं, जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँचे, ऐसे आचार्य कहते हैं कि मेरे में राग की मलिनता है यह मेरा व्याप्य-व्यापक है। राग का कर्ता मैं हूँ व्यापक और पर्याय मेरा व्याप्य—कर्म मेरे से हुआ है। व्याप्य-व्यापक शब्द डाला है न? (उसका अर्थ) कर्ता-कर्म रखा। आहाहा! एक ओर कहे कि विकार करता नहीं। सुन तो सही! समझ में आया? अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : जड़कर्म के साथ व्याप्य-व्यापक....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके साथ नहीं। मेरा विकारभाव(रूप) जो अंश है, वह व्याप्य है और मैं व्यापक हुआ है। कर्म व्यापक है और मेरी अवस्था व्याप्य है, ऐसा है नहीं। कितना स्पष्ट कर दिया है! धन्नालालजी! वस्तु ऐसी है। भाई! दूसरी चीज तो निमित्त है। निमित्त में भी कैसा स्पष्टीकरण करेंगे, दूसरी रीति से स्पष्टीकरण करेंगे। जो मुझे निमित्त होगा, जिस कर्म को पूर्व में मेरी अशुद्ध परिणति निमित्त हुई थी, वह मुझे निमित्त होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मेरी वर्तमान मलिनता का अंश है, उसमें कर्म निमित्त है इतना न कहकर... समझ में आया? मेरी अशुद्धता—मलिनता—राग है... मैं शुद्ध द्रव्य हूँ, गुण हूँ, पर्याय भी मेरी शुद्ध है। क्योंकि शुद्ध(रूप) हुआ तो पर्याय में शुद्धता आयी है, अनुभूति में आनन्द तो हुआ है। परन्तु पूर्ण आनन्द नहीं है। मेरे में जितना राग है, वह कलंक है मेरे में, परन्तु रागरूप मैं ही परिणमा हूँ, राग ही मेरी कार्यदशा है और मैं ही उसका व्यापक हूँ—करनेवाला हूँ, राग मेरा व्याप्य है... आहाहा! समझ में आया? यह तो नाख कर्मने माथे दोष निकाला। कर्म से

विकार होता है, क्या करे ? कर्म है नहीं ऐसा (ऐसे) भगवान मना करते हैं। शोभालाल सेठ ! कर्म ऐसा नहीं है। मना करते हैं। क्या करे ? हमारे कर्म में ऐसा नहीं है। 'कर्म बेचारे कौन...' वह तो पर जड़ है। (यथार्थ) पुरुषार्थ नहीं करते, उल्टा पुरुषार्थ करते हैं और उल्टा पुरुषार्थ डाले (कर्म पर)। क्या करे ? भाई ! कर्म में पढ़ा(-लिखा) नहीं है। तेरी पहिचान ही सच्ची नहीं, श्रद्धा भी सच्ची नहीं है, तेरी।

कहते हैं आचार्य, जीव **अशुद्धपरिणामरूप...** यह रागादि की व्याख्या। रागादि अर्थात् अशुद्ध परिणाम, ऐसा। **जीवद्रव्य व्याप्य-व्यापकरूप परिणमा है...** मेरी पर्याय में... मैं शुद्ध हूँ द्रव्य से... देखो ! सम्यग्दृष्टि को अशुद्ध परिणमन नहीं है, ऐसा आगे कहेंगे। सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धरूप परिणमा है—ऐसे कहेंगे। स्वयं अर्थ करेंगे राजमलजी। यहाँ कहते हैं... क्या अपेक्षा है ? अंश में मलिनता है, वह मेरे से है, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया ? राजमलजी बाद में बहुत कहेंगे। सम्यग्दृष्टि को बन्ध है ही नहीं। सम्यग्दृष्टि तो शुद्धद्रव्यपने परिणमा है। जैसा शुद्ध है, त्रिकाली आनन्दरूप है, ऐसा ही उसकी पर्याय में आनन्द और शुद्धरूप ही परिणमन हुआ है। अशुद्ध परिणमन समकिती को है नहीं। ओहो ! एक ओर ऐसा कहते हैं, कहेंगे... निर्जरा में ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं... आचार्य कहते हैं कि भले मैं उस समय ऐसा कहूँगा, परन्तु मेरी पर्याय में इतना मलिनता का भाव है, वह मेरे ख्याल में है... वह मेरे ख्याल में है। ख्याल बाहर नहीं है। और रागरूप हुआ, वह मैं ही हुआ हूँ। कोई कर्म से हुआ, ऐसा है ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

परिणति उसमें निमित्त है, बस। कलुषितपने मैं परिणमा हूँ, यह पहले सिद्ध किया है। अब वह परिणमन में विकार है तो निमित्त है या नहीं ? तो निमित्त है मोहकर्म। परन्तु वह मोहकर्म कौन सा ? वह बात करते हैं। **पुद्गलपिण्डरूप मोहकर्म का उदय निमित्तमात्र है।** पूर्व का पुद्गलकर्म तो निमित्तमात्र है। राग तो अपने उल्टे पुरुषार्थ से आत्मा करता है। देखो ! यहाँ पहले आया। समझ में आया ? यह (बात) ७१ के वर्ष में पहली बैठी थी और बाहर प्रसिद्ध की थी पहली, हों। ऐसा है भाई ! अपने पुरुषार्थ से राग-द्वेष करता है आत्मा। कर्म-फर्म कराता है, ऐसी बात है नहीं। खलबलाहट... अरे ! अपने तो कर्म होता है न ? अपने अर्थात् कौन ? अपने अर्थात् जैन को तो कर्म हो। कर्म के कारण भटके, कर्म के

कारण राग होता है। ऐसा है नहीं भाई! कर्म तो निमित्तमात्र है। इतनी दशा में चढ़े हुए आचार्य, जरा शुभ विकल्प रहा है, उसे कलंक कहकर (कहते हैं कि) मैं उसरूप परिणमा हूँ, हों! यह रागरूपी व्याप्य अवस्था मेरी है और मैं व्यापक हुआ हूँ, हों! आहाहा! ऐ वजुभाई!

कितना विनय और कितना विवेक और कितनी नरमाश! जिन्होंने समर्थ गणधर जैसा काम कुन्दकुन्दाचार्य की टीका में किया है। भाई! मेरी पर्याय में थोड़ा कलंक है, हों! यह कलंक '**कल्माषितायाः**' मैं परिणमा हूँ और व्याप्य-व्यापक मेरा है, हों! व्यापक अर्थात् कर्ता, व्याप्य अर्थात् कर्म; कर्म अर्थात् कार्य। राग का कार्य मेरा ही है। कोई कर्म-कर्म का है नहीं। दिगम्बर आचार्य सन्त वन में बसनेवाले, आनन्दकन्द में झूलनेवाले प्रसिद्धि करते हैं अपने विकार की। नहीं तो पूर्ण आनन्द क्यों नहीं होता है? पूर्ण शुद्ध आनन्द मेरी अनुभूति में माँगता हूँ, पूर्णता नहीं होती, वह मेरी मलिनता है... यह व्याख्या करते-करते मेरी परम विशुद्धि हो जाओ। समझ में आया?

मेरा लक्ष्य है आत्मा के अन्तर में। शुद्ध आनन्दस्वभाव सन्मुख ही मेरा घोलन चलता है। समझ में आया? चाहे तो विकल्प और टीका हो, मेरा लक्ष्य तो मुख्य वस्तु पर ही है। वह कहते हैं, लिखने के समय राग आया, परन्तु मेरी मुख्यता वहाँ नहीं है, ऐसा कहते हैं। रागपने मैं परिणमा हूँ, परन्तु मेरी मुख्यता वहाँ नहीं है। लिखने की क्रिया में नहीं, राग में नहीं, पर्याय में नहीं। मैं शुद्ध भगवान आत्मा हूँ, मैं चिदानन्द ध्रुव हूँ, उसमें मेरी मुख्यता सदा निरन्तर चलती है। समझ में आया? आहाहा!

मोहकर्म का उदय निमित्तमात्र है। जैसे कोई धतूरा पीने से घूमता है... धतूरा पीने से मस्तिष्क घूमता है। **निमित्तमात्र धतूरा का उसको है।** धतूरा तो निमित्तमात्र है। घूमना तो उसकी योग्यता के कारण से है। देखो! उसमें लिखा है देखो! धतूरे के कारण से नशा हुआ। धतूरे के कारण से नशा, ऐसा नहीं, भाई! नशा होने की योग्यता अपनी पर्याय में अपने कारण से थी, तो धतूरा निमित्त कहने में आया है। शराब से नशा होता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह प्रश्न बहुत चलता था, हमारे (संवत्) ८३ में बहुत चलता था। ८३। चालीस

वर्ष हुए। .... गाथा, पंचाध्यायी। ये देखो इसमें लिखा है। क्या लिखा है ? कि देखो ! शराब के कारण इन्द्रिय ऐसी होती है, इन्द्रिय जड़ को शराब लागू पड़ती है निमित्त ? जड़ को ? भाई ! उसमें यह लिखा है न इन्द्रिय ? इन्द्रिय में नशा आता है जड़ में—परमाणु में ? नशा कहाँ आया है ? नशा तो अपनी पर्याय में आया है, तो पर्याय में मोह को निमित्त कहते हैं। समझ में आया ? जड़ इन्द्रियाँ उसको लेकर ऐसी हो गयी ? जड़ ऐसा हो गया ? शराब को लेकर जड़ ऐसा हो गया कि नशा आया है ? ये पंचाध्यायी है। ...वीं गाथा है दूसरे अध्याय में। बहुत चर्चा चलती थी वहाँ। बिल्कुल नहीं। अपनी पर्याय में नशा होने की योग्यता हुई, (उसमें) शराब का निमित्त है। फिर मोह में लगाते थे मूल तो। देखो ! यह उसके कारण नशा, मोहकर्म के कारण आत्मा में नशा है, मिथ्यात्व को राग-द्वेष की। ऐसा है नहीं तीन काल में। समझ में आया ?

अपने कारण से है विकार, मिथ्यात्व का हो तो अज्ञानी को अपने से है, राग का हो तो भी अपने से है, सन्तों को राग भी है तो अपने से—उसके कारण से। यहाँ तो सन्त आचार्य दिगम्बर कहते हैं पीछे क्या.. ? सत्य का सत्त्व की श्रद्धा बिना ऐसे के ऐसे चहले अन्धे अन्ध। 'अंधो अंध पुलाय।' अन्ध को देखकर अन्ध चले। अन्ध को देखकर अन्ध चले। 'देखाडे' को क्या कहते हैं ? अन्धा दिखाता है और अन्धा चले, पड़े कुएँ में। वस्तु की खबर नहीं कि मैं आत्मा क्या हूँ, विकार क्या है, कैसे होता है ?

कैसा है मोह नामक कर्म ? अब देखो ! मेरी अशुद्ध परिणति में मैं ही व्याप्य-व्यापक अर्थात् कर्ता-कर्म होने पर भी एक मोहकर्म निमित्तपने हैं। यह मोहकर्म कैसा है ? ऐसा कहकर राजमलजी दूसरी प्रकार की टीका करते हैं। '**परपरिणतिहेतोः**' भाषा देखो ! विकार में हेतु। भाषा तो सीधी यह है, समझ में आया ? कि परपरिणति अर्थात् मेरे में विकार है, उसमें कर्म निमित्त है। इसमें कर्म निमित्त है, ऐसा सीधा अर्थ होता है, परन्तु उन्होंने ऐसा दूसरा निकाला। '**परपरिणतिहेतोः**' **अशुद्ध जीव का परिणाम, जिसका कारण है।** ऐसा मोह। क्या कहते हैं ? सुनो ! '**परपरिणतिहेतोः**' उसका अर्थ कि अशुद्ध जीव के परिणाम—राग-द्वेष के अशुद्ध जीवभाव जिसका कारण है। जिसका कारण है। किसका ? जो मोहकर्म उदय में आया, उसको अशुद्ध परिणाम कारण कहा। ...भाई ! समझ में आया ?

परपरिणति का हेतु, मेरी परपरिणति में कर्म हेतु है—ऐसा नहीं। परपरिणति में जो कर्म (निमित्त) है, वह कर्म परपरिणति का हेतु पाकर (बँधा) था, वही कर्म मेरी वर्तमान अवस्था में निमित्त है। ऐ चन्दुभाई! समझ में आया?

'**परपरिणतिहेतोः**' पर की व्याख्या की। **अशुद्ध जीव का परिणाम, जिसका हेतु है...** ऐसा लिया। '**परपरिणतिहेतोः**' '**परपरिणतिहेतोः**' मेरी परपरिणति विकार उसमें... '**परपरिणतिहेतोः**' किसका हेतु? मोहकर्म का। जो मोहकर्म वर्तमान में मेरी कलुषितता में निमित्त है, उस मोहकर्म में अशुद्ध परिणति हेतु थी। समझ में आया? पूर्व का बन्ध... परन्तु पूर्व में बन्ध कैसे हुआ? वह अशुद्ध परिणति निमित्त थी तो कर्म (बँधा)। जो कर्म (बँधा), उसमें मेरी अशुद्ध परिणति हेतु थी, पूर्व में हों, पूर्व में। वही कर्म मेरी अशुद्ध परिणति में निमित्त है। समझ में आया? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा सिद्ध किया। पूर्व में जो कर्म (बँधा) था, वह वर्तमान में निमित्त क्यों है? कि उस कर्म में मेरी अशुद्ध परिणति पूर्व में निमित्तरूप थी। पूर्व में कर्म(बन्धन) में मेरी अशुद्ध परिणति निमित्त थी। पूर्व की चली आई है। मेरे अशुद्ध परिणाम थे, वह कर्म में निमित्त हुए, वही कर्म मेरी वर्तमान कलुषितदशा में निमित्त है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मैं ही उसका जिम्मेदार हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं जिम्मेदार हूँ, वह तो ठीक है, परन्तु कौन सा मोहकर्म मेरे में हेतु होता है, वह दूसरी बात की। अभी नहीं पकड़ में आयी मित्रसेनजी!

यहाँ कहते हैं, भैया! आत्मा मेरी वस्तु तो शुद्ध आनन्द(मय) है, ऐसा दृष्टि, अनुभव तो है और मेरी पर्याय में भी आनन्द आदि आया है। परन्तु मुझे परम विशुद्धि नहीं है वर्तमान में। परम विशुद्धि नहीं है तो मेरी वर्तमान पर्याय में राग है। राग है तो राग में मैं व्याप्य-व्यापक हुआ हूँ। राग का कर्ता मैं, राग मेरा कार्य, (उसरूप) मैं ही हुआ हूँ। ऐसा व्याप्य-व्यापक में निमित्त कोई है? बस इतनी बात। हाँ, कर्म-पूर्वकर्म। कि पूर्वकर्म कैसा? कि मेरा पूर्व का दोष था, वह कर्म(बन्धन) में निमित्त था, वही कर्म वर्तमान में मुझे निमित्त होता है। इस रीति से परम्परा का अर्थ है। दूसरी लम्बी-लम्बी बात नहीं। यहाँ तो जो पूर्व में मोहकर्म बँधा, उसमें मेरी अशुद्ध परिणति निमित्त थी। ज्ञानावरणीय का (उदय) कम

(-मन्द) था, वह प्रश्न न लेकर यहाँ तो (कहा कि) मोहकर्म कौनसा ? कि पूर्व में जो मोहकर्म बँधा था, उसमें मेरी अशुद्ध परिणति उस समय में निमित्त थी, वही मोहकर्म मुझे वर्तमान में निमित्त है। समझ में आया ?

राजमलजी ने टीका कैसे की है ! बनारसीदासजी तो कहते हैं, 'पाण्डे राजमल जैन धर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' गृहस्थाश्रम में रहते हुए... यह तो कहे, हम गृहस्थाश्रम में रहकर, ऐसा क्या समझे ? अरे ! न समझे क्या ? गृहस्थाश्रम में तीन ज्ञान होता है, सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है। समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में क्षायिक समकित होता है। होता है या नहीं ? गृहस्थाश्रम में क्षायिक समकित हो। शास्त्र में क्षायिक समकिती को तीन ज्ञान (कहा) है। मति, श्रुत, अवधिज्ञान होता है। समझ में आया ? परन्तु बात यह कि अपना स्वभाव क्या ? पुरुषार्थ क्या ? जागृति क्या ? श्रद्धा क्या ? राग क्या ? कुछ खबर नहीं और ऐसे के ऐसे मान ले, धर्म करो। क्या धर्म करे ? समझ में आया ? पहली मान्यता तो सुधार लो। मान्यता में सुधार बिना शुद्ध श्रद्धा कभी होगी नहीं। शुद्ध श्रद्धा बिना कभी धर्म की शुरुआत का अंश होता नहीं। समझ में आया ?

क्या कहते हैं ? देखो ! '**परपरिणतिहेतोः**' का अर्थ, पर अर्थात् अशुद्ध जीव के वर्तमान राग-द्वेष परिणाम जिसे कलंक कहा। पूर्व में भी मेरे परिणाम कलंकित थे। जिसका कारण है... **अशुद्ध जीव का परिणाम, जिसका कारण है।** जिसका अर्थात् वर्तमान मोहकर्म का उदय आया, उसका कारण मेरी पूर्व अशुद्ध परिणति मोहकर्म में कारण थी।

भावार्थ इस प्रकार है—जीव के अशुद्ध परिणाम के निमित्त ऐसे रस लेकर... भाषा देखो ! पूर्व में मेरी मलिनता की पर्याय थी, उस समय कर्म में भी उसके कारण से ऐसा अनुभाग—रस रहा, कर्म में, हों ! **अशुद्ध परिणाम के निमित्त ऐसे रस लेकर मोहकर्म बँधता है...** बँधता था, पूर्व में बाँधा था, पूर्व में बन्ध में आया था, **बाद में उदय समय में निमित्तमात्र होता है।** बाद में मेरी वर्तमान मलिनता में वह कर्म निमित्तमात्र होता है। समझ में आया ? बहुत अच्छी टीका की है ! समझ में आया ? लो, तीसरे (कलश) में अपनी पर्याय में मलिनता सिद्ध करते हैं और वीतराग शास्त्र है, तो वीतराग शास्त्र में तो वीतराग की कथनी चलेगी, ऐसा कहते हैं। वीतराग की कथनी चलेगी। राग और पर की

उपेक्षा और स्वभाव की अपेक्षा की कथनी उसमें है। तो उस कथनी के काल में मेरी वीतरागी पर्याय में (पूर्ण) वीतरागता हो जाओ। समझ में आया?

ऐसी प्रार्थना करके आचार्य महाराज टीका करते हैं। दिगम्बर सन्त की ऐसी टीका... आहाहा! समझ में आया? राजमलजी ने भी ऐसी टीका की है, गृहस्थाश्रम में (रहते) हुए। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने, दिगम्बर गृहस्थों ने काम किया है, अलौकिक काम किया है। क्या बात है! समझ में आया? सनातन सत्य वीतराग का मार्ग था, वही प्रसिद्धि में लाये हैं। यह मार्ग है भाई! ये मार्ग है। अनादि का यह मार्ग है। हम शुद्ध द्रव्य हैं उसकी अनुभूति हुई, वह इस दिगम्बर जैनधर्म में ही हुई है। समझ में आया? मेरी पर्याय में कलुषित हुई है मेरे अपराध के कारण से और ये अपराध में निमित्त मोहकर्म है। पूर्व में मेरी अशुद्ध परिणति उसको निमित्त थी, वह कर्म वर्तमान में मुझे निमित्त है। अदलबदल... क्या एक-दूसरे कहते हैं न? कि मेरा नम्बर अभी तो तेरा नम्बर बाद में। यह लड़के नहीं करते? नम्बरवार नम्बर। ऐसा कहते हैं या नहीं? यह लड़के खेलते हैं, तब ऐसा कहते हैं। सिर पर ऐसे चढ़ावे न ऊँचे? ....ऐसा करते थे। छोटी उम्र की बात है। दस-बारह वर्ष की। पहला फेरा मेरा तो दूसरा फेरा तेरा। नम्बरवार नम्बर। उसी प्रकार जिस कर्म में अशुद्ध परिणति पहले निमित्त थी, वही कर्म वर्तमान में अशुद्ध परिणति में निमित्त रहा। समझ में आया?

कितनी सन्धि करते हैं! पूर्व में अशुद्धि मेरे में थी, तब वह निमित्त थी। सत्ता में कहाँ से आया? समझ में आया? यह सत्ता में मोह रहा कहाँ से? मेरी पूर्व में अशुद्ध परिणति थी, उसने निमित्त किया—निमित्तरूप हुई, वही कर्म मेरी वर्तमान... राग का व्याप्य मेरा कार्य होने पर भी यह अशुद्ध परिणति जिसको निमित्त हुई थी, वह मोहकर्म मुझे निमित्त हुआ है। समझ में आया? चन्दुभाई! यह अशुद्धता की बात तो हुई थी, बात तो हुई थी। नहीं याद हो। पूरा वाँचा हो तब याद रहे न।

कलश - ४

अब चौथा श्लोक... अब चौथा श्लोक। बहुत अच्छा... चौथे श्लोक में तो इतना मर्म भरा है।

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव॥४॥

ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त, महा धर्म का धोरी, धर्म का स्तम्भ, जिसमें वस्तु को अकेली पृथक् कर दी। '**ईक्षन्ते एव**' में मेरा वजन है अधिक अभी। रमेशभाई! अन्तिम शब्द है न? '**ईक्षन्ते एव**' आहाहा! क्या कहते हैं? '**ते समयसारं ईक्षन्ते एव**' पहला शब्द डाला देखो! वस्तु वहाँ जोर है... वस्तु वहाँ जोर है। **आसन्नभव्य जीव** (अर्थात्) जिसका संसार (का किनारा) नजदीक है। आहाहा!

आया था न कुन्दकुन्दाचार्य के लिए प्रवचनसार में पहले? अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), अहो! कुन्दकुन्दाचार्य जिनका संसार (का किनारा) निकट है (अर्थात्) अल्प काल में जिनको मुक्ति है, ऐसा अनेकान्त जिन्होंने सिद्ध किया है। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य यह श्लोक कहते हैं। समझ में आया? वह प्रवचनसार में है न? **संसारसमुद्र का किनारा जिनको निकट है...** (ऐसा) अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य के लिये। जिनका संसार किनारा निकट है, ऐसे आसन्न भव्य महात्मा कुन्दकुन्दाचार्य... भगवतकुन्दकुन्दाचार्य। **सातिशय विवेक ज्योति जिनको प्रगट हुई है...** सातिशय... अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं... ९००-१००० वर्ष पहले हुए जो कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उनका हृदय इनके ख्याल में आ गया। पर का ख्याल आ जाता है? देखो! क्या कहते हैं यहाँ?

९००-१००० वर्ष पहले मुनि हुए वे आचार्य कहते हैं कि हम कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य जिनका संसार (का किनारा) निकट है **और सातिशय विवेकज्योति जिनको प्रगट हुई है...** सातिशय विवेकज्योति-भेदज्ञान। भेदज्ञान जिनको प्रगट हुआ है

और समस्त एकान्तवाद की विद्या का अभिनिवेश जिन्हें अस्त हुआ है... एकान्त अभिप्राय का नाश कर दिया है, ऐसी पारमेश्वरी अनेकान्तवाद विद्या प्राप्त की है। भगवान आत्मा... कुन्दकुन्दाचार्य ने अपना अनन्त आनन्दस्वरूप, राग का अभाव(रूप), दुःख का अभाव(रूप) ऐसी अनेकान्त विद्या जिसने प्राप्त की है। समस्त पक्ष का परिग्रह जिसने छोड़ा है। शत्रु-मित्र कोई है नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य को शत्रु-मित्र कोई है नहीं। **ऐसे अत्यन्त मध्यस्थ होकर सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से आत्मा के लिये अत्यन्त हिततम भगवन्त परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य...** देखो! यहाँ निमित्त लिया। पंच परमेष्ठी जिसमें निमित्त हैं, ऐसी आत्मा की दीक्षा प्राप्त हो, उसमें पंच परमेष्ठी निमित्त हैं। समझ में आया? ऐसी अक्षय मोक्षलक्ष्मी को उपादेयरूप से निश्चय करता हूँ, लो। समझ में आया?

प्रवर्तमान तीर्थ के नायक श्री महावीरस्वामी पूर्वक भगवन्त पंच परमेष्ठी को प्रणमन और वन्दन से होनेवाले नमस्कार करके... सर्वारम्भ से (उद्यम से) मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं। मोक्षमार्ग का आश्रय करके... अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं साम्यभाव को अंगीकार करता हूँ (अर्थात्) मैं शुद्ध उपयोग को (अंगीकार करता हूँ)। मुनिपना वह है। शुद्ध उपयोग... पुण्य-पाप नहीं, शुभभाव महाव्रतादि नहीं। मैं शुद्ध उपयोग... जैसा शुद्ध स्वभाव, उसका आचरण शुद्ध, वह मैं अंगीकार करता हूँ। शुद्ध उपयोग प्राप्त करने के योग्य कुन्दकुन्दाचार्य वे समयसार को कहते हैं। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने पहले से प्रसिद्ध किया है। १००० वर्ष पहले हुए (उनकी) खबर पड़ती होगी कि मुनि ऐसे थे वे? आहाहा!

कहते हैं, **आसन्नभव्य जीव...** अपने आसन्न आया न... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य आसन्न भव्य जीव हैं। अल्प काल में मुक्ति है। स्वर्ग में हैं, केवलज्ञान प्राप्तकर मुक्ति प्राप्त करेंगे। समझ में आया? **(समयसारं) शुद्ध जीव को प्रत्यक्षपने प्राप्त होते हैं...** भाषा देखो! आहाहा! धर्मात्मा किसको कहते हैं? कि जिसने समयसार अर्थात् शुद्ध परमात्मा (ऐसा) अपना स्वरूप **ईक्षन्ते एव... ईक्षन्ते एव...** प्रत्यक्षपने प्राप्त किया है। समझ में आया? राग-विकल्प की अपेक्षा छोड़कर अपने मति और श्रुतज्ञान द्वारा अपने प्रत्यक्ष आत्मा को प्राप्त किया है, उसको यहाँ धर्मात्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **समयसारं ईक्षन्ते एव सपदि... थोड़े ही काल में... थोड़े ही काल में...** तुरन्त ही-थोड़े ही

काल में। प्रत्यक्ष हुआ है थोड़ा, एकदम (-पूरा) प्रत्यक्ष करेंगे थोड़े काल में। ऐसा शुद्ध समयसार भगवान कैसा है ? वह कहते हैं, देखो!

कैसा है शुद्ध जीव ? 'उच्चैः परं ज्योतिः' अतिशयमान ज्ञानज्योति है। समझ में आाय ? ऐसा आत्मा—थोड़े काल में प्राप्त करनेवाला जीव कैसा है, उसकी बात करते हैं। **'सपदि'** ओहो! अल्प काल में... **'सपदि'** अर्थात् शीघ्र। थोड़े काल में शुद्ध जीव परमज्योति **'अनवम्'** अनादि है। **'अनवम्'** नयी नहीं है। भगवान चैतन्य ज्योति भगवान आत्मा ज्ञान का सूर्य अनादि है... अनादि है। नया नहीं है। है... है... है... **और कैसा है ? मिथ्यावाद से अखण्डित है।** बौद्ध आदि कुतर्क करे कि ऐसा क्षणिक है, ऐसा प्रत्यक्ष है—(उन) सबसे खण्डित होता नहीं।

मिथ्यावादी बौद्धादि झूठी कल्पना बहुत प्रकार करते हैं, तथापि वे ही झूठे हैं। वे ही झूठे हैं, सब झूठे नहीं। वीतराग ने कहा आत्मा शुद्ध चिदानन्द का अनुभव और पर्याय में—दृष्टि में स्थिरता और द्रव्य में ध्रुवता। जो कहा ऐसी बात है, वे (बौद्ध) कहते हैं, वह झूठा है। वस्तु झूठी नहीं। समझ में आया ? आत्मतत्त्व कैसा है ? कि **जैसा है वैसा ही है।** वेदान्त या बौद्ध लोग कल्पना करे, ऐसा है नहीं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा को देखा एक समय में ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड और पर्याय में परिणमन—जैसा है, वैसा ही है।

आत्मतत्त्व जैसा है वैसा ही है। आगे वे भव्य जीव क्या करते हुए शुद्ध स्वरूप पाते हैं। देखो! अब आया। **वही कहते हैं—ये जिनवचसि रमन्ते...** यह इसमें विवाद। प्रत्यक्ष समयसार को अनुभव करते हैं। कैसे ? कि **जिनवचसि रमन्ते...** वीतराग के वचन में रमनेवाले। वचन में रमनेवाले ? वचन तो पुद्गल है। समझ में आया ? उसका अर्थ कैसे किया, देखो! वह तो जयचन्द पण्डित ने भी किया है। द्रव्यार्थिकनय मुख्य करके जीव को उपादेय कहा, वह जिनवचन में है, ऐसा कहा है वहाँ, भाई! पण्डित जयचन्द ऐसा लिखते हैं। द्रव्यार्थिकनय से मुख्य करके जीव को जीव कहा, वह उपादेय है, ऐसा लिया वहाँ। ऐसे जिनवचन के... जिनवचन अर्थात् व्यवहार और निश्चय दोनों... वह कहे, निश्चय और वयवहार दोनों में रमे, वह मिथ्यात्व का नाश करे। ऐसा है नहीं। दो नय में रमे क्या ? वचन में रमे क्या ? और दो नय में रमे क्या ? समझ में आया ?

जिनवचसि रमन्ते... आसन्नभव्य जीव... जिनवचसि... वीतराग की वाणी-दिव्यध्वनि में आया... सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग महावीर आदि तीर्थंकर (और) महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा विराजते हैं, उनकी दिव्यध्वनि में आया। क्या आाय ? **दिव्यध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु...** लो, यह जिनवचन की व्याख्या। वीतराग की वाणी में शुद्ध उपादेय आत्मा वही आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लाख बात करे बारह अंग की, परन्तु वीतराग की वाणी में ऐसा आता है कि भगवान आत्मा शुद्ध त्रिकाल ध्रुव आनन्दकन्द है, वही तुझे आदरणीय और श्रद्धा करनेयोग्य है। यह वीतराग की वाणी में आया है। कहो, अमरचन्दभाई! वीतरागभाव में (रमना है), वचन में क्या है ? वीतरागभाव की व्याख्या भी यह की। क्या की ? शुद्ध जीववस्तु उपादेयरूप है, ऐसा दिव्यध्वनि में आया है। पर्याय बाद में... वीतराग की वाणी में आया क्या ? अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवलियों की वाणी में क्या आया ? जिनवचन दिव्यध्वनि... भगवान के समवसरण में सौ इन्द्रों की उपस्थिति, मुनियों की उपस्थिति में (दिव्यध्वनि में) क्या आया ? कि शुद्ध जीव।

लाख बात की हो, बारह अंग पढ़े हो... भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द शुद्ध द्रव्य है वही उपादेय है। ये आदर करनेयोग्य, श्रद्धा करनेयोग्य, अनुभव करनेयोग्य है (और) भगवान की वाणी में यह आया है। आहाहा! समझ में आया ? राग करनेयोग्य है और व्यवहार करनेयोग्य है, व्यवहार से निश्चय हुआ—यह भगवान की वाणी में आया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो! है या नहीं ? पुस्तक तुम्हारे पास है। सोमचन्दभाई! है या नहीं उसमें ? देखो!

जिनवचसि... आसन्नभव्य जीव... **जिनवचसि... रमन्ते** (का अर्थ) फिर करेंगे। **जिनवचसि—दिव्यध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु उसमें (रमन्ते) सावधानपने...** देखो भाषा! भगवान की वाणी में वह आया है... व्यवहार का कथन हो, निश्चय का कथन हो या चार अनुयोग का कथन हो, परन्तु उसमें आया है यह। आहाहा! भगवान आत्मा। **भूदत्थेणाअभीगदा...** ये आया। भूतार्थ... **भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ...** समझ में आया ? भगवान की वाणी में वह आया कि भगवान! तुम तो शुद्ध ध्रुव चैतन्य आनन्द हो न! उसका तुम आदर करो। राग का नहीं, निमित्त का नहीं, पर्याय का नहीं। आहाहा! समझ में आया ? जिनवचन में तो बहुत आया है—व्यवहारनय का अधिकार,

करणानुयोग का अधिकार, चरणानुयोग का अधिकार, ऐसे पंच महाव्रत। सबमें यह जीव उपादेय (है, ऐसा) प्रधानपने कथन करने में सब बात आयी है। व्रतादि बताये, वह तो उसके स्थान में शुद्ध उपादेय आत्मा की निर्मलता कैसी है, वह बताने की बात है। आहाहा! समझ में आया?

जिनवचसि रमन्ते... आहाहा! वीतरागभाव में जो शुद्ध उपादेय भगवान आया... देखो! यह बारह अंग का सार, चार अनुयोग का तात्पर्य। **जिनवचसि... आसन्नभव्य जीव... दिव्यध्वनि द्वारा कही है...** क्या कहा? **उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु...** भगवान की वाणी में तो ऐसा आया है। दया, दान, व्रतादि राग आदरणीय है, ऐसा भगवान की वाणी में आया नहीं। आहाहा! दया करनेयोग्य है, ऐसा वीतराग की वाणी में आया नहीं, ऐसा कहते हैं। धन्नालालजी! आहाहा! अरे! वीतराग के अनुयायी कहनेवाले और वीतराग क्या है उसकी खबर नहीं। वीतरागमार्ग से दूर-दूर भागकर कहे कि हम वीतरागमार्ग में हैं। आहाहा! ओहो! भगवान तीन काल के तीर्थंकर, तीन काल के केवली की वाणी में एक ही आया। दिव्यध्वनि... अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान में विराजमान हैं, भविष्य में होंगे। (उनकी) दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि भगवान! तेरा शुद्ध स्वरूप है न, प्रभु! ध्रुव चैतन्य आनन्दकन्द है, वही तुझे आदरणीय है, श्रद्धा में वही आदरनेयोग्य है। श्रद्धा में उस ओर तुझे दृष्टि देनेयोग्य है, ज्ञान में वह ज्ञेय बनानेयोग्य है और उसमें स्थिरता करनेयोग्य है। समझ में आया?

ओहोहो! इतना अर्थ करके व्यवहार उड़ा दिया, निमित्त उड़ा दिया सब। हो, तो उससे क्या है? यहाँ तो शुद्ध जीव अपना... सुनो! चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दकन्दस्वरूप को उपादेय किया, आदरणीय किया, जो ज्ञान-श्रद्धा आदि हुई, तो पीछे राग है, उसका ज्ञान उसमें आ जाता है। ज्ञान नया करना पड़ता नहीं। निमित्त क्या था उसका ज्ञान, अपने उपादेय के ज्ञान में वह ज्ञान आ जाता है। यह ज्ञान नया करना पड़ता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त को जानने की....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आता। कहाँ से आये? अपना ज्ञान है निमित्त में? देवानुप्रिया!

देवानुप्रिया समझते हो ? देवानुप्रिया ऐसे कहते हैं कि मनुष्यपना देव को बल्लभ है। देव को मनुष्यपना बल्लभ है तो सबको देवानुप्रिया (कहकर कहते हैं कि) तुम देव को बल्लभ हो। समझे ? देव मनुष्यपने को (चाहते हैं कि) कब हम मनुष्यपना पायें ? और कब हम चारित्र अंगीकार करें ? देव को मनुष्यपना बल्लभ है। शास्त्र में ऐसा आता है देवानुप्रिया (अर्थात्) हे देव के बल्लभ! ऐ सुजानमलजी! यहाँ तो मिला है। उसको तो मिला नहीं तो उसकी झंखना करते हैं।

अरे भाई! भगवान क्या कहते हैं ? ओहोहो! बारह अंग, तीन काल, तीन लोक के तीर्थंकर का सार आ गया। बारह अंग में और वाणी में ऐसी चीज़ आयी... वीतराग परमात्मा तीर्थंकरदेव की वाणी में... शुद्ध जीववस्तु। वस्तु हों। परन्तु वस्तु उसमें अनन्त गुण बसे हुए हैं न! वस्तु, कोई कहे... **उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु...** आहाहा! परवस्तु आदरणीय नहीं, राग आदरणीय नहीं, पर्याय का अंश भी उपादेय नहीं। अपना शुद्ध आत्मा उपादेय किया तो वह ज्ञान की पर्याय ऐसी हो गयी कि जो पूर्ण है, उसका भी ज्ञान है और जो रागादि है, उसका ज्ञान उसमें आ जाता है। नया करना पड़ता नहीं। शुद्ध को उपादेय करना पड़ता है, बस। आहाहा!

अरे! बात तो सुन! सत्य सुना नहीं, सत्य विचारे नहीं और भड़के। यह... ऐसा है। अरे भगवान! सुन तो सही प्रभु! सोनगढ़ में है भगवान की वाणी। समझ में आया ? अब भड़के हैं अन्दर, ऐ... यह है। वहाँ तो निश्चय की बात करते हैं। परन्तु भाई!....

मुमुक्षु : यह शास्त्र वाँचता....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम देखो न, वाँचता होगा या नहीं तुमको खबर... वाँचने का, परन्तु यह वाँचे नहीं। यह तो पण्डित लोगों का कहना है। आचार्य का पढ़े उसमें गूढ़ भाव हो, तो अपनी दृष्टि से अर्थ करे। क्या समझे ? दो बात। आचार्य के कथन गूढ़ हो तो अपनी दृष्टि से अर्थ करे। इसमें स्पष्ट (बात) हो, वह पढ़े नहीं। वे (लिखनेवाले) पण्डित थे। समाप्त हो गये। आहाहा!

भाई! (बारह) अंग में... शास्त्र में तो बहुत गूढ़ बात होती है। निश्चय क्या ? व्यवहार क्या ? ऐसी बहुत बात आती है। तो उसमें से व्यवहार हेय और निश्चय उपादेय

निकालना वह बहुत-बहुत अन्दर विचार मनन करे तो हो। यहाँ स्पष्ट कर दिया है कि भाई! जिनवचन में वही कहा है। बारह अंग हो या शास्त्र हो या... हो। भगवान... भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा शुद्ध आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, केवलज्ञान पिण्ड, अनन्त आनन्द पिण्ड, अनन्त गुण समास का गंज—ऐसा शुद्ध प्रभु भगवान आत्मा... सर्वज्ञ ने देखा ऐसा, हों! अज्ञानी कहते हैं ये (यथार्थ) आत्मा नहीं।

वह आत्मा शुद्ध ध्रुव त्रिकाल वही पर्याय में आदरणीय है... पर्याय में आदरणीय है। अवस्था में यह अवस्थायी त्रिकाल आदरणीय है, यह बात सिद्ध की। समाप्त हो गया। आहाहा! समझ में आया? देखो! पहली कही थी, अस्ति की बात की थी पहली 'नमः समयसाराय'। ऐसी बात ली। बात ऐसी ली... भगवान आत्मा... शरीर-वाणी का ज्ञान करना... वह तो ज्ञान में अपना शुद्ध आत्मा आदरणीय हुआ तो उसमें जो ज्ञान-श्रद्धा हुई, उस ज्ञान में ऐसा ज्ञान अपने आश्रय से रह जाता है कि जो अपने को जानता है, (और) राग है, सम्बन्ध है, कर्म का सम्बन्ध है, उसका ज्ञान करना पड़ता नहीं, वह ज्ञान आ जाता है। उपादेय में यह उपादेय है, उपादेय में राग और निमित्त उपादेय है नहीं। समझ में आया? जेठालालभाई!.... कहो, समझ में आया? ओहोहो! क्या करते हैं! आचार्यों ने तो (काम किया है), यह तो राजमलजी की टीका! राजमलजी गृहस्थ...

कहते हैं, **जिनवचसि...** वह वहाँ विवाद करते हैं। नहीं, ऐसा अर्थ नहीं। पाठ में तो ऐसा है **जिनवचसि रमन्ते...** सोमचन्दभाई! लो तुम कहते थे कि यह वाँचते हैं या नहीं? यह वाँचते हैं। पाठ में ऐसा है **जिनवचसि रमन्ते...** इसलिए हम तो (मानते हैं कि) आचार्य ऐसा कहते हैं कि जिनवचन में रमना। वे ऐसा कहते हैं। जिनवचन में दो नय का कथन है। तो दोनों नय में रमना, ऐसा कहते हैं। देखो! उभयनय... परन्तु उभयनय विरुद्ध है न? तो दो विरुद्ध में कैसे रमे? निश्चय से व्यवहार विरुद्ध है और व्यवहार से निश्चय विरुद्ध है। तो दो विरुद्ध में कैसे रमे? दो में कैसे स्थिर हो? समझ में आया?

वह कहते हैं, निश्चय और व्यवहार—दो में रमने से सम्यग्दर्शन होता है। अकेला निश्चय का ज्ञान करनेवाला एकान्त मिथ्याभासी है। समझ में आया? अरे भगवान! तुझे खबर नहीं। प्रभु! ऐसी विपरीतता न हो। समझ में आया? नुकसान है, बहुत नुकसान है।

भाई! वर्तमान में नहीं दिखेगा, परन्तु इसके फल कठिन हैं प्रभु! भाई! ये जीव न सहन कर सके। अनादि के ऐसे दुःख सहन किये, बापू! परन्तु खबर नहीं। यह वर्तमान में लोगों को खबर नहीं होती। हाँ, देखो! व्यवहार से निश्चय होता है, निमित्त से विकार होता है, अच्छे निमित्त से सम्यग्ज्ञान उसके कारण से होता है। यहाँ सबका निषेध करते हैं। यहाँ तो एक बात है। सर्वज्ञ वीतरागता शास्त्र में, वाणी में है। भगवान आत्मा... पहले से? पहले कुछ करना, पीछे... ऐसा है या नहीं?

मुमुक्षु : यहाँ से शुरुआत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ से शुरुआत होती है। समझ में आया? पहले कुछ करना दया, दान, भक्ति, व्रत करते-करते फिर... भगवान की वाणी में ऐसा आया है कि पहले में पहला तुझे करना हो तो शुद्ध भगवान आत्मा को उपादेय मान। मान्यता तो पहली कर, (उल्टी) मान्यता तो बदल। राग उपादेय और पर्याय उपादेय—उसमें तेरी मान्यता उल्टी है। स्वभाव से उन्मुख जाता है पर में। स्वभाव आदरणीय है तो स्वभाव सन्मुख होने का पुरुषार्थ जगेगा। नहीं तो पुरुषार्थ जगेगा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

बहुत कथन हैं! कितना कहा है देखो! 'लाख बात की बात निश्चय उर आनो।' भले गमे ते वांच, चार अनुयोग वाँच, भण, परन्तु दिव्यध्वनि के द्वारा... दिव्यध्वनि... भगवान की ॐ ध्वनि निकली बिना इच्छा के पूरे शरीर में से। ऐसी वाणी नहीं निकलती भगवान की अपने जैसी। ॐ... 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की ॐ ध्वनि निकलती है, उसमें से गणधर अर्थ विचारे। समझ में आया? अर्थ क्या निकाला गणधर ने? कि भगवान की दिव्यध्वनि में ऐसा आया है कि तेरा शुद्ध ध्रुव चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द है, उस पर दृष्टि लगा, वह आदरणीय है। अमरचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया?

बाकी भाषा कैसी (कही है कि) शुद्ध वस्तु... **द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु... उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु...** शुद्ध ध्रुव त्रिकाल वस्तु। आश्रय उसमें **रमन्ते... रमन्ते...** वह पर्याय है। वह (शुद्ध वस्तु) त्रिकाली है। शुद्ध ध्रुव चैतन्य भगवान, उसे उपादेय मान। उपादेय माना तो वहाँ **रमन्ते...** ध्रुव में **रमन्ते... रमन्ते...** वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र

है। समझ में आया? देखो! मोक्षमार्ग भी स्वभाव में रमते (हुए) प्रगट होता है। स्वभाव में रमना... वह व्यवहारमोक्षमार्ग का निषेध हो गया। यहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग है ही नहीं। एक में तो साफ-साफ कर दिया। मोक्षमार्ग दो है ही नहीं। मोक्षमार्ग तो... शुद्ध ध्रुव भगवान आत्मा दिव्यध्वनि में आया कि शुद्ध प्रभु आत्मा वह उपादेय है, आदरणीय है। आदरणीय अस्ति से कहा। राग, पर्याय, निमित्त आदरणीय नहीं, ऐसा नहीं कहा। यह वस्तु आदरणीय है, बस—ऐसा वाणी में आया। आहाहा! समझ में आया?

उसके गर्भ-गर्भित में आ गया कि पर्याय आदरणीय नहीं, राग आदरणीय नहीं, निमित्त आदरणीय नहीं। ऐसी शुद्ध उपादेय वस्तु में वह नास्ति आ जाती है। अस्ति के भान में नास्ति आ जाती है। अकेला निमित्त और राग का ज्ञान करे तो परावलम्बी ज्ञान, एकान्त ज्ञान, मिथ्याज्ञान है। उसमें अपने शुद्ध उपादान का ज्ञान आता नहीं। समझ में आया? आत्मा एक समय में परिपूर्ण भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु है, वही उपादेय है, ऐसा भगवान की वाणी में आया है। तुझे भगवान का मानना है या तेरी कल्पना से मानना है? भगवान की वाणी मानना है कि तुझे दुनिया की कल्पना का मानना है? भगवान तो ऐसे कहते हैं। समझ में आया?

दिव्यध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु, उसमें... उसमें... उसमें अर्थात् शुद्ध वस्तु जो ध्रुव है, उसमें **रमन्ते...** श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र उसमें से निकालते हैं। **उसमें सावधानपने रुचि-श्रद्धा-प्रतीति करते हैं...** यह पहले करना है उसको। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान आनन्दस्वरूप, वही उपादेय कहा, तो रुचि-श्रद्धा-प्रतीति उसमें करते हैं। यह पहले में पहली सम्यग्दर्शन की दशा और सम्यग्दर्शन की स्थिति ऐसे उत्पन्न होती है। यह पहले में पहला वीतरागवाणी में कहने में आया है। समझ में आया? सावधानपने करते हैं... विवरण। फिर उसका विवरण चलेगा, उसका स्पष्टीकरण...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ३, बुधवार, दिनांक २३-८-१९६७
कलश - ४, प्रवचन नं. ७

यह समयसार जीव अधिकार है। जीव अधिकार में... दिव्यध्वनि में क्या सार आया? क्या करनेयोग्य है, वह बात पहले कहते हैं। यहाँ आया है, देखो! '**जिनवचसि रमन्ते**' जिनवचन में रमना, ऐसा पाठ है। वीतराग की वाणी में ऐसा आया कि हमारे वचन में तुम्हें रमना। आचार्य ने ऐसा कहा है न? वचन में रमने का क्या अर्थ है? वह कहते हैं, देखो! वचन में रमने को कहते हैं। इसलिए द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक—द्रव्य त्रिकाल और वर्तमान पर्याय—दोनों में रमना। दो में आश्रय दोनों का करना, ऐसा कहते हैं। ऐसा तो है ही नहीं। ऐसा हो सके कहाँ से?

एक तो जिनवचन में रम सकते नहीं और जिनवचन में दो नय आये—द्रव्यार्थिक अर्थात् द्रव्य-वस्तु शुद्ध अखण्ड अभेद (और) पर्यायार्थिक अर्था अवस्था और रागादि। दो नय का कथन वीतराग की वाणी में आया। तो वाणी में भी रम सकते नहीं और दो प्रकार के नय में भी रम सकते नहीं। समझ में आया? दो प्रकार कैसे? द्रव्यार्थिक अन्तर्मुख दृष्टि कराता है, पर्यायार्थिक वर्तमान पर्याय और राग का ज्ञान कराता है। दोनों में एकाकार कैसे हो सके? समझ में आा? वे कहते हैं सामने, देखो! दो नय का ज्ञान करके दोनों में रमना तो मिथ्यात्व का नाश होता है। परन्तु वैसा अर्थ होता नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहा कि जिनवचन में क्या कहा आसन्न भव्यजीव को? **दिव्यध्वनि के द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु...** देखो! दो नय का कथन आयेगा, परन्तु उसमें पर्याय-वर्तमान अवस्था, राग का लक्ष्य छोड़कर... लक्ष्य छोड़कर, (ऐसा) भी यहाँ तो नहीं आया। क्योंकि वह तो जहाँ एक नय (का विषय) स्वभाव की ओर झुकता है तो पर सन्मुख का लक्ष्य छूट जाता है। सूक्ष्म बात है। सारे जैनशासन की वाणी और जैनशासन, उसमें तीनों काल में वीतराग तीर्थंकरों की वाणी द्वारा ऐसा कहने में आया कि शुद्ध जीववस्तु उपादेय है। वह मूल चीज़ कही। समझ में आया?

लाख बात पढ़े, पढ़ावे, शास्त्र पढ़े, क्रिया करे, राग मन्द हो—सब हो उसके स्थान में, परन्तु भगवान की वाणी में—अनन्त तीर्थंकरों की वाणी में—त्रिकाल तीर्थंकर और

केवलज्ञानी की वाणी में आया कि (उपादेय आदरणीय वस्तु तो) शुद्ध भगवान आत्मा है। उसका अर्थ हुआ कि अशुद्ध पर्याय पर से लक्ष्य छूट गया। शुद्ध जीव उपादेय **उसमें सावधानपने...** स्वभाव शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव... समझ में आया ? उसमें रुचि, श्रद्धा की प्रतीति करते हैं। यह आज्ञा भगवान की है। अनुभूति (करने) की आज्ञा है भगवान की। जेठालालभाई ! नहीं ? यह सब बीच में आवे न ? दया, दान, भक्ति, व्रत। वह हो, वह तो जाननेयोग्य है। स्वभाव के सन्मुख होकर शुद्ध का अनुभव करना, वही वीतराग की वाणी में आया है। उसमें जब तक (पूर्ण) वीतरागता न हो, तो बीच में रागादि आता है, उसका भी यहाँ कथन नहीं किया। क्योंकि स्वभाव सन्मुख का ज्ञान हुआ, उसके (साथ में) जो रागादि बाकी रहता है, उसका भी ज्ञान उसमें स्व-परप्रकाश में आ जाता है। आज्ञा तो यह की है। समझ में आया ?

पाँचवीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने ये कहा, **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण...'** अपना स्वरूप स्वभाव से एकत्व है और रागादि क्रिया से पृथक् है, ऐसा हम तुमको कहेंगे। **दाएहं अप्पणो...** अपना निज अन्तर अनुभव से मैं आत्मा को कहूँगा। **जदि दाएज्ज...** जो मैं दिखाऊँ तो प्रमाण करना—अनुभव करना। प्रमाण का अर्थ अनुभव करना। समझ में आया ? क्योंकि हमारे कहने का आशय वही है कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु के सन्मुख होकर अनुभव करना। वही हमें सारे समयसार में कहना है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं पाँचवीं गाथा में।

जदि दाएज्ज... जो दिखाऊँ तो प्रमाण करना। प्रमाण का अर्थ अनुभव करना, ऐसी बात है। व्यवहारवाले को इतना लगे कि इसमें व्यवहार आता ही नहीं। आये तो क्या है ? भले हो चाहे, परन्तु आज्ञा तो अपना शुद्ध चैतन्य भगवान उसमें... वीतराग भगवान त्रिलोकनाथ और कुन्दकुन्दाचार्य दोनों यही कहते हैं। हम दिखायेंगे कि आत्मा कैसा है, वाणी द्वारा आया कि आत्मा कैसा है। अनुभव करना। शुद्ध आत्मा परिपूर्ण परमात्मा, वही उपादेय अर्थात् उस ओर का आश्रय करना और उसको ही हितकर मानना, ऐसी भगवान की आज्ञा है। भारी !

व्यवहार की बात का पार न मिले, शास्त्र में करणानुयोग, चरणानुयोग और ऐसा...

ओहोहो! परन्तु कहते हैं कि हमारी वाणी में तो एक ये सार ही आया है सबमें। तीन काल, तीन लोक के तीर्थंकर जो हों... तीन लोक अर्थात् हो तो यहाँ ही (मध्यलोक में)। समझ में आया? ऐसे परमात्मा की वाणी... वीतराग सर्वज्ञ हुए तो वाणी में ऐसा आया कि भैया! तुम आत्मा शुद्ध चैतन्य एकरूप स्वभाव हो न? उसका तुम अनुभव करो और वही चीज़ आदरणीय है। इसके अतिरिक्त कोई पर्याय राग और निमित्त वास्तव में आदरणीय, उपादेय, अंगीकार करनेयोग्य नहीं—यह वाणी आयी। कहो, जेठालालभाई!

देखो! यह दिगम्बर जैनधर्म का रहस्य। उसमें यह आया कि हमारे शास्त्र और हमारे परमात्मा ने ऐसा कहा है। समझ में आया? दूसरे में चलता है न कि पहले व्यवहार है। ऐसा आता है। व्यवहार समकित पहले, व्यवहारी वह समकिती। यह भगवान का मार्ग ही नहीं। समझ में आया? अनादि सनातन वीतराग परमेश्वर जो हुए, उनकी वाणी में... क्योंकि अपने शुद्धस्वरूप की ओर झुकाव होकर उन्होंने भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त किया और स्वभाव में पूर्ण झुकाव होकर केवलज्ञान लिया। उनकी जब तक छद्मस्थ अवस्था थी... छद्मस्थ समझे? केवलज्ञान नहीं था। स्वरूप की ओर सन्मुखता थी, विकल्प आता था, तब भी उसमें (ऐसा था कि) मैं स्वरूप की ओर एकाग्र होऊँ, स्वरूप की ओर विशेष एकाग्र होऊँ। तो (ऐसे) विकल्प से भी ऐसा परमाणु बँध गया... परमाणु ऐसा बँध गया। भगवान बोलते हैं कहाँ और भगवान को वाणी कहाँ है? आहाहा! समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर हुए (उसके) पहले वे तो अपने शुद्ध ध्रुवस्वरूप को उपादेय करके अनुभव करते थे और विकल्प था तो विकल्प में वही था कि मैं पूर्ण होऊँ, मैं स्वभाव सन्मुख एकदम उग्र होऊँ। समझ में आया? अथवा दूसरे प्राणी भी ऐसी स्वभाव (वान) चीज़ के सन्मुख होकर अनुभवे। ऐसा विकल्प अल्पज्ञदशा में आता था तो उसमें परमाणु बँध गये, तो वह परमाणु (के उदय) में ऐसी ही ध्वनि आती है। भगवान करते हैं और आती है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? यह ध्वनि ऐसी आती है कि शुद्धस्वरूप आत्मा वह उपादेय, दूसरा उपादेय नहीं। उन्होंने ऐसा किया था तो ऐसी वाणी आयी, ऐसा विकल्प था तो ऐसी वाणी निकल गई। धन्नालालजी! समझ में आया?

बहुत वर्ष पहले कहते थे, जो अरिहन्त का... कहा न? अरिहन्त... भगवान की

वाणी में ऐसा क्यों आये ? वे कहते थे कि (हम) पुरुषार्थ नहीं कर सके, भगवान ने देखा (ऐसा होगा)। यह आयेगा नीचे। भगवान ने देखा ऐसा होगा। नीचे आयेगा हों। वाणी में ऐसा क्यों आवे ? क्योंकि सर्वा अपने शुद्धस्वरूप की ओर की सावधानी करके साधते थे, उसमें ऐसा विकल्प आया। विकल्प तो वह आता है कि मैं स्वरूप में एकाग्र होऊँ अथवा कोई दूसरा प्राणी ऐसा शुद्धस्वरूप समझे। उस विकल्प में पुण्य बँध जाये तो उनकी वाणी में ऐसा ही आता है। स्वरूप सन्मुख होकर अनुभव करो, वही वाणी में आता है। वे वाणी के कर्ता नहीं, वाणी ऐसे बनायी नहीं। समझ में आया ? वह वाणी में ऐसे आये कि हमने देखा है कि तुम्हारे पुरुषार्थ से धर्म न हो सके ? अपने स्वभाव सन्मुख होकर ध्यान, आनन्द करते थे, ऐसे साधक थे, अल्पज्ञ थे तो विकल्प आया, तो विकल्प में स्वरूप सन्मुख होने का, पूर्ण होने का ही विकल्प था। समझ में आया ?

उनकी वाणी में ऐसी वाणी आये ? कि तुम पुरुषार्थ नहीं कर सकते, ऐसा हमने देखा है। ऐसी उनकी वाणी हो सकती नहीं। समझ में आया ? कहते हैं, वीतराग की वाणी में ऐसा आया... आहाहा ! सीधा ? पहले कुछ करना ऐसा कुछ नहीं ? जेठालालभाई ! पहले व्यवहार बाद में निश्चय, वह भी नहीं आया उसमें।

मुमुक्षु : निश्चय हो तो व्यवहार हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद की बात। यहाँ तो ये एक ही बात है। बाद में व्यवहार आता है, यह तो विशेष समझने की बात है। यहाँ तो एक ही बात... वीतराग कितना स्पष्ट करते हैं ! **जिनवचसि रमन्ते...** जिनवचन में ऐसा दो नय का कथन आया। दो नय के कथन में—दो में तो एकाग्र हो सकता नहीं। तो एक नय में ऐसा आया कि स्वभाव सन्मुख होकर आत्मा का अनुभव करो। दूसरा नय आता है बीच में, वह जाननेयोग्य है, ऐसा भी यहाँ कहा नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो भगवान आत्मा... कितनी बात करते हैं ! आहाहा ! समझ में आया ? प्रभु ! तुम पूर्ण हो, शुद्ध आनन्द हो, तेरी शक्ति अपार है। समझ में आया ? भजन में नहीं आता है ? क्या कहा ? अपार है परमात्मा... ऐसा आता है न ? बोलते हैं न ये लोग ? 'बन जा परमात्मा, तेरी आत्मा की शक्ति अपार है।' यह आता है न। इसके पहले कुछ आता है न ?

मुमुक्षु : कहा मान ले ओ मेरे भैया, भव-भव में रुलने में क्या सार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सार है... तेरी आत्मा की शक्ति अपार है, बन जा परमात्मा— ऐसा आता है। वह भजन में आता है न अपने। भगवान...

देखो! यह कलश में वही शब्द है हों, उनके घर का नहीं। **उभयनयविरोधध्वंसिनि... जिनवचसि रमन्ते...** उसका अर्थ क्या हुआ? दोनों नय तो विरुद्ध है। एक नय द्रव्य को— वस्तु को बताता है, एक नय अवस्था को बताता है। दोनों नय भिन्न है। एक नय अभेद को बताता है, एक नय भेद को बताता है। एक नय एक को बताता है, एक नय अनेक को बताता है। एक-अनेक दोनों दिशा ही फेर है। अनेकपना पर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है, अभेदपना अन्तर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। तो दोनों की दिशा (उल्टी होने से) दोनों में रमना बन सकता ही नहीं। पाठ क्या है? **उभयनयविरोधध्वंसिनि...** उभयनय विरुद्ध है। ये वीतराग की वाणी विरोधध्वंसिनी है। समझ में आया?

उभयनयविरोधध्वंसिनि... ध्वंसिनि कब होता है? कि दो नय में जो कथन आया... समझ में आया? उसमें जो नय स्वभाव सन्मुख ले जाता है, उसी (नय का) कथन मुख्यपने ज्ञानी की वाणी में आया है। समझ में आया? क्या एक समय की पर्याय को राग उसमें एकाग्र होता है? उसमें एकाग्र होने से लाभ होता है? (उसमें) तो एकाग्र अनादि से है ही। समझ में आया? वह तो अनादि से है ही। अब करना क्या उसको? और वीतराग हुए उन्होंने किया क्या? स्वभाव सन्मुख अनुभव करते-करते वीतराग हुए हैं। समझ में आया? तीन काल, तीन लोक के तीर्थंकरों की वाणी में यही आया है। समझ में आया? भगवान आत्मा सार में सार है। चाहे जितना पढ़े, चाहे जितना क्रियाकाण्ड, दया। दान, व्रत आदि करे, परन्तु स्वरूप शुद्ध ध्रुव है उसका अनुभव करे तो कल्याण है, बाकी कल्याण है नहीं। सेठ! ऐसी बात है। कहाँ गये सोमचन्दभाई? समझ में आया? महाकाव्य आया, हों।

उभय में बड़ा विवाद है। अरे भगवान! क्या करते हो तुम? दो नय का कथन है तो दो नय में कैसे रह सकते हैं? समझ में आया? एक समय की पर्याय (के आश्रय) से नयी पर्याय आने की ताकत नहीं। व्यवहारनय बताता है कि एक समय में अवस्था है, राग है। तो उससे नयी पर्याय आने की ताकत है? वह नय बताने के पहले ये बताया कि जिसमें

से नयी पर्याय प्रगट होती है सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह पर्याय में से पर्याय नहीं आती। व्यवहारनय के कथन की बात यहाँ की ही नहीं, भाई! आहाहा! देखो न शैली एक! सन्तों की शैली वीतरागमार्ग की पद्धति की रीति तो देखो! कथन पद्धति भी कैसी है! दो नय... दो नय... एक पर्याय है और द्रव्य है। तो पर्याय में से पर्याय आती नहीं। अपना प्रयोजन सिद्ध करना है... पर्याय में से पर्याय आती नहीं। पर्यायनय का व्याख्यान किया, वह तो जानने के लिये किया और द्रव्य का व्याख्यान किया, वह द्रव्य की दृष्टि, अनुभव कराने को किया। समझ में आया?

चैतन्य—जिसमें अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं, उसमें एकाग्र होने से... क्या कहते हैं? श्रद्धा... (अकेली) नहीं, एकाग्र स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव करना, ऐसी आज्ञा है। समझ में आया? क्यों? शुद्ध जीववस्तु **उसमें सावधानपने...** ओहोहो! सारे भगवान तीर्थंकर की आज्ञा... कलश में आता है, अनुभूति विहितम्। भगवान ने अनुभूति को ही विधि कहा है। आत्मा का अनुभव करना, उसे विधि कहा है। कलश में आता है बाद में। समझ में आया? आहा! जगत को, वीतराग का मार्ग (क्या है और) वीतराग क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं। वीतराग वह कहते हैं... तीन काल—तीन लोक के परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र की उपस्थिति में... बड़े अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र और ईशानेन्द्र, उत्तरार्ध के ईशानेन्द्र, दक्षिण के शकेन्द्र। सौ इन्द्र की उपस्थिति में जिन की वाणी में ऐसा आया... समवसरण में वीतरागदेव की दिव्यध्वनि ऐसी आयी, भगवान! तेरी चीज़ शुद्ध ध्रुव है न, उसका अनुभव कर। वह एक ही उपादेय है। समझ में आया?

पहले व्यवहार और फिर निश्चय, पहले निमित्त फिर उपादान—वह बात रहती नहीं। धन्नालालजी! आहाहा! क्या करे? उसे यह रुचता नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, हम कहेंगे, दिखायेंगे, प्रमाण करना, अनुभव करना। तेरे अनुभव प्रत्यक्ष से हाँ करना, ऐसे बाहर से नहीं। अन्तर शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है, उसका अनुभव करके प्रमाण करना। बाहर से प्रमाण करना, वह प्रमाण है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जिस बात का पता नहीं था, वही अनुभव कराने के लिये तो कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा है। भाई! पर्याय पर तो तेरी दृष्टि अनादि की है। समझ में

आया ? सम्यग्दृष्टि की पर्यायदृष्टि नहीं... पर्यायदृष्टि नहीं। बनारसीदास में आता है। समझ में आया ? पर्याय (दृष्टि) तो अनादि की है ही। अनादि-अनन्त जो चैतन्य ध्रुव ज्ञायकप्रभु शुद्ध, उसके सन्मुख होकर अनुभव करना, वही वीतराग की वाणी का सार है। वीतराग ने यही कहा है। यह समझे नहीं और विवाद करे। भगवान! किसके साथ विवाद करता है ? तेरे आत्मा के साथ विवाद है। अरे प्रभु! क्या करते हैं ? देखो! सन्तों की वाणी तो देखो! दिगम्बर मुनियों... समझ में आया ? व्यवहार पहले करना ऐसी आज्ञा है भगवान की—यह तो कहीं आया नहीं इसमें। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : अज्ञानी रखने के लिये उनकी राय थी क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी रखना... व्यवहार का करना, वह तो अज्ञान है। अनादि से दया, दान, विकल्प करते हैं, वह तो मिथ्यात्वभाव है। मैं विकार करनेवाला, मैं विकार करूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। क्या उसमें रखना है उसको ? वीतराग के मार्ग में नवीन अपूर्व क्या (आया) ? समझ में आया ? कोई दुनिया से मिलान होता नहीं। क्योंकि वस्तु त्रिकाल ध्रुव (और) पर्याय है। परन्तु पर्याय का झुकाव ध्रुव पर करके अनुभव कर। देखो! दोनों ले लिये अन्दर। अकेले पर्याय का ज्ञान करना, लक्ष्य रखना यह वस्तु की आज्ञा है नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान की वाणी में उपादेय तो शुद्धभाव... शुद्धभाव... महासिद्धान्त... सत्य का महा पड़कार सिद्धान्त है। भगवान उपादेय वस्तु उसकी **रुचि-श्रद्धा-प्रतीति करते हैं।** ऐसी भगवान की आज्ञा है। अब कोई, रुचि-श्रद्धा-प्रतीति की व्याख्या साधारण बना दे तो उसे रुचि-प्रतीति का अर्थ नहीं (पता)। उसका अर्थ कोई दूसरा है। विशेष बताते हैं। उसका ब्यौरा। ब्यौरा अर्थात् विवरण। मूल तो ब्यौरा शब्द है न मूल में ?

विवरण—शुद्ध जीववस्तु का प्रत्यक्षपने अनुभव करते हैं, उसका नाम रुचि-श्रद्धा-प्रतीति है। ऐसा नहीं कि आत्मा है, ऐसी श्रद्धा-रुचि करो। श्रद्धा कब ? कि भगवान आत्मा शुद्ध जीव वस्तु निर्मलानन्द प्रभु है, उसका प्रत्यक्षपने... मति-श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्षपने... राग द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं। देखो! कितनी बात करते हैं! आहाहा! **शुद्ध जीववस्तु का प्रत्यक्षपने...** क्योंकि आत्मा में ऐसा प्रकाश नाम का एक गुण पड़ा है। भगवान की

वाणी में आया कि भाई! तेरे आत्मा में प्रकाश नाम का गुण है कि जो गुण आत्मा को प्रत्यक्ष कर दे ऐसा तेरा गुण है। तो ऐसे गुण को धरनेवाला भगवान आत्मा उस ओर झुकाव और दृष्टि गयी तो पर्याय में प्रत्यक्ष हो जाता है। आत्मा पर्याय में प्रत्यक्ष हो जाता है। आहाहा! यह प्रत्यक्ष हो, अनुभव हो, ऐसी आज्ञा भगवान की है। आहाहा! कितनी बात करते हैं! विकल्प आदि तो उड़ा दिया, परोक्षपना उड़ा दिया। परोक्षपने की आज्ञा है नहीं। धन्नालालजी! ओहोहो! भाई! मार्ग ऐसा है। दुर्लभ लगे तो भी मार्ग तो यही है। इस मार्ग का शरण लिये बिना कभी उसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। चौरासी का अवतार नरक-निगोद... समझ में आया?

देखो न! रास्ते में देखते हैं तो सड़क पर कुछ चूरा उड़ जाता है वह.. क्या? बिच्छु, सर्प... चूरा... बापू! ऐसे अनन्त मरण किये। भाई! तुझे खबर नहीं। अनन्त काल में रुलते-रुलते ऐसे भव (हुए)। इस भवभ्रमण का नाश करने का उपाय पर्यायदृष्टि नहीं। इसका उपाय (है कि) द्रव्य ज्ञायकस्वरूप शुद्ध ध्रुव उसके प्रत्यक्षपने स्वभाव सन्मुख हुआ तो राग का अवलम्बन गया, विकल्प का और मन का अवलम्बन गया और अकेला शुद्धस्वरूप का अवलम्बन हुआ तो मति-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष हुआ। प्रत्यक्षपने आत्मा का अनुभव करना, ऐसी भगवान की वाणी में आज्ञा है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

ऐसी श्रद्धा के पक्ष का भी ठिकाना नहीं। ये मार्ग है, शुद्धस्वरूप का अनुभव करना, वही मार्ग है और अनुभव में आत्मा प्रत्यक्ष होता है, वही मार्ग है—ऐसी श्रद्धा के पक्ष में भी आये नहीं और उससे विरुद्ध श्रद्धा के पक्ष में रहे कब इसका सुलटाव आवे? समझ में आया? पुस्तक है या नहीं सामने? पुस्तक है उसमें से तो आता है। कोई ऊपर से कहते हैं, ऐसा है नहीं। अन्दर में है, देखो!

मुमुक्षु : पुस्तक है, पर अनुभव तो होवे....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें ऐसा है या नहीं? कितने ऐसा कहते हैं कि वे तो ऐसा अर्थ करते हैं... कितने ऐसे भी कहे कि महाराज कहते हैं तो शास्त्र प्रमाण से, सिद्धान्त प्रमाण से, परन्तु अपने सुना नहीं तो विपरीत लगता है। परन्तु सुनो तो सही भाई! यह बात मिली ही नहीं है। यह बात चलती ही नहीं थी। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की

वाणी में ऐसा आया है कि तुम तुम्हारे शुद्धात्मा का अनुभव करो, प्रत्यक्षपने अनुभव करो। वही वीतराग की वाणी में आया है। आहाहा! निमित्त उड़ा दिया, व्यवहार उड़ा दिया, विकल्प से लाभ उड़ा दिया, परोक्षज्ञान भी उड़ा दिया। आहाहा! समझ में आया? परलक्ष्यी ज्ञान, परोक्षज्ञान वह आत्मा के साधन में काम करता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात ऐसी है।

भाई! आत्मा का कल्याण जिसको करना है... आत्मा का हित करके जन्म-मरण का अन्त लाना है। भाई! समझ में आया? यह भव-भव के अभाव के लिये मिला है। ऐसी दृष्टि करो, ऐसा भगवान कहते हैं। समझ में आया? आत्मा है, क्या न कर सके? समझ में आया? अनन्त शक्तिमान है। तेरी शक्ति अपार है... अपार है... परमात्मा होना और बाद में परमात्मा अनन्त काल रह सके, ऐसी तेरी शक्ति है। अनन्त काल ऐसे के ऐसे परमात्मा रहा करे, दशा प्रगट हुआ ही करे अन्दर में से, ऐसी तेरी शक्ति है। क्या शक्ति नहीं है उसको कहते हैं? समझ में आया?

कहते हैं, **शुद्ध जीववस्तु का प्रत्यक्षपने...** आहाहा! भारी परन्तु टीका भी करते हैं न! रहस्य खोल डाला है। श्रीमद् ने किसी समय ऐसा कहा है कि मार्ग ज्ञानी के हृदय में है। शास्त्र में मर्म खुल्ला नहीं, ऐसा कहा है। शास्त्र में मार्ग कहा, परन्तु मार्ग का मर्म खोला नहीं। ऐसा शब्द आता है एक पत्र में। यहाँ तो मर्म भी खोल दिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्ध जीव के अनुभव में लग जाये, गृहस्थी का क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थी का क्या होगा? आहाहा! गृहस्थी का होता है, वह होगा। क्या तुम्हारे से होता है कुछ? राग आनेवाला है, वह आयेगा, स्त्री, कुटुम्ब का भी होनेवाला ही होगा। भगवानजीभाई! क्या करना? कहते हैं। वह रुपये का और दुकान का क्या करना? ऐसा करना तो इनका क्या करना? यह तो होता है, वह होता है। होता है उस समय में (जैसी) जिसकी योग्यता है उस प्रमाण से जड़-चैतन्य की पर्याय होनेवाली होती है... होती है... होती है। क्या आत्मा से होती है? आत्मा गृहस्थाश्रम का काम, कुटुम्ब का काम कर सकता है? तीन काल में नहीं। स्वतन्त्र पदार्थ है। उसकी पर्याय उससे होती है। क्या तुम रक्षक हो? समझ में आया? पति का, पत्नी का, माता का, कुटुम्ब का कैसे रक्षण करे?

सुनो तो सही भगवान! वह तो बननेवाला बने। यहाँ तो राग आनेवाला हो तो आये, उस पर लक्ष्य नहीं (करना), ऐसा कहते हैं। दूसरे की तो बात कहाँ रही? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, दूसरे को समझाने का विकल्प भी यहाँ है ही नहीं। यह भी तेरे काम का नहीं। दूसरा तो उसकी पर्याय में समझने (की योग्यता) हो तो समझेगा, उसमें तुझे क्या है? समझ में आया? और विकल्प आया तो तुझे क्या लाभ हुआ उससे? आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप अनाकुल आनन्द प्रभु है। तेरा स्वरूप ही ऐसा है। उस ओर का झुकाव करके स्वभाव को प्रत्यक्ष करना। वह कहे, प्रत्यक्ष? यहाँ तो प्रत्यक्ष की आज्ञा है। वह कहे, नीचे (के गुणस्थान में) प्रत्यक्ष हो सकते नहीं। प्रत्यक्ष तो आगे बढ़कर होता है केवली को। यहाँ तो पहली आज्ञा कहते हैं कि प्रत्यक्ष हो सकते हैं, ऐसी हमारी आज्ञा है। आहाहा! वाणी के... वाणी के रहस्य तो देखो! समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब है न, प्रभु! ज्ञान का सूर्य है। उस ओर का झुकाव प्रत्यक्ष हो सके, ऐसी तो तेरी गुण-शक्ति है। परोक्ष रहे, ऐसा कोई तेरे में गुण नहीं। समझ में आया? भगवान ने कहा, तेरा ऐसा गुण है... आत्मा प्रत्यक्ष हो सके, ऐसा उसमें गुण है। तो गुण का गुण-गुण का कार्य क्या? आत्मा प्रत्यक्ष हो जाना वह। ज्ञान द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष हो जाये वेदन में, उसका नाम भगवान की आज्ञा प्रत्यक्ष अनुभव करने की है। आहाहा! ओहोहो! आधा घण्टा हो गया? समझ में आया? शोभालाल सेठ! यह सब समझना पड़ेगा, अब ७५ वर्ष में। कुछ अन्त नहीं। लड़के-वड़के कुछ दे, ऐसा नहीं। उल्टे माँगेंगे। लाओ पैसा। कमाना कहाँ से? नुकसान है वहाँ। राग आवे वहाँ नुकसान होता है। कमाई कहाँ से आयी? यहाँ तो लाभ की बात चलती है। बनिया लिखते हैं न? लाभ सवाया। लिखते हैं या नहीं? दरवाजे पर लिखते हैं या नहीं? लक्ष्य लाभ... लक्ष लाभ। ऊपर लिखते हैं। लाभ सवाया यहाँ है। क्या धूल में लाभ है बाहर में?

यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की वाणी में... आहाहा! अनन्त तीर्थंकर हुए, हैं और होंगे, सबकी वाणी में ऐसा आया कि भगवान! तुम तो शुद्ध ध्रुव हो न, प्रभु! आहाहा! उसका प्रत्यक्ष अनुभव करो ये वाणी में आया है भाई! कुन्दकुन्दाचार्यादि सन्तों ने—महामुनियों—दिगम्बर सन्तों ने भी यह बात कही है। दूसरी बात है नहीं। हो, बीच में

(राग) हो, उसका ज्ञान सहज में आ जाता है। उसे करना पड़ता है, यह बात नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो आवे इकट्ठा, परन्तु आवे उसमें क्या काम है? कंकड़ हो भले, ये तो निकाल देने की चीज़ है। आवे न। सौ कलशी अनाज हो, उसमें (साथ में) अमुक (घास) आवे, खड़ तो साथ में होता है। खड़ समझे? घास। ऐसे अपने शुद्धस्वरूप की दृष्टि, अनुभव करते हैं तो जरा राग होता है तो पुण्यप्रकृति बँध जाये स्वर्ग की। उसमें क्या है? वह हेय है। उपादेय तो यह एक ही है। बीच में तीर्थंकरगोत्र का बन्धभाव आ जाये, (वह) आदरणीय नहीं, हेय है। आहाहा!

उपादेय क्या कहा? उपादेय यह कहा (कि) जिस भाव से तीर्थंकर (गोत्र बँधे) वह उपादेय है? भगवान आत्मा शुद्ध, बस वह। इसमें लिखा है या नहीं? देखो! पढ़ो। तुम्हारे सामने आया है इसमें। भाई कहते थे परसों कि वे वाँचते नहीं होंगे? परन्तु वाँचे कहाँ से? इसकी दृष्टि में दिक्कत आवे तो (कहे), नहीं, यह अप्रमाण है... अप्रमाण है... जाओ। ऐसा कहते हैं। आर्ष वाक्यों में बहुत गूढ़ता है। परमात्मा, आचार्यों के कथन में बहुत गूढ़ता है। इस गूढ़ता का खेल खोल डाला है आध्यात्मिक पुरुषों ने। समझ में आया? बनारसीदास, टोडरमल आदि जो हुए, उन्होंने खोला। टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कहा है, हम घर की बात नहीं कहेंगे। कोई सामान्य बात होगी, उसका स्पष्टीकरण करेंगे, कोई गूढ़ बात होगी तो रहस्य खोल देंगे। बस, यह कहेंगे। हमारा (अपना) कुछ कथन है नहीं।

यहाँ आया देखो! **जिनवचसि रमन्ते...** तो उन्होंने बोल दिया कि '**जिनवचसि रमन्ते**' की व्याख्या क्या? पाठ तो ऐसा आया। आचार्य का वचन मानकर वे (कहते हैं), देखो! विकल्प में रमने को कहते हैं, दो नय में रमने से मिथ्यात्व (का नाश होगा)। पर किस रीति से दो में रमने से मिथ्यात्व का नाश होगा? वह रहस्य खोल दिया है। वचन में रमने से... (वचन तो) जड़ है। दो नय में कैसे रम सकते हैं? एक नय (का विषय) जो शुद्ध ध्रुव है, उसका अनुभव कर सकते हैं, वह एक ही यथार्थ है। समझ में आया? **प्रत्यक्षपने अनुभव करते हैं, उसका नाम रुचि-श्रद्धा-प्रतीति है।** हमें तो श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धा नहीं। वस्तु शुद्ध चैतन्य का अनुभव प्रत्यक्ष करके रुचि करना, उसका नाम रुचि-श्रद्धा-प्रतीति है। वस्तु तो देखे बिना श्रद्धा, रुचि, प्रतीति? वस्तु ख्याल में आये बिना किसकी

प्रतीति ? खरगोश के सींग की ? वह १७-१८ गाथा में आता है। समयसार १७-१८। जो वस्तु देखी नहीं, उसकी श्रद्धा करो। क्या श्रद्धा करे ? चीज़ ही ख्याल में आयी नहीं कि क्या चीज़ है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने रागरहित मति-श्रुतज्ञान द्वारा पृथक् (जाना कि) ये आत्मा, ऐसा अनुभव हुआ (तो) प्रतीति (हुई कि) यह आत्मा। समझ में आया ? ख्याल में, ज्ञान में ज्ञेय आये बिना प्रतीति किसकी करनी ? कहो, दुलीचन्दजी ! ऐसा मार्ग है। सुनते हैं। बेचारा... यह मार्ग... आहाहा ! परमेश्वर तीन काल, तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थंकर यह कहते हैं। और वे स्वयं कहाँ कहते हैं ? उस प्रकार के विकल्प से (प्रकृति) बँध गयी तो वाणी ऐसी ही निकलती है। दूसरी निकले कहाँ से ? समझ में आया ? कहा न प्रवचनसार में ? '**जो जाणदि अरहंतं**' भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, वह अपने स्वरूप के सन्मुख होकर जाने बिना रहे नहीं और उसको मोह का नाश हुए बिना रहे नहीं।

ऐसा भगवान ने कहा... ऐसा किया, ऐसी वाणी में कहा। भगवान ने ऐसा अन्दर अनुभव किया, ऐसी वाणी से कहा, ऐसा पाठ है। जैसा अनुभव किया, ऐसी वाणी (निकली)। वाणी कहकर-उपदेश देकर मोक्ष पधार गये। निर्वाण पधार गये परमात्मा। समझ में आया ? आहाहा ! चारों ओर देखो तो एक... मुनियों की वाणी में कोई पडखामां कयांय खोदुं-खोदुं निकले नहीं कि विरोध नहीं, ऐसी चीज़ है। समझ में आया ? ऐसी चीज़ सम्प्रदाय में भी है नहीं, तो दूसरे में कहा आये ? आहा ! जेठालालभाई ! कितने वर्ष बिताये उसमें ? सुनी थी यह बात ?

मुमुक्षु : कुएं में न हो तो हौज में आये कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही नहीं वहाँ। बात ही व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... भगवान ! हम तुम्हारे भगत हैं, हमारा कल्याण हो जायेगा। धूल में भी नहीं होगा। भगवान मना करते हैं, हमारे ओर का लक्ष्य करके नहीं होगा। तेरा अनुभव कर तो तेरा कल्याण होगा, ऐसा भगवान कहते हैं। हमारी ओर देखकर तो तुम्हें विकल्प आयेगा... हमारी ओर देखकर तो तुम्हें विकल्प आयेगा। त्रिलोकनाथ परमात्मा विराजते हैं समवसरण में।

मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल। अनन्त बार पूजा की समवसरण में जीव ने। क्या हुआ? शुभभाव हुआ। मिथ्यात्व तो टला नहीं। मिथ्यात्व गये बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आता।

आज सवेरे में कहा था। एक पत्र है श्रीमद् का। वह 'सन्देह' का एक पत्र है न? तुम जो कुछ मुनि को समझाना चाहते हो, उन्हें तुम ऐसा कहना कि इतना-इतना हम करते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, ब्रह्मचर्य, शास्त्र पठन, परन्तु सन्देह नहीं छोड़ते कि मैं अल्प संसारी हूँ कि अनन्त संसारी हूँ, मैं अभव्य या भव्य हूँ।—ऐसा सन्देह नहीं टलता तो सन्देह टालने की रीति ही दूसरी होगी। पत्र लिखा है। ऐसी शैली है श्रीमद् की। समझ में आया? कोई तुमको समझावे कि तुम जो साधु को समझाना चाहते हो, उसके पास यह बात करना। ऐसी दूसरी करने की अपेक्षा। इतना-इतना करते हैं दया, दान, व्रत, भक्ति, महाव्रत आदि जो कुछ क्रिया, ब्रह्मचर्य, यात्रा कितना करते हो, यह उपदेश देते हो, ऐसा करते हो, अपवास परन्तु आत्मा मैं अल्प संसारी हूँ—अल्प काल में मोक्ष में जानेवाला हूँ, अनन्त संसारी नहीं, मैं भव्य हूँ, अभव्य नहीं—ऐसा सन्देह टले बिना यह क्रिया का परिणाम क्या आया? समझ में आया?

मुमुक्षु : अर्थात् उल्टा रास्ता छोड़कर...

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरा रास्ता सन्देह टालने का दूसरा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कि इतनी क्रिया करे, इतना-इतना, परन्तु अन्दर सन्देह टले नहीं। यह भाषा ही ली है उन्होंने। यह कोई सन्देह टालने का उपाय नहीं। समझ में आया? अपने को तो अभी निर्णय नहीं कि मैं अभव्य या भव्य हूँ (और मानता है कि) मैं धर्म करता हूँ। कहाँ से करता हूँ? अभव्य को अनन्त संसार में कभी मोक्ष होनेवाला नहीं। ऐसा तो तुझे अभी सन्देह है और तू कहे कि हम भगवान की आज्ञा में क्रिया करते हैं, धर्म करते हैं। कहाँ से आया धर्म तेरे पास? भाई समझे?

वह कहते हैं, सन्देह क्या चीज़ है? लाख क्रियाकाण्ड हो, परन्तु सन्देह अर्थात् मिथ्यात्व को टालना। मिथ्यात्व कैसे टले? शुद्ध स्वभाव का अनुभव करने से मिथ्यात्व का नाश हो जाता है। तब निःसन्देह होकर सन्देह टलता है। दूसरा सन्देह टालने का कोई

दूसरा उपाय है नहीं। समझ में आया ? ऐसी शैली श्रीमद् की थी कि सामने अन्दर में चोट मारे। अरे ! इतने-इतना पचास वर्ष से, साठ-साठ वर्ष से पंच महाव्रत पालते हैं, ब्रह्मचर्य पालते हैं, किसी का संग नहीं करते, राग मन्द करते हैं, परन्तु अन्दर में ऐसा हुआ है तुमको ? कि मैं अल्प काल में मुक्त होऊँगा, ऐसा आया है निःसन्देह(पना) ? सन्देह तो है कि मेरा क्या होगा ? तो तुम्हारी इतनी क्रिया का फल क्या आया ? सेठ ! कहते थे न कि शुं वले थशे ? ऐसा कहा न परसों। हमारा क्या होगा ? यह तो और गुजराती भाषा है। समझ में आया ?

देखो न ! कैसी भाषा की है ! धन्नालालजी ! साधु को कहो कि सन्देह टले बिना इस क्रिया में क्या सार है ? क्रिया करते ५०-५० वर्ष हो गये, ६०-६० वर्ष हो गये, बालब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचर्य पाला। समझ में आया ? तो तुम्हें सन्देह—अनन्तानुबन्धी का नाश है या नहीं ? खबर नहीं। तुम्हारे अनन्त भव हैं या थोड़े भव हैं ? यह भगवान जाने। भगवान जाने ? अभी अनन्त भव हैं, ऐसा तो तुझे सन्देह है। तो तूने धर्म किया क्या ? समझ में आया ? धर्म करनेवाले को तो अनन्त भव होते नहीं। धर्म किया ही नहीं तूने। तू कुछ दूसरा करता है और मानता है धर्म। ऐसा समझ। करता है अधर्म और मानता है धर्म। समझ में आता है या नहीं फूलचन्दजी ? सूक्ष्म बात है, हों, बहुत। आहाहा !

भाई ! तूने बहुत किया हो। ऐसा बहुत किया है, हों। व्रत पालते हैं, दया पालते हैं, गरम पानी पीते हैं, स्त्री का संग नहीं करते, ब्रह्मचर्य पालना, नौ कोटि से पालना, भाई ! संथारा भी हमें नौ कोटि से लेना है। परन्तु यह करने में तेरा सन्देह टला या नहीं ? मेरे भव एक-दो हैं अथवा अनन्त नहीं, ऐसा हुआ है या नहीं ? ऐसे हुए बिना क्या तेरी क्रिया का फल आया ? समझ में आया ? परन्तु पहली ये चीज़ है। इस चीज़ के बिना (निःशंकता) कहाँ से आती है ? सन्देह नहीं... सन्देह नहीं... मैं शुद्ध आत्मा आनन्द हूँ, (फिर) भव कैसे ? भव कहाँ हैं ? स्वभाव में भव नहीं, भव का कारण हमारे स्वभाव में नहीं। ऐसा स्वभाव का अनुभव है तो भव कैसे ? भव हैं कहाँ ? समझ में आया ? ऐसी दृष्टि हुए बिना उसका सन्देह टलता नहीं और भगवान की आज्ञा वह मानता नहीं।

.... कौन कहता है ? तुम कहो न ? इसने वहाँ कोलकाता में बहुत मुँडाया है।

सेक्रेटरी... जैन अर्थात् क्या ? अब उसमें लो। जैन अर्थात् ? जिसने भव का नाश किया है, उसका नाम जैन। जिसने सन्देह जीता है, नि:सन्देह आत्मा की दृष्टि की है, उसका नाम जैन। वह तो जैन हुआ। अभी तो अन्दर में सन्देह है। जैन अर्थात् पहले मिथ्यात्व को जीतना और सम्यग्दर्शन प्राप्त करना। तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति स्वसन्मुख होकर होती है। समझ में आया ? उसके सिवा मिथ्यात्व का नाश होता नहीं और मिथ्यात्व का नाश हुए बिना जैन आया कहाँ से ? समझ में आया ? जैन अर्थात् जीतनेवाला। किसको ? मिथ्यात्व को जीता। कैसे ? स्वभाव सन्मुख की दृष्टि करके। उसके बिना जैन कहाँ से आया ? जैन है ही नहीं; जैनाभास है। समझ में आया ? सेठ को... आया थोड़ा। जैन तो हैं या नहीं ये सब ? ...भाई !

मुमुक्षु : 'जीती इन्द्रियो ज्ञानस्वभावे अधिक जाने आत्म को....'

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक अर्थात् वह वस्तु ही भिन्न है। 'जीती' कहा वह तो अंश में वहाँ से लक्ष्य छोड़ दिया। पर से लक्ष्य छोड़ दिया और स्वरूप की दृष्टि हुई, उसका नाम सम्यग्दृष्टि और उसका नाम धर्मी कहने में आता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : भास का क्या अर्थ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भासन... यह भाव हुआ न ? भासन शब्द आया न ? आज नहीं आया। अभी नहीं आया शब्द। समझ में आया ?

अपने शुद्धस्वरूप का... महा सिद्धान्त यह तीन काल—तीन लोक में जिनदर्शन का सार (और) वीतराग की वाणी में यह आया है। बारह अंग में (या) ग्यारह अंग नौ पूर्व में अध्यात्म का रहस्य बताने में यह बात आयी है। समझ में आया ? और पहले में पहली वह बात है। पहले कोई दूसरी करे तो पहला यह—ऐसा होता है नहीं। ऐसा लिया ही नहीं। उपादेय वस्तु शुद्ध... सीधी बात। समझ में आया ? कहो, जुगराजजी ! यह सब स्थानकवासी थे। यह मन्दिरमार्गी। यह वस्तु ऐसी है। वास्तव में स्थानकवासी का अर्थ वह है कि स्थान अर्थात् अपने स्वरूप में वास करना, वह स्थानकवासी है। वास्तव में तो वह अन्दर में है। उसकी तो खबर-भान नहीं। समझ में आया ? यहाँ वह कहते हैं। ओहोहो ! कितनी बात भर दी है। राजमलजी ने टीका की है न ! समझ में आया ?

प्रत्यक्ष शुद्ध वस्तु... **वस्तु का प्रत्यक्षपने अनुभव करते हैं।** अरे भगवान! बहुत महँगी चीज़ परन्तु यह तो। अरे भगवान! ना नहीं कर। तेरी चीज़ ऐसी है, ऐसा कहते हैं। हाँ तो कर। प्रत्यक्ष होने के योग्य तुम हो, परोक्ष रहने के योग्य तुम हो ही नहीं। तेरे स्वभाव में ऐसा नहीं। तू द्रव्य में ऐसा नहीं। तेरे स्वभाव में ऐसा नहीं। स्वभाव में ऐसा नहीं। पर्याय में ऐसा प्रत्यक्षपना आ जाये, तब उसका अनुभव हुआ ऐसा कहने में आता है। जैसे उसमें प्रकाश नाम का एक गुण है... प्रकाश का अर्थ प्रत्यक्ष होना। प्रकाशगुण का धरनेवाला द्रव्य उसका अनुभव करने से वह प्रकाश नाम का गुण पर्याय में व्याप गया। प्रत्यक्षपना हो गया। प्रत्यक्षपना हो गया तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों प्रत्यक्ष हो गये। समझ में आया? ऐसी चीज़ भगवान आत्मा का अनुभव वीतराग की आज्ञा में वह आया है। आहाहा!

और क्या कहे? यह निश्चय आत्मा को (उपादेय) करे तो एकान्त हो जाये। व्यवहार की अपेक्षा बिना का नय मिथ्या है। निरपेक्षा नया मिथ्या... ऐई! अरे भगवान! सुन तो सही, भाई! इस पर्याय को अन्तर में झुकाये तो खबर है कि पर्याय है और दूसरी भी पर्याय अनेक हैं। समझे? ये अनेक हैं, ऐसे माने बिना पर्याय अन्तर में झुकी कहाँ से? तो आगे ख्याल तो रहे। पर्याय का ख्याल है, परन्तु आदरणीय नहीं; इसलिए आश्रय वहाँ लिया है। आहाहा! अनुभव करना, वह क्या चीज़ है? वह पर्याय है या नहीं? अनुभव पर्याय में होता है, परन्तु द्रव्य का अनुभव है। यह वस्तु ध्रुव चैतन्य प्रभु उसका प्रत्यक्षपना करो। प्रत्यक्षपना तो पर्याय हुई। समझ में आया? प्रत्यक्ष आ गया पर्याय का ज्ञान। नहीं ऐसा नहीं। परन्तु ध्रुव की दृष्टि की और प्रत्यक्ष अनुभव हुआ तो द्रव्य का ज्ञान हुआ, पर्याय का ज्ञान और (जितना) राग बाकी रहा, उसका भी ज्ञान आ गया। समझ में आया?

वीतराग के बारह अंग का सार में सार तत्त्व यह कहने में आया है। इसके सिवा दूसरी रीति कोई कहे तो वीतराग की आज्ञा ऐसी है नहीं। समझ में आया? रुचि-प्रतीति इसका ऐसा अर्थ नहीं ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसका नाम रुचि-श्रद्धा-प्रतीति है। भगवान आत्मा ज्ञान द्वारा वस्तु को प्रत्यक्ष करके अनुभव करना, उसका नाम रुचि-श्रद्धा-प्रतीति कहने में आता है। ऐसे हमारे श्रद्धा है। किसकी श्रद्धा? खरगोश के सींग—खरगोश के सींग है ही नहीं, तो देखे बिना किसकी श्रद्धा करना? समझ में आया? ऐसे भगवान

आत्मा... हाँ तो कर पहले कि ऐसी चीज़ है, दूसरा मार्ग है नहीं। उससे दूसरी कोई कहे तो सुने नहीं, रुचे नहीं। नहीं, ...मार्ग है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है-वचन पुद्गल है... शब्द तो ऐसा आया। समझ में आया? **उसकी रुचि करने पर स्वरूप की प्राप्ति नहीं।** पाठ में तो ऐसा आया कि '**जिनवचसि रमन्ते**' वचन तो जड़ है। जड़ में रमना है? और उस पर लक्ष्य होता है, वह तो राग है। आहाहा! **इसलिए वचन के द्वारा कही जाती है...** ऐसा। उस कारण से... वचन पुद्गल है, उसकी रुचि करने से स्वरूप की—अन्तर की प्राप्ति (नहीं होती)। वहाँ श्रद्धा करने से कहाँ से आती है? क्या कहते हैं? **इसलिए वचन के द्वारा कही जाती है जो कोई उपादेय वस्तु, उसका अनुभव करने पर फलप्राप्ति है।** आहाहा! जैनदर्शन, वह वस्तुदर्शन है, वह कोई सम्प्रदाय नहीं। समझ में आया? उसमें दिगम्बरदर्शन—जैनदर्शन वह वस्तुदर्शन है। कोई सम्प्रदाय नहीं है। वस्तुस्थिति ऐसी है। ऐसी प्ररूपणा की प्रणाली तो चली आती थी। बीच में बहुत गड़बड़ हो गयी। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तरस्वरूप शुद्ध अनुभव करना तो आत्मा को फल की प्राप्ति होती है। नहीं तो आत्मा के अनुभव की प्राप्ति वचन की श्रद्धा से नहीं आती।

कैसा है जिनवचन? अब कैसा है जिनवचन? '**उभयनयविरोधध्वंसिनि**' **दो पक्षपात परस्पर बैरभाव।** दो नय का परस्पर विरोध है। निश्चय कहता है कि अभेद है, व्यवहार कहता है कि भेद है, निश्चय कहता है कि शुद्ध है, व्यवहार कहता है कि अशुद्ध है, निश्चय कहता है कि एकरूप है, व्यवहार कहता है कि अनेकरूप है। दोनों में बैर है। भाषा देखो! विरोध का अर्थ परस्पर बैर—दो का पक्षपात। **विवरण—एक सत्त्व को द्रव्यार्थिक द्रव्यरूप...** सत्त्व अर्थात् आत्मा, उसको द्रव्यार्थिकनय द्रव्यरूप कहता है। एक ही वस्तु को। आत्मा या कोई भी वस्तु। एक ही वस्तु को द्रव्यार्थिकनय द्रव्यरूप कहता है। द्रव्यरूप समझे? वस्तु।

उसी सत्त्व को... उसी सत्त्व को पर्यायार्थिकनय पर्यायरूप कहता है... वही सत्त्व को पर्यायनय पर्यायरूप कहता है। द्रव्यनय द्रव्यरूप कहता है, पर्यायनय पर्यायरूप कहता है। दोनों की वस्तु ही भिन्न हो गयी। **परस्पर विरोध है...** नय में परस्पर विरोध है।

समझ में आया ? **इसलिए परस्पर विरोध है, उसका मेटनशील है।** भगवान की वाणी तो उस विरोध की मेटनशील है। निश्चय-व्यवहार दोनों विरुद्ध है, उसके (विरोध की) मेटन स्वभाववाली वाणी है। तो वाणी में वीतरागता ऐसी आयी कि दोनों हैं, परन्तु स्वभाव का आश्रय कर तो विरोध मिट जायेगा। समझ में आया ? है, ऐसा रह जायेगा। आश्रय करनेयोग्य तो ध्रुव है। ऐसे दो नय की विरुद्धता है। वीतरागमार्ग में भगवान ने कहा कि शुद्ध (वस्तु) उपादेय है। उसमें दोनों के विरोध का मेटनशील स्वभाव हो गया। विरोध का नाश हो गया। भगवान आत्मा द्रव्यरूप मैं हूँ। पर्याय अंशरूप है, जाननेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। बस, दोनों नय के विरोध को नाश करनेवाली वीतराग की वाणी है। समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है—दोनों नय विकल्प हैं... पीछे अब कहते हैं जरा कि निश्चय से मैं द्रव्यरूप हूँ, वह भी यहाँ विकल्परूप लिया। समझे न ? और मैं पर्याय हूँ, वह भी एक विकल्प है। ऐसा लेना है न यहाँ। दो का पीछे निर्विकल्प लेना है न ? स्वभाव सन्मुख जाने के लिये। दो का ज्ञान तो किया विकल्प द्वारा। समझ में आया ? वस्तु ऐसी है, पर्याय ऐसी है, द्रव्य ऐसा है, पर्याय ऐसी है—दोनों का विकल्प है। समझ में आया ? **दोनों नय विकल्प हैं, शुद्ध जीववस्तु का अनुभव निर्विकल्प है।** देखो ! भले ज्ञान करने में दो नय हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ज्ञान करने में द्रव्यार्थिक द्रव्यरूप त्रिकाल (और) पर्यायार्थिक समय की अवस्था हो, परन्तु दो बात—भेद लक्ष्य में रहना, वह वस्तु का अनुभव नहीं। वस्तु का निर्विकल्प अनुभव है। (स्व)-पर का—दो का लक्ष्य छोड़कर निर्विकल्प शुद्धजीव का अनुभव करे, वही निर्विकल्प अनुभव है। वही भगवान की वाणी में आया है। आहाहा !

गजब बात ! परन्तु यह सब जानपना और इतनी-इतनी पण्डिताई, यह सब कहाँ रहे ? कितने मन्दिर, कितने लाखों खर्च करके, कितनी (रथयात्रा)... दो-दो बार कक्षा (शिविर) करना। करते हैं सब, परन्तु वापस उत्थापते हैं। ऐसा कहते हैं। अरे भगवान ! ये होता है भाई ! कौन करे ? किसका करे ? यहाँ तो कहते हैं, दो नय का ज्ञान करके भी अन्तर अनुभव निर्विकल्प होना, दो नय का भेद का लक्ष्य छोड़ देना—ऐसी भगवान की

आज्ञा है। आहाहा! यह विकल्प यहाँ लेना है। ज्ञान में अकेला यह द्रव्य है... द्रव्य है... इस अपेक्षा से लिया है। शुद्धद्रव्य का निश्चय, यह तो अकेला निर्विकल्प है। परन्तु यहाँ दो नय का मेटनशील है, ऐसा बताना है न? उसका ज्ञान कराया कि यह है, यह भी है। ज्ञान करके स्वभाव सन्मुख हो जाना। उसका तुझे ज्ञान हुआ तो पर्याय का यथार्थ ज्ञान भी तुझे होगा।

श्रीमद् में आया है। एक वाक्य था न। सम्यक् एकान्त में ही अनेकान्त का ज्ञान होता है। एक घण्टे व्याख्यान हुआ था ववाणिया में। सम्यक् एकान्त हुआ तो अनेकान्त का ज्ञान होता है। द्रव्यस्वरूप का एकान्त ज्ञान होता है सम्यक्, तब पर्याय और राग क्या (ऐसा) उसका अनेकान्त का ज्ञान होता है। अकेला अनेकान्त... अनेकान्त करे... सम्यक् एकान्त बिना अनेकान्त का ज्ञान होता नहीं। उन्होंने ऐसे छोटे-छोटे बोल में बहुत कहा है। छोटी उम्र (में देह छूट गया) और ऐसी बात स्पष्ट (होनी) रह गयी। गड़बड़ रह गयी बाहर में। उनका तो काम हो गया, हों। जन्म-मरण का अन्त (करके) एक-दो भव में मुक्ति (लेंगे)। समझ में आया? आहाहा! उसमें कहीं ऐसा नहीं कि इसमें आया है न ऐसा है...

यहाँ कहते हैं, भगवान (आत्मा) का अनुभव तो निर्विकल्प है। इसलिए विकल्प छोड़ देना। समझ में आया? उस अपेक्षा से **जीववस्तु का अनुभव होने पर दोनों नय झूठे हैं।** अर्थात् दो अपेक्षा का ज्ञान किया, परन्तु स्वभाव का अनुभव करने पर दोनों का विकल्प झूठ हो गया। दोनों की अपेक्षा का ज्ञान किया था, वह झूठ हो गया। स्वभाव का अनुभव करने से। द्रव्य ऐसा है, पर्याय ऐसी है—ऐसा जो ज्ञान किया था, वह विकल्प भी झूठा हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प तो आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, इसलिए निर्णय करो। आया करे, तो क्या अपने से आते हैं? उल्टा पुरुषार्थ करने से आते हैं। सेठ! रस लगा है पैसा में और कमाने में। होता है, सबको होता है। यह तो एक सेठ का दृष्टान्त है। लड़कों को यह करो, मैं बड़ा होऊँ कीर्तिवाला धूल में दो-पाँच लाख इकट्ठे किये, दस लाख इकट्ठे किये। ऐई! इनका लड़का है। ढाई करोड़। मनसुख। मलूकचन्दभाई उसका पिता है। उनका लड़का है (उसके

पास) ढाई करोड़। क्या हुआ? धूल हुआ? हैरान है। आते-आते लंघन करते थे मलूकचन्दभाई। आयेगा, साथ आयेगा। अकेला आया। कोई साथ नहीं आया। लंघन नहीं (समझते)? लंघन अर्थात् रहा देखते थे, ऐसा। ऐ मलूकचन्दभाई! वहाँ थे न उनके पुत्र के पास। वह फुर्सत में हो नहीं। ढाई करोड़ रुपये। यह जाने (कि) मेरे साथ आयेगा। मेरे साथ आयेगा मुम्बई। फुर्सत में कहाँ? धूल में रुक गये। अकेला आना पड़ा वहाँ से। देखो! यहाँ आत्मा में अकेला अनुभव करने पर सब रह जाता है, कहते हैं। अपने साथ में कोई आता नहीं। ऐसी भगवान की आज्ञा है। लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ४, गुरुवार, दिनांक २४-८-१९६७
कलश - ४, प्रवचन नं. ८

समयसार (कलश), जीव अधिकार चलता है। जीव कैसा है और कैसे जीव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन हो—वह बात चलती है। जीव अधिकार है न? कैसे जीव की श्रद्धा करने से सम्यग्दर्शन होता है, वह बात चलती है। अनन्त काल में कभी उसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया नहीं। दूसरी बात बहुत की, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि किया, पुण्यबन्ध हुआ, (परन्तु) उससे जन्म-मरण का अन्त आया नहीं। जन्म-मरण के अन्त आये बिना क्या उसने किया? समझ में आया? कल कहा था न श्रीमद् का वाक्य नहीं? इतना-इतना अपने व्रत पाले, दया पाले, भक्ति, दान, पूजा, यात्रा, (फिर भी) तुम्हारा सन्देह टला है तुमको? सन्देह का अर्थ किया है विचार। समझ में आया? पोपटभाई! यह प्रश्न किया था। जो चीज़ करनी (चाहिए), वह की है? यह किया, ऐसा किया, ऐसा किया, परन्तु सन्देह तो टाला नहीं। बात तो, सन्देह अर्थात् मिथ्यात्व का टालना, वही मूल चीज़ है। उसके बिना जितना करते हैं, वह सब फोगट है।

तो यहाँ कहा, '**जिनवचसि रमन्ते**' जिनवचन में रमनेवाला मोक्ष को प्राप्त होता है और जिनवचन में रमनेवाला सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है। तो जिनवचन में क्या कहा है? ये जीव अधिकार है न? जीव। क्या अधिकार है ये? जीव। जिनवचन में शुद्ध जीव उपादेय आया, वीतराग की वाणी में। समझ में आया? शुद्ध जीव... **उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु... 'जिनवचसि'** शब्द है, तो वचन में-वाणी में रमना तो है नहीं और वचन की ओर का विकल्प जो है, वह भी राग है। पर जिनवचन में जो मोक्ष का मार्ग कहा, उसमें पहले में पहला जो सम्यग्दर्शन... जीव अधिकार में—भगवान की वाणी में ऐसा आया कि भगवान! तुम शुद्ध जीवस्वरूप हो न। अकेला ज्ञायकभाव चैतन्य उस ओर तेरी दृष्टि कर, ऐसा पूर्ण शुद्धस्वभाव को उपादेय स्वीकार, तुझे सम्यग्दर्शन (अर्थात्) वास्तविक जीव है, ऐसा (विश्वास) आयेगा। तब तुझे मिथ्यात्व का नाश होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं। समझ में आया?

दूसरा शब्द लिया। **कैसा है जिनवचन?** वहाँ आया। फिर—फिर से। नीचे। यह

तो कल आ गया। **कैसा है जिनवचन ?** है ? कहाँ है ? मलूकचन्दभाई ! वहाँ नहीं। गुजराती...

मुमुक्षु : गुजराती में यहाँ है, हिन्दी में...

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसा है जिनवचन ? पहले तो जिनवचन आ गया। भाई ! सेठियाओं को सबको पकड़ना तो सही न। ध्यान रखे तो... इसमें आना चाहिए या नहीं ? '**जिनवचसि रमन्ते**' पहले जिनवचन तो आ गया। अब दूसरी रीति से जिनवचन का '**स्यात्पदाङ्के**' का अर्थ करते हैं। समझ में आया ? वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर की वाणी में जिनवचन '**स्यात्पदाङ्के**' आया। **स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्त—जिसका स्वरूप पीछे कहा गया है...** पहले आ गया है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। पहले आ गया है न ? वस्तु एक समय में पूर्ण द्रव्य है—वस्तु है, ऐसा बतानेवाला निश्चयनय—द्रव्यार्थिकनय है और उसकी वर्तमान अवस्था-दशा में राग बतानेवाला, वह पर्यायार्थिकनय-व्यवहारनय है। समझ में आया ?

यह तो वही का वही आया। देखो, भाई ! उसमें पहले कहा था न ? द्रव्यार्थिकनय में वह आया। भगवान ने द्रव्यार्थिकनय में सामान्य छह पदार्थ भले ही कहे, परन्तु यहाँ आत्मा में द्रव्यार्थिक अर्थात् ज्ञायक शुद्ध ध्रुव, उस ओर दृष्टि करना, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। व्यवहार, वह अभूतार्थ है। '**भूदत्थो देसिदा सुद्धणओ...**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ११वीं गाथा में कहा। एक समय की पर्याय है, उसका ज्ञान कराया। राग है, (उसका) ज्ञान कराया, भेद का ज्ञान कराया कि पर्याय है, राग है, परन्तु वह आदरणीय नहीं। एक समय की पर्याय आदरणीय नहीं। क्योंकि पर्याय में से नयी धर्म की पर्याय प्रगट नहीं होती। तो द्रव्यार्थिकनय... एक समय में भगवान आत्मा... सूक्ष्म बात है, बहुत अलौकिक बात है। इस श्लोक में ऐसी बात डाली है ! भगवान आत्मा... द्रव्यार्थिकनय बताया, '**स्यात्पदाङ्के**' पर्याय से बताया। समझ में आया ?

वही है चिह्न जिसका, ऐसा है। पहले कहा था द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक—यह जिसका चिह्न है—जिनवचन का। **भावार्थ इस प्रकार है—जो कुछ वस्तुमात्र है, वह निर्भेद है।** वहाँ द्रव्यार्थिक कहा, यहाँ निर्भेद कह दिया, भाई ! निर्भेद है। **वह वस्तुमात्र**

वचन के द्वारा कहने पर जो कुछ वचन बोला जाता है, वही पक्षरूप है। भेदरूप है, ऐसा कहते हैं। वस्तु तो अभेद चिदानन्द अखण्ड अभेद है, परन्तु वचन से जो कहने में आता है, वह सब भेद से कहने में आता है। भेद से कहने में आता है। परन्तु भेद से समझाना है अभेद। परन्तु भेद का पक्ष और अभेद का पक्ष है, वह विकल्प है। समझ में आया? देखो! **जो कुछ वचन बोला जाता है, वही पक्षरूप है। कैसे हैं आसन्न भव्य जीव?** अपना निर्भेदस्वरूप है.... जो शुद्ध जीव उपादेय कहा था, द्रव्यार्थिक में द्रव्य कहा था, यहाँ तो निर्भेद कहा है। समझ में आया? उसमें दृष्टि लगाने से—अन्तर्दृष्टि लगाने से.... क्या होता है?

कैसे हैं आसन्न भव्य जीव? कहाँ गये सोमचन्दभाई? **आसन्न भव्य जीव...** यह तुम्हारे शब्द थे न कल। आसन्नभव्य (अर्थात्) जिसकी मुक्ति समीप में है, जिसको संसार का किनारा आ गया है, उसको यह बता रुचेगी। सेठ! यह समझने की चीज़ है। बाहर से नहीं मिलती। कैद में डाला था वहाँ। हिम्मतनगर आने नहीं दिया। समझ में आया? वह तो उस समय ऐसा (बननेवाला था)। बने, उसमें कोई... भगवान आत्मा... भाई! प्रभु! तेरी चीज़ क्या है और कैसी चीज़ पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा रुचिपूर्वक कभी सुना ही नहीं। समझ में आया? मूल मार्ग... 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे।' श्रीमद् में आता है। 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे, करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग सुन लो जिनवर का रे। करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख...' अपना शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा अखण्ड एकरूप है, उस ओर वृत्ति करके मार्ग सुनो वीतराग का कि क्या है। ऐसे पंचम काल में... सिद्ध को नमस्कार करके, सिद्ध को स्थापन करके, मैं समयसार कहता हूँ। यह भी ऐसे कहा। यह वाक्य की शैली है। समझ में आया?

कहते हैं, स्याद्वाद अनेकान्त जिसका स्वरूप है... जो कुछ वस्तु है, वह द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक से कहने में आती है। परन्तु जो कुछ कहने में आता है, वह वचनमात्र है। निर्भेद कहे तो भी विकल्प उठते हैं। समझ में आया? व्यवहार कहे तो भी विकल्प उठते हैं। तो निर्भेद निर्विकल्प वस्तु है, उसमें दृष्टि देने से, अनुभव करने से **वान्तमोहाः... स्वयं वान्तमोहाः...** मिथ्यात्व का वमन हो जाता है। अपना शुद्धस्वभाव अभेद-निर्भेद द्रव्य शुद्ध

ऐसी अन्तर्दृष्टि (करने से) शुद्ध आत्मा को उपादेय अंगीकार करनेयोग्य हो जाता है, तब **स्वयं वान्तमोहाः...** मिथ्यात्व का सहज वमन हो जाता है।

देखो! वमन कैसे लिया है? मनुष्य जो वमन करे, उसे वापस ग्रहण नहीं करता। भाई! कितना जोर दिया है! इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि ने मिथ्यात्व का वमन किया, फिर नहीं लेगा, ऐसा। ऐसी दृष्टि ली है। समझ में आया? वमन तो कुत्ता खाता है। मनुष्य खायेगा? एकबार खाया, छोड़ दिया, फिर खाये नहीं। वमन किया। '**वान्तमोहाः**' आहाहा! देखो तो अमृतचन्द्राचार्य की पद्धति! कुन्दकुन्दाचार्य की भी यही है। बहुत जोर... जोर भी कितना! अप्रतिहतभाव से केवलज्ञान लेकर ही रहेंगे। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध ध्रुव अभेद-निर्भेद वस्तु है, उस पर दृष्टि करना और वही चीज़ शुद्ध है, उसे उपादेय मानना, पहले श्रद्धा में उसका आश्रय करना, श्रद्धा में वह स्वीकार करना, पश्चात् स्वभाव सन्मुख होकर अनुभव करना। समझ में आया? पहले श्रद्धा में वह लेना कि लाख क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत हो परन्तु उससे समकित नहीं होता। समकित मिथ्यादर्शन के नाश से जो होता है, वह स्वरूप के आश्रय से होता है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि में यह मुख्य बात आयी है। अनन्त परमेश्वर त्रिलोकनाथ... यह बात अभी गौण हो गयी। बाह्य में ऐसा त्याग किया, ऐसा व्रत लिया, ऐसी भक्ति की। मणिभाई! यह बात कहते हैं, भाई! तेरा जन्म-मरण का अन्त न आवे, उस चीज़ (की कीमत) क्या? जिसमें जन्म-मरण... निगोद के अनन्त भव... समझ में आया? चींटी, कौआ, कुंजरा, ऐसे अनन्त भव, पशु के अनन्त भव... भाई! जिसमें भव का अन्त न आवे, उस चीज़ (की कीमत) क्या? चाहे तो पुण्य बँध जाये और स्वर्गादि मिले, फिर चार गति में रुलेगा। समझ में आया? भव का नाश तो, सम्यग्दर्शन हुए बिना और मिथ्यादर्शन का नाश किये बिना कभी भव का नाश नहीं होता। समझ में आया?

कहते हैं, **कैसे हैं आसन्न भव्य जीव?** आहा! '**स्वयं वान्तमोहाः**' **सहजपने वमा है मिथ्यात्व—विपरीतपना....** जो ऐसी विपरीत दृष्टि... मिथ्यात्व का अर्थ किया न? विपरीत अभिनिवेश का त्याग, वह सम्यग्दर्शन—ऐसा कहा न टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में? (मिथ्यात्व का अर्थ) विपरीतपना लिया। वस्तुस्वरूप एक समय में जैसा है, उससे

विपरीतपना है, उसका नाश कर, अविपरीतपना—सम्यग्दर्शन जिसने प्रगट किया है। आहाहा! मूल मुद्दे की रकम है। ऐसे प्राणी भव्यजीव हैं... आहाहा! समझ में आया?

अपना पूर्ण स्वरूप, उसके सन्मुख कभी गया ही नहीं, कभी (सन्मुख) हुआ ही नहीं और राग, भेद, पर्याय से विमुख कभी हुआ ही नहीं। समझ में आया? रामचन्द्रजी! ... ऐसी बात भगवान की है, भाई! शुभभाव दया, दान हो... आये थे यात्रा के लिये, परन्तु रुक गये। प्रभु! तेरी चीज़ ऐसी है, उसे बराबर लक्ष्य में लेना चाहिए। दूसरा जानपना कम हो, विशेष हो, राग मन्द की क्रिया हो, न हो—उसके साथ इसे सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? राग की मन्दता (या) विशेष अशुभभाव भी हो ज्ञानी को तो। ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा दिखे, अशुभभाव हो, परन्तु दृष्टि स्वभाव सन्मुख है और राग से, पर्याय से, भेद से विमुख है। वह परमात्मा के प्रति सन्मुख हो गया, संसार के प्रति विमुख हो गया। आहाहा! समझ में आया? मुख बदल गया, दिशा बदल गयी। भगवान आत्मा एक समय में चिद्घन आनन्दकन्द ध्रुवस्वरूप परमात्मा स्वयं परमात्मस्वरूप ही है। उसकी स्वसन्मुख दृष्टि करने से **स्वयं वान्तमोहाः...** सहज में मिथ्यात्व का वमन हो जाता है। विपरीतपना सहज में टल जाता है और अविपरीत अनुभव दृष्टि हो जाती है। समझ में आया?

.....टोडरमल में। काललब्धि का कहा था कि हमारे उपाय क्या? जिनेश्वरदेव ने कहा मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो कारण मिलाकर करते हैं, उसे सब कारण मिलते हैं। जिनेश्वर ने कहे ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका क्या अर्थ हुआ? जिनेश्वर ने कहा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र.... जिनेश्वर ने कहा सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन का अर्थ क्या? स्वसन्मुख होना, पर से विमुख होना, वह। ऐसी पहली भगवान की आज्ञा है। मोक्षमार्ग में 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' तीन में पहले क्या आया? सम्यग्दर्शन। जिनवचन में कहा हुआ जो मोक्ष का मार्ग है, वह जो करते हैं, उसको सब कारण मिल जाते हैं। काललब्धि, भवितव्य (आदि) सब उसको हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! वह कहते हैं, देखो! समझ में आया?

स्वयं वान्तमोहाः... सहजरूप से मिथ्यात्व... वीतराग वचन में कहा, जो सम्यग्दर्शन का विषय शुद्ध आत्मा उपादेय निर्भेद-अभेद ऐसी उसकी दृष्टि करना, वीतराग ने कहा कि

तुझे अवश्य सम्यग्दर्शन होगा। तेरी काललब्धि, भवितव्यता सब पक गयी है। कर्म का उपशम और क्षयोपशम हो जायेगा, तुझे करना नहीं पड़ेगा। धन्नालालजी! आहाहा! भावार्थ। यहाँ थोड़ा सूक्ष्म आयेगा।

भावार्थ इस प्रकार है—अनन्त संसारी जीव के भ्रमते हुए जाता है। अनन्त... अनन्त काल चौरासी के भ्रमण करते-करते निगोद के भव, तिर्यंच के भव, पशु के भव... जिसके भव सुनने से उसको ख्याल आ जाये कि कितना दुःख है (और) कहाँ रहा? समझ में आया? कहीं श्वास लेने का सुख नहीं। ऐसी गति में... नरक में, सातवें नरक में ३३-३३ सागर। वह दुःख भगवान ने जाने और उसने (-संसारी जीव ने) भोगा है। ऐसी ३३ सागर (की स्थिति में) अनन्त बार सातवें नरक में गया। समझ में आया? और निगोद में एक श्वास में १८ भव। यह निगोद का दुःख... संसार में भ्रमते हुए ऐसे अनन्त (काल) चला गया। अनन्त संसार चलते-चलते... गया। समझ में आया? नरक, निगोद, कहाँ कितनी वेदना, कितना असह्य काल, कितना प्रतिकूल संयोग... ऐसी वेदना (सहन) करते, प्रभु! तेरा अनन्त काल चला गया। समझ में आया? अनन्त काल भ्रमते हुए जाता है। पहले तो ऐसा...

वे संसारी जीव एक भव्यराशि है... अब, उसमें दो जीव हैं—एक भव्य जीव है, एक अभव्य है। **एक अभव्यराशि है। उसमें अभव्यराशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जाने के अधिकारी नहीं।** कोरडुं मूंग। कोरडुं कहते हैं? तुम्हारे में क्या कहते हैं? मूँग, मठ होता है। कोरडुं... कोरडुं कहते हैं? वह नहीं चढ़ता-पकता नहीं। तोड़ने पर चूरा हो। कोरडुं कहते हैं। सीझता नहीं। मूँग, मठ होता है वह सीझता नहीं। ... द्वारा उसका आटा हो जाता है। आटा होकर उसका पापड़ हो जाये, परन्तु पके नहीं। उसी प्रकार अभव्य अनन्त काल में क्रियाकाण्ड करते-करते चूरा हो जाये, शरीर जीर्ण हो जाये, परन्तु सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं कर पाता। समझ में आया? लाख मण पानी में उबालो उसको—मूँग, मठ को, ऐसे का ऐसा बाहर निकलता है। मगसळिया पत्थर कहते हैं। शास्त्र में दृष्टान्त ऐसा आया है। मगसळिया पत्थर होता है। मूँग जितना छोटा पत्थर आता है। मूँग का दाना... मूँग समझे? इतना दाना (जितना) लाल पत्थर चिकना होता है। नदी की बालू-रेती में होता है। हमने तो सब देखा है। सब नजर से देखा है। ऐसा लाल, हरा-हरा रंग का आता है। लाख मण

पानी में उसे उबालो, जहाँ निकला तो कोरा। अभव्य ऐसा जीव है कि जिसकी कभी सम्यग्दर्शन होने की योग्यता ही नहीं। समझ में आया?

त्रिकाल ही मोक्ष जाने के अधिकारी नहीं। क्या? द्रव्यत्वगुण का (अर्थ) परिणमे। उसमें मोक्ष कहाँ आया? द्रव्यत्वगुण का अर्थ परिणमे, ऐसा आया। परन्तु परिणमे, सम्यग्दर्शनरूप परिणमे, (ऐसा) उसमें कहाँ आया? परिणमे... द्रव्यत्वगुण का (कार्य) तो परिणमना है। मिथ्यात्वरूप, अज्ञानरूप, रागरूप परिणमना, वह (अभव्य का) द्रव्यत्व है। परिणमा है, उसमें सम्यग्दर्शनरूप (होना), ऐसा गुण है नहीं। अभव्य है, नालायक है। आहाहा! समझ में आया? संसार में भटकते-भटकते अनन्त काल गया। उसमें दो जीवराशि.... एक भव्यजीव... राशि... राशि समझे? गंज—समुदाय। जीवों का ढ़ेर। एक भव्य का, एक अभव्य का।

अभव्य तो बहुत थोड़े हैं। भव्य से अनन्तवें भाग में हैं। एक अभव्य, अनन्त भव्य। एक अभव्य, अनन्त भव्य। अभव्य की संख्या से भव्य की संख्या अनन्तगुनी है। समझ में आया? अभव्य तो बहुत थोड़े हैं। अर्धपुद्गलपरावर्तन से भी थोड़े हैं। भाई! अर्धपुद्गल-परावर्तन होता है न? अर्धपुद्गलपरावर्तन के जो समय होते हैं, उससे भी अनन्तवें भाग में अभव्य होते हैं। भव्य तो, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुने इतने भव्य हैं। जीव अभव्य में... यह इतना कहा? कि ऐसा नहीं समझना कि अरे! मैं अभव्य हूँ या नहीं? ऐसा नहीं। खबर पड़े, सेठ! बराबर खबर पड़े। उसका अनुभव करे, दृष्टि करे तो बराबर (खबर पड़े कि) मैं मोक्षगामी भव्य हूँ। मैं अल्प काल में मोक्ष जानेवाला (हूँ, ऐसा) निर्णय हो जाये। समझ में आया? भगवान को भी पूछना नहीं पड़े। आत्मा में ताकत है, परन्तु ताकत प्रगट करे तो न? समझ में आया?

अभव्यराशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जाने के अधिकारी नहीं। अब आया यह भव्य। **भव्य जीवों में कितने ही जीव मोक्ष जानेयोग्य हैं।** भव्य में भी कितने मोक्ष जानेयोग्य हैं। बहुत तो भव्य पड़े रहनेवाले हैं। समझ में आया? अभव्य जैसे अनन्त भव्य भी निगोद में—नित्यनिगोद में पड़े रहेंगे। उनका भी कभी मोक्ष नहीं होता। (भव्य होकर भी) अन्ततः क्या लाभ? सम्यग्दर्शन-प्रगट किये बिना भव्य की योग्यता यथार्थ तो आयी

नहीं। वह कहते हैं न, देखो! **भव्य जीवों में कितने ही जीव मोक्ष जानेयोग्य हैं।** सब नहीं। सुनो भाई! दुर्लभता बतलाते हैं। भाई! मार्ग का मिलना, सुनना यह महा दुर्लभ है और उसकी रुचि होना, अनुभव होना तो महादुर्लभ है। ऐसी चीज़ वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र (कहीं) है नहीं। परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के सिवा, यह मार्ग अन्यत्र (कहीं) है नहीं। **भव्य जीवों में कितने ही जीव मोक्ष जानेयोग्य हैं।**

अब आया। **उनके मोक्ष पहुँचने का काल परिमाण है।** भव्य जीव अमुक समय में मोक्ष जायेगा, उसके काल का माप है। भगवान के केवलज्ञान में, उसका माप है। आहाहा! ऐसी यह बात मानते नहीं वे लोग। कि नहीं। क्रमबद्ध मानना पड़ेगा, काललब्धि हो जाये। अरे भगवान! सुन तो सही! भव्य में भी दो प्रकार लिये। कितने मोक्ष जानेवाले हैं, उसमें भी जानेवाले जो हैं, उसको भी काल का माप है। यह भव्य इस समय मोक्ष जायेगा, यह भव्य इस समय जायेगा, यह भव्य इस समय जायेगा—ऐसा सब काल का माप है, काल का निश्चितपना है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : काल के ऊपर देखने का रहा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : काल के ऊपर देखने का रहा? यही कहते हैं। अभी कहेंगे, सुनो! काल के ऊपर देखने का नहीं। भगवान की आज्ञा... यह बताया न पहले? इसीलिए तो पहले कहा, शुद्ध जीव उपादेय कहा और यहाँ कहा न? मोक्षमार्गप्रकाशक। यह हिन्दी है, हों! थोड़ा शब्द फेर है।

जिनमत में जो मोक्ष का उपाय कहा है, उससे मोक्ष होता ही है।' समझ में आया? '**इसलिए जो जीव पुरुषार्थ से जिनेश्वर के उपदेश अनुसार...** देखो! **जो जीव पुरुशार्थ से जिनेश्वर के उपदेश अनुसार...** यह महासिद्धान्त है। जिनेश्वर का उपदेश क्या आया? शुद्ध जीव उपादेय। जिनेश्वर का उपदेश क्या आया? 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' सम्यग्दर्शन में क्या आया? शुद्धस्वरूप-सन्मुख होकर दृष्टि करना, ऐसा जिनवाणी में अनादि से आता है। '**पुरुषार्थ से जिनेश्वर के उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करता है...**' जो स्वरूप की श्रद्धा, अनुभव करता है। शुद्ध उपादेय आत्मा को करता है, 'उसको काललब्धि होनहार भी हुई। काललब्धि आ गयी और भवितव्य हो गया और

कर्म के उपशमादि हुए हैं।' कर्म का उपशम है, क्षयोपशम है, तो ऐसा उपाय करते हैं। 'इसलिए जो पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय करता है, उसको सर्व कारण मिलते हैं।' भगवान के कहे उपदेश प्रमाण से जो पुरुषार्थ करता है, उसको सर्व कारण मिलते हैं। उसको काल के सामने देखना नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं।

भगवान की आज्ञा क्या है? इस समय में काल पकेगा, ऐसी आज्ञा है। वह तो जानने की (चीज़) है, परन्तु उसको जानने के योग्य कब होगा? काललब्धि जाननेयोग्य कब होगी? कि अपने स्वरूप की दृष्टि का ज्ञान करे, तब काललब्धि का ज्ञान होगा। नहीं तो काललब्धि का ज्ञान नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? देखो! ऐसा निश्चय करता है, उसको सर्व कारण मिलते हैं। ऐसा निश्चय करना। 'और उसको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा निश्चय करना। तथा जो जीव पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय नहीं करता, उसका काललब्धि, होनहार नहीं...' पुरुषार्थ से सन्मुख होना, वह तो करते नहीं। समझ में आया? क्या काल की पर्याय के ऊपर देखना है उसको? भगवान ने वह कहा है? द्रव्य पर (दृष्टि करने को) कहा है यहाँ तो। ज्ञान कराया, जिस समय होगा, उसका ज्ञान कराया। समझ में आया? लम्बी बात है। यह हिन्दी है, हों! ३११ पृष्ठ। हिन्दी। यह नया प्रकाशित हुआ है। उसमें एक-दो पृष्ठ का अन्तर होगा। उसमें—गुजराती में ३१३ है। एक-दो पृष्ठ अन्तर होगा नये में। बहुत अन्तर नहीं, पृष्ठ के पृष्ठ चले आते हैं। इसमें ३१३ है। (३१० से) शुरु होता है, उसमें बारह से शुरु होता है। इसमें तेरह से शुरु होता है। यह मोक्षमार्ग (प्रकाशक) अभी प्रकाशित हुए न दस हजार वहाँ जयपुर... जयपुर... मोक्षमार्गप्रकाशक। टोडरमल स्मृति हॉल।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी समाप्त तो हो? समझ में आया?

कितनी सरस बात की है, देखो! काललब्धि डाला है। यहाँ... बताते हैं कि उसके मोक्ष... ये मानते नहीं कितने। नहीं, यह झूठ है। अर्धपुद्गल (परावर्तन काल) रहे और समकित हो, ऐसा है। नहीं तो क्रमबद्ध हो जायेगा। तब? कोई भी पुद्गल परावर्तन शुरु हो, उसमें आधा रहे तब सम्यग्दर्शन पा जाये। यह नयी बात। अभी तक हमने सुनी नहीं थी।

शास्त्र में नहीं है, बाहर से नयी बात निकाली है। कहाँ से ? पुद्गलपरावर्तन किसे ? जिसे भावन है उसे। उसे खबर है कि पुद्गलपरावर्तन शुरु हुआ और अर्ध पुद्गल परावर्तन में... ? काल का निश्यम नहीं है, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि मोक्ष पहुँचने का काल परिमाण है। समझ में आया ?

विवरण—यह जीव इतना काल बीतने पर मोक्ष जायेगा, ऐसी नोंध केवलज्ञान में है। आहाहा ! नोंध समझे ? ... दूसरे पृष्ठ पर है। दूसरे पृष्ठ के अन्तिम में... नोंध—ज्ञान... ज्ञान। दूसरे पन्ने पर है। छठवें पन्ने पर है या नहीं ? अन्तिम लाईन। छठवें पन्ने पर अन्तिम लाईन। अन्तिम में अन्तिम लाईन। अन्तिम लाईन किसे कहना ? यह छठवें पृष्ठ पर अन्तिम कहलाये ? जेठाभाई ! नोंध... अभी ऊपर देखते थे। अन्तिम इसे कहा जाता है कि उसको कहा जाता है ? यह तो बहियों के पढ़नेवाले की भूल है। यह तो सब व्यापारी हैं। 'नोंध' शब्द है या नहीं ? नोंध अर्थात् ज्ञान। केवलज्ञान में ज्ञान है। भगवान के ज्ञान में ज्ञान है। यह जीव इस समय में मोक्ष जायेगा, ऐसा भगवान के... सेठ ! नोंध करते हो या नहीं तुम ? बहियों की नोंध। नोंध की बहियाँ अलग होती हैं। नामा लिखे न पूरे दिन। आगे खतौनी करके फिर नोंध में पक्का करे।

इसी प्रकार यहाँ नोंध है। देखो ! भाषा है। जीव इतने काल में मोक्ष जायेगा, ऐसी नोंध केवलज्ञान में है। यह मना करते हैं या नहीं, केवलज्ञान ऐसा नहीं। केवलज्ञान माने तो यह सब बात झूठ जो जाये। आहाहा ! और केवलज्ञान... जिसको एक समय में तीन काल तीन लोक देखा, ऐसा ज्ञान हो और उसकी पर्याय के प्रमाण से जगत की (पर्याय) होगी, उसकी दृष्टि अपने स्वरूप सन्मुख हो जायेगी। तब केवलज्ञान का निर्णय होगा, वरना तो केवलज्ञान का निर्णय होगा नहीं। समझ में आया ? क्या करे ? राजमलजी ने मिलान किया है। उसमें... क्या ? मिलान किया है।

जिनवचसि... वान्तमोहा... कब होता है, उसका स्पष्टीकरण किया है। यहाँ '**जिनवचसि**' इतना। भले '**आसन्नभव्य**' ऊपर से निकाला है। परन्तु यहाँ तो **जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः** किसको होता है, यह बात कहते हैं। अनन्त पुद्गलपरावर्तन करते-करते आया, ऐसा कहा न पहले ? उसमें जीव की राशि दो—भव्य, अभव्य।

अभव्य तीन काल में मोक्ष जानेयोग्य नहीं। भव्य में भी कितने जानेयोग्य हैं और भव्य भी कब मोक्ष जायेगा, वह केवलज्ञान में नोंध है। केवलज्ञान की बही में नोंध है। भंवरलाल सेठ! ऐसा लिखा है, देखो! आहाहा! यहाँ (अपने ज्ञान में) नोंध तो कर। वहाँ (केवलज्ञान में) नोंध है ही। आहाहा! हीरालालजी! **यह जीव इतना काल बीतने पर मोक्ष जायेगा ऐसी नोंध केवलज्ञान में है।** समझ में आया?

'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा...' वह आता है या नहीं? 'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे, काहे होत अधीरा, अनहोनी कबहु न होसी, अनहोनी कबहु न होसी, काहे होत अधीरा।' आहाहा! यह भैया भगवतीदास का वाक्य है। भैया भगवतीदास। 'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे, अनहोनी कबहु न होसी, काहे होत अधीरा।' दृष्टि में से... ज्ञान करते हैं। तेरे ज्ञान में ज्ञाता-दृष्टा रहे, अधीर हो नहीं। होगा, वही होगा, तुझे जाननेयोग्य है, कुछ बदलनेयोग्य है नहीं। समझ में आया?

....लिखा है। ...है न देवचन्दजी? खरतरगच्छ। उन्होंने शीतलनाथ भगवान की स्तुति की है। श्वेताम्बर में एक देवचन्दजी खरतरगच्छ (में) हुए हैं। उन्होंने स्तुति की, उसमें भी यह लिया है। 'द्रव्य, क्षेत्र अरु काल भाव गुण राजनीतिये चार जी।' द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण... राजनीति यह चार जी। 'त्रास बिना जड़-चैतन्य प्रभु की कोई न लोपे कार जी।' हे नाथ! तेरी आज्ञा में—ज्ञान में जो पदार्थ आये, उस प्रमाण से वे परिणमते हैं। वे पदार्थ आपकी आज्ञा का लोप कभी नहीं करते। समझ में आया? निश्चित बात है, परन्तु उसका विचार नहीं करते। वे भी विचार नहीं करते थे, लिख गये इतना। परन्तु भगवान ने देखा, ऐसा होता है (ऐसी) उसकी दृष्टि इतनी मजबूत कहाँ होगी? समझ में आया?

अपनी पर्याय के ऊपर से रुचि हटाकर सर्वज्ञ का निर्णय करना है। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणपज्जयत्तेहिं**' (प्रवचनसार) ८० गाथा में कहा न? '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणपज्जयत्तेहिं**' भगवान के—अरिहन्त के द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसकी शक्ति, उसकी पर्याय जो जाने, '**अप्पाणं जाणदि**' निश्चय से आत्मा को जानकर '**मोहो खलु जादि तस्स् लयं**' यहाँ '**वान्तमोहाः**' कहा। उसका मोह नाश हो जायेगा। जिसने भगवान के केवलज्ञान

का निर्णय अपने द्रव्य सन्मुख होकर किया, उसको दर्शनमोह का नाश होगा, होगा और होगा। आहाहा! समझ में आया?

.... वे अभी सर्वज्ञ को उड़ाते हैं। क्रमबद्ध आया सही न? केवलज्ञान को माननेवाले को शंका पड़ गयी। ऐसे मानने जाये तो गड़बड़ होगी। जिसमें दो नहीं होगा, उसमें करना क्या? भगवान! जिस समय में जो होगा, ऐसा जाननेवाला ज्ञान, उस ज्ञान का निर्णय करो तो अकर्ता और ज्ञाता-दृष्टा हो जाओ। उसका यह फल है। आहाहा! समझ में आया? बात करना नहीं है। भगवान ने देखा ऐसा जहाँ जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में जैसी पर्याय जब जहाँ जिस संयोग से (होगी), सब भगवान के ज्ञान में निश्चित है। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है और उसमें निमित्त जो है—दोनों भगवान के ज्ञान में निश्चित है। भगवान के ज्ञान में कुछ अधूरा नहीं। केवलज्ञान... आहाहा! तीन काल तीन लोक एक समय में! आहाहा! ऐसी जिसको प्रतीति आवे, अरिहन्त की प्रतीति जिसको हो, वह प्रतीति अन्तर स्वभाव सन्मुख होकर होती है। दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है। समझ में आया?

ऐसा व्रत और दया, दान, भक्ति, उसके सन्मुख भगवान की—सर्वज्ञ की प्रतीति होती है? सन्देह टला? इतना सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख-करोड़ वर्ष करते-करते मर गया, तो भी सन्देह तो टला नहीं। भगवान परमात्मा केवलज्ञानी विराजमान हैं, तीन काल—तीन लोक देखते हैं। उनके ज्ञान में यह जीव किस समय मुक्ति जायेगा, ऐसी नोंध है। देखो!

मुमुक्षु : नोंध देखना है तो .... जाना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी नोंध है, इसलिए जाने को कौन कहता है? नोंध है, उसका निर्णय करनेवाले को मोक्ष होगा ही होगा, ऐसा कहते हैं। जाना पड़ेगा, ऐसा क्या?

केवलज्ञान में उसकी नोंध है, इसका जिसका निर्णय है, उसको सम्यग्दर्शन होगा और मोक्ष हो जायेगा। जाना है कहाँ? आहाहा! समझ में आया? लाईन कठिन है। नोंध है। कहते हैं न? हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष में यह प्रश्न उठा था। ७२। ५१ वर्ष हुए। फाल्गुन शुक्ल १३... फाल्गुन शुक्ल १३, संवत् १९७२। वीछिया के पास सरवा गाँव है। हमारे प्रेमचन्दभाई को खबर है। वीछियावाले हैं न? हाँ, वे सरवा। उस सरवा में अपने उतरे थे मन्दिर में, सामने यह वहाँ बताया था, उस जगह में आवास था ... खाचर का, वहाँ उतरे

थे। ७२ की बात है। उपाश्रय के सामने। यह मन्दिर है न, वहाँ उतरे थे। ... दस बजे (बात) शुरु हो गयी। ऐसी शुरु हो गयी। हम तो बोलते नहीं थे। हमारे ख्याल में बात बहुत थी कि यह (बात) विपरीत है। बोलते नहीं थे। दो वर्ष की दीक्षा। ७० में दीक्षा और दो वर्ष हुए थे। अपने बोलना नहीं....

परन्तु ऐसी एक बात हो गयी। भोजन करते-करते आहार बढ़ गया थोड़ा। हमारे गुरु थे... आज्ञा ऐसी है शास्त्र की कि आहार बढ़ जाये... (आहार) लाना नहीं विशेष,... परन्तु बढ़ जाये तो एक ओर छोड़ देना। हमारी शास्त्र भाषा ऐसी है कि वोसरे... वोसरे करके... ऐसा पाठ है। आहार बढ़ जाये, कोई गर्मी लगे, कुछ विशेष हो गया हो तो आहार बाहर ... देना। ....समझते हो ? कोई कचरे में... छोड़ देना। ऐसा हुआ कि आधी रोटी बची। समझे ? रोटला को क्या कहते हैं ? रोटी नहीं, हों ! बाजरे का रोटला। आधा बढ़ा। हम खाते थे, वहाँ ऊपर एक कुत्ता आया। हमसे छोटा एक साधु था, वह टुकड़ करते-करते वोसरे... वोसरे... (बोलता था)। मैंने कहा, यह क्या करते हो ? जगजीवनजी। यह क्या करते हो ? परन्तु यह क्या ? मजाक करते हो भगवान की आज्ञा की ? भगवान ने कहा, विशेष आहार है... उस समय ऐसा मानते थे न ? मजाक करते हो ?

मैंने तो फिर दृष्टान्त दिया था। भावनगर में है। घोघा के दरवाजे पायखाना। भावनगर। खबर है न ? भावनगर घोघा के दरवाजे पायखाना है नीचे। नीचे बड़ा... है। ऊपर जंगल जाये न, तो नीचे डिब्बा है बड़ा डिब्बा। उसमें दस्त गिरे। कहा, यह दिशा से ऊपर जाये और नीचे गिरे, वोसरे वोसरे करे, यह विधि है ? भाई दाँत निकालते हैं (हँसते हैं)। जंगल (दस्त) जाये... व्यवहार और... उसमें कहा, यह तुम क्या करते हो ? हमारे गुरु थे न, बहुत भद्रिक थे, नरम थे। बात मोड़ ली, पकड़ ली। यह कानजी तेरापंथी है और यह.... इसलिए रोटला डाला... ऐसा करके बात मोड़ ली।

यह रात्रि में प्रश्न उठा वापस। केवलज्ञानी ने देखा, उस प्रकार से भव होगा... पुरुषार्थ करें तो कुछ भव घटेगा नहीं। नौ-नौ कोटि से संथारा, नौ-नौ वाड से ब्रह्मचर्य, ऐसा बारम्बार कहते थे। हम बोलते नहीं थे। यह भाषा वीतराग की है ? आगम की भाषा है ? धन्नालालजी ! आगम की यह भाषा है ? भगवान की वाणी में ऐसा आता है ? समझ

में आया ? मैंने तो दूसरा दृष्टान्त लिया था। उस समय यह पढ़ा ही नहीं था। समयसार कहाँ (मिला) था ?

और गजसुकुमार का (दृष्टान्त) आता है श्वेताम्बर में। गजसुकुमार श्रीकृष्ण के भाई। सगे भाई। जब श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन करने को जाते थे तो गजसुकुमार को बैठाया था... क्या कहलाता है ? अपनी गोद में बिठाया था। एक सोनी की कन्या बहुत रूपवान सुन्दर खेल रही थी। सोने की गेंडी-गेंद के साथ। श्रीकृष्ण ने देख ली। ओहो ! बहुत सुन्दर लड़की-कन्या है। किसकी है ? जाओ, उठा लाओ। अपने भाई का विवाह करने के लिये अन्त:पुर में ले जाओ। बहुत रूपवान थी सोनी। ले गये। गजसुकुमार बैठे हैं यहाँ गोद में। भगवान के निकट गये, सुना। सुनकर वैराग्य ऐसा हो गया... ऐसा वैराग्य हो गया... मैंने कहा, भगवान के पास कैसी वाणी सुनी होगी ? तुम कहते हो, ऐसी वाणी ? वाणी सुनकर एकदम, प्रभु ! ....महाराज ! आपकी आज्ञा हो तो मेरी माता की आज्ञा लेकर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। ऐ न्यालभाई ! यह सब.... आता है पुराना।

माता देवकी के पास गये। माता ! मुझे ....की रुचि नहीं जमती। मेरे आत्मा के अतिरिक्त मुझे कहीं (सुहाता नहीं)। माता ! आज्ञा दे। अरे भाई ! श्रीकृष्ण ने माँग की है और तू पुत्र आया। मैंने लाड़ लड़ाया। श्री कृष्ण आदि सात भाईयों ने लाड़ लड़ाया (दुलार किया)। सात भाई थे न पहले। दूसरे जन्मे थे। माता ! मेरी कहीं रुचि नहीं जमती। मेरा आत्मा... भाई ! जा। भगवान के निकट दीक्षा ली और दीक्षा लेकर... ऐसा पाठ है उसमें। प्रभु ! आज आज्ञा दो, नाथ ! ....द्वारिका के महाकाल श्मशान में जाकर खड़ा रहूँ। बारहवीं भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करूँ आज की आज। यह क्या है ? कहा। अभी राजकुमार जिसे गद्दे में... गादला समझते हो न ? गद्दा। उसमें एक डोरी जैसी गाँठ हो तो चुभती थी। वह दीक्षा लेकर प्रभु से पूछता है, महाराज ! नाथ ! आपकी आज्ञा हो तो मैं श्मशान में चला जाऊँ। अकेले श्मशान में खड़ा रहूँ।

राजकुमार ने क्या पढ़ा, क्या किया, क्या किया ? महाराज ! मुझे एकदम मोक्ष लेना है। मैं महाकाल श्मशान में जाऊँ। द्वारिका का महाकाल श्मशान है। बारहवीं भिक्षु की प्रतिमा... अपने आता है, हों ! नाम नहीं आता। प्रतिक्रमण में आता है। अन्तिम प्रतिमा। वह

अन्तिम प्रतिमा ऐसी सहन करे तो अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान हो; वरना या तो पागल हो और रोग हो या तत्त्व से भ्रष्ट हो। ऐसा बोल है। तीन बोल आते हैं न? पागल हो जाये, जो सहन न करे तो पागल हो जाये, मिथ्यादृष्टि हो जाये, तत्त्व से भ्रष्ट हो जाये। तीन बोल आये न? या पागल हो जाये, जो सहन न करे तो पागल हो जाये, मिथ्यादृष्टि हो जाये, या तत्त्व से भ्रष्ट हो जाये। .... वह आया है न सोमल? ... ध्यान में मस्त। वहाँ का वहाँ केवल (ज्ञान)।

यह क्या? कितना पुरुषार्थ? कितनी वाणी वीतराग की सुनी उसने। स्वभाव सन्मुख झुकने की कितनी वाणी सुनी कि आज के आज दीक्षा और आज का आज मोक्ष? ऐसी वाणी तुम्हारे...? ऐसी आगम की वाणी कौन कहता है? और भगवान का केवलज्ञान जिसको ज्ञान में बैठा है, उसको भव है, (ऐसा) कौन कहता है? भगवान ने तो भव देखे नहीं। कौन जाने फिर ऐसा कहा। तुम्हारे अनन्त भव देखे होंगे। ....बात.... ७२ की बात है। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी। आहाहा! इसकी जिसको श्रद्धा है और ज्ञान में बैठ गया, भगवान ने उसके भव नहीं देखे। समझ में आया? एकाध भव हो, वह दूसरी बात है, परन्तु (अधिक) भव है नहीं। ऐसी बात तुम किसको कहते हो? भगवान की वाणी में ऐसा क्या?

फिर वाणी निकली अपने ८२वीं गाथा प्रवचनसार में। वही वाणी निकली, जो कहा था। भगवान की वाणी ऐसी है... ८०-८१-८२ है न? प्रवचनसार। उस समय तो पढ़ा ही कहाँ था! अन्दर से वह बात आयी। पूर्व के संस्कार थे न? पूर्व के संस्कार थे न? नहीं; भगवान केवलज्ञानी परमात्मा जिसको हृदय में बैठे हैं, उसको अनन्त भव होते ही नहीं। वीतराग की वाणी तुम कहते हो, ऐसी नहीं है। यहाँ निकली ८२वीं गाथा में। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणपज्जयत्तेहिं**' है न? यह ८०, ८२ है। उसमें उपाय है। साक्षी हमारे यह निकला तब। देखो! ८२ में है। क्या कहते हैं? '**सव्व वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा**' सर्व अरिहन्त.... पूर्व के अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त कर, '**खविदकम्मंसा**'—कर्म का नाश किया। '**किच्चा तधोवदेसं**' ऐसा उपदेश किया। उपदेश ऐसा किया भगवान ने। हम कहते हैं,

ऐसा उपदेश है। यह तो तब सुना भी नहीं था, वाँचन भी नहीं किया था, भाई! यह शब्द यही पड़े थे अन्दर। भगवान की ऐसी वाणी आयी?

यहाँ कहते हैं, देखो! ८२ (गाथा) ***अतीतकाल में हो गये समस्त तीर्थंकर भगवन्त, प्रकारान्तर का असम्भव होने से जिसमें द्वैत सम्भवता नहीं, ऐसे इसी एक प्रकार से कर्मांशों का क्षय स्वयं अनुभव करके (तथा) परमात्मपने के कारण भविष्य काल में या इस काल में अन्य मुमुक्षुओं को भी इसी प्रकार से उसका (कर्मक्षय का) उपदेश करके....*** इसी प्रकार उसके कर्म के क्षय का उपदेश करके... भगवान ने ऐसा उपदेश किया। हमने जिस विधि से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त किया, वह विधि तुम लो, ऐसा उपदेश किया। कहा न, जिनवचन में शुद्ध आत्मा का उपदेश आया, ये अंगीकार किया। जिनवचन में द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक का (कथन) आया। द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक में से द्रव्यार्थिक को मुख्य कर पर्यायार्थिक को गौण करके (द्रव्यार्थिक को) उपादेय किया। निर्भेद का आश्रय करके भेद का लक्ष्य छुड़ाया, वह भगवान की वाणी में मुख्य आया। यह वाणी भी भगवान ने ऐसी की और ऐसी वाणी भगवान की होनी चाहिए। समझ में आया? धन्नालालजी! देखो! लिखा है।

ऐसा कर्म का क्षय भगवान ने किया और यही उपदेश दिया। निःश्रेयस को प्राप्त हुए—भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए। अन्य कोई मार्ग नहीं। प्रलाप से बस होओ, मेरी मति व्यवस्थित हुई है। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), मेरी मति व्यवस्थित हो गयी है। अब निश्चय हो गया है। समझ में आया? '**किच्चा तधोवदेसं**' इस शब्द पर जोर है। भगवान ने अपने शुद्धस्वरूप का आराधन किया, पूर्व में केवलज्ञानी हुए, उसका आराधन कर (उन्होंने) निर्णय किया (और) ऐसा उपदेश दिया कि तुम भी अरिहन्त की पर्याय निर्णय करके स्व का आश्रय करो। तुम्हारा भी कर्मक्षय होगा... होगा। ऐसी तो भगवान की वाणी है। समझ में आया?

कहते हैं, मोक्ष जाने का प्रमाण है। यह जीव इतना काल बीतने पर मोक्ष जायेगा, ऐसी नोंध केवलज्ञान में है। आहाहा! भगवानजीभाई! कठिन बात, भाई! भाई! केवलज्ञान में समझ है। परमात्मा के ज्ञान में ... है। वह समवाय में आता है। समवाय है न? समवाय

में ऐसा आता है। सब बात की थी उस समय। देखो! भगवान ने ऐसा कहा.... तब तो उस शास्त्र को भगवान का कहा मानते थे न? भगवान तो कहते हैं,.... कितने जीव इसी भव में मोक्ष जायेंगे, भगवान कहते हैं। कितने ही दो भव में, कितने ही तीन भव में, ऐसे ३३०३३ तक लिये। परन्तु अनन्त तक ले लेना, ऐसा पाठ है समवाय में। कहा, यह क्या कहते हैं? समवायसूत्र। पहले से ३३ सूत्र। सब वाँचन किया था न।

यह कहते हैं ऐसा... भगवान ने देखा है, सब देखा है। भव्य, अभव्य और भव। भगवान के ज्ञान में सब आया है। ऐसा भगवान का ज्ञान जिसको रुच जाये, उसका तो कल्याण हो जाये, संसार रहे नहीं। यह भगवान रुचे और, भव रहे तो भगवान की भेंट कहाँ आयी? समझ में आया? केवलज्ञान में मोक्ष.... लो, इतने पर मोक्ष जायेगा, उसकी मना करते हैं। नहीं। 'अपरपक्ष' ऐसी भाषा लिखते हैं न फूलचन्दजी। अमरचन्दभाई! अपरपक्ष, ऐसी भाषा लिखते हैं न? अरे भगवान! इनकार न कर प्रभु! यह तो मार्ग ऐसा है। परन्तु निर्णय करना, वह तुझे कठिन पड़ता है न? यह बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मान लेना। यह तो अन्तर में दृष्टि करना (कि) जिसमें सर्वज्ञपद पड़ा है। आत्मा में सर्वज्ञ पद पड़ा है। सर्वज्ञ के ज्ञान में नोंध है कि ऐसा मोक्ष हो जायेगा। ऐसा सर्वज्ञ का निर्णय करनेवाला अपने सर्वज्ञपद का निर्णय करता है। समझ में आया? ऐसी बात... यह बड़ा विवाद... यह बदल डालना चाहते हैं। यह सब कथन बदल डालना चाहते हैं। सुधार करो, ऐसा कहते हैं। कोई कहता था। सुधारते हैं.... कलशटीका, अमुक, अमुक। कितना सुधारेगा? समझ में आया? भगवान के ज्ञान में यह जीव आत्मा... यह इनकार करता है कि यह जीव इस समय समकित पायेगा। कि नहीं।

यह यहाँ कहते हैं, देखो! **वह जीव संसार में भ्रमते भ्रमते जभी अर्धपुद्गल-परावर्तनमात्र रहता है,...** देखो! अर्धपुद्गलपरावर्तन रहता है, **तभी सम्यक्त्व उपजनेयोग्य है।** समझ में आया? उस ओर। भाई! **वह जीव संसार में भ्रमते भ्रमते जभी अर्धपुद्गल-परावर्तनमात्र रहता है,...** उसकी भी मना करते हैं। नहीं, अर्धपुद्गलपरावर्तन... सर्वार्थसिद्धि में पाठ है, टीका है। काललब्धि, भवितव्य... पाठ है। परन्तु कौन जाने लोगों को... अरे! ऐसा क्रमबद्ध का निर्णय करेगा, तो जब होगा, तब होगा, (उसमें) हमें क्या करना? होगा

वह होगा, (उसमें) करना है तुझे स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ। उसका—क्रमबद्ध का तात्पर्य यह है। भगवान का देखा का तात्पर्यय भी यह है। भगवान ने देखा तो तुम भी देखनेवाले हो जाओ। मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ, मैं भी जानने-देखनेवाला हूँ। भगवान पूर्ण देखते हैं, मेरी पर्याय में अपूर्णता से राग आता है, (उसे) मैं जानने-देखनेवाला हूँ। व्यवहार का भी जानने-देखने(रूप) रहनेवाला हो गया, वह समकिती है। सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक को देखते हैं। समकिती अपना स्वरूप सन्मुखता का जो ज्ञान हुआ, उसमें अपने को देखते हैं, रागादि भेद रहा, उसको भी देखते हैं। बस, राग का कर्ता-बर्ता ज्ञानी है ही नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ जैसे लोकालोक को देखते हैं, ऐसे लोकालोक के कर्ता हैं? सर्वज्ञ लोकालोक को देखते हैं, परन्तु लोकालोक के कर्ता हैं? उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि रागादि को जानता है, परन्तु राग का कर्ता नहीं। आहाहा! क्या करे? यह वीतराग का मार्ग, अन्दर परमात्मा पूर्ण परमेश्वर क्या कहते हैं, (उसकी) खबर नहीं और अपनी कल्पना से जोड़ दिया। दिमाग काम करे नहीं फिर जो करे...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुहूर्त। यह तो उत्कृष्ट बात है। द्रव्य में अन्तर्मुहूर्त... द्रव्य में अन्तर्मुहूर्त रहते हैं तो समकित पाकर केवल(ज्ञान) पाकर मोक्ष जाये। समझ में आया? यह तो अधिक में अधिक काल हो... झाझा, क्या कहते हैं? अधिक। अधिक में अधिक हो तो अर्धपुद्गलपरावर्तन। बाकी थोड़े में तो अन्तर्मुहूर्त बाकी है, वहाँ सम्यक्त्व पाकर केवलज्ञान लेकर मोक्ष जायेंगे। मध्यम की बात... अर्धपुद्गल से अन्तर्मुहूर्त की सबमें... समझ में आया?

यह तो एक जानने की बात है। बात तो.... तेरे स्वभाव सन्मुख हो, वह बात है। समझ में आया? क्रमबद्ध में यह, सर्वज्ञ के निर्णय में यह, भगवान ने देखा, वैसा होगा—इसमें यह, भगवान का उपदेश आया कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र करो, उसमें भी यह, भगवान की वाणी में आया कि शुद्ध जीव उपादेय है, वह भी यह।—सबका यही अर्थ है। बात तो यह है। आहाहा! समझ में आया?

तभी सम्यक्त्व उपजनेयोग्य है, इसका नाम काललब्धि कहलाता है। इसका नाम काललब्धि। परन्तु काललब्धि के साथ निर्णय करने में पुरुषार्थ आदि पाँचों (समवाय) होते ही हैं। पुरुषार्थ, भवितव्यता, कर्म का अभाव और स्वभाव पाँचों एक समय में होते हैं। एक काललब्धि का निर्णय करनेवाले को पाँचों का साथ में निर्णय होता है। यह स्वभाव के पुरुषार्थ से सब होता है। समझ में आया? नि:शंक कैसे हो गया? नि:शंक हो गया। पहले तो आया न? विभाव आदि... समझ में आया? काललब्धि उसका नाम है। कितने काल में उसका मोक्ष होगा, वह काललब्धि है। भगवान के ज्ञान में सब आया है। सब द्रव्यरूप आत्मा, परमाणु की जिस समय जहाँ जो पर्याय होनेवाली है, जिस निमित्त में होनेवाली है—सब भगवान के ज्ञान में पहले से आ गया है। समझ में आया? नया नहीं।

मुमुक्षु : भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा का ऐसा जायेगा। ऐसे के ऐसे सब गये हैं। पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख होकर सब गये। दूसरे प्रकार से कोई जायेगा नहीं, जाता नहीं। आहाहा! ...काया रह जाती है। वह ऐसी जाति होती है। ऐसा कुछ नहीं, जाति प्रमाण... नहीं, यह ध्यान नहीं रखना। सम्यग्दर्शन पाने के योग्य ही सब जीव हैं। समझ में आया? समवसरण में अन्दर अभव्य नहीं जा सकते। यह बात लेना ही नहीं यहाँ। यहाँ तो छोड़ने के लिये बात करते हैं, निर्णय के लिये बात कहते नहीं। लो, विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ५, शुक्रवार, दिनांक २५-८-१९६७
कलश - ४-५, प्रवचन नं. ९

समयसार कलशटीका, जीव अधिकार। चौथा कलश चलता है। क्या कहते हैं? **जीव संसार में भ्रमते भ्रमते जभी अर्धपुद्गलपरावर्तनमात्र रहता है, तभी सम्यक्त्व उपजनेयोग्य है।** भगवान के ज्ञान में—केवलज्ञानी के ज्ञान में ऐसा आया है कि जब उसका संसार—अर्धपुद्गलपरावर्तन परिभ्रमण रहे... उत्कृष्ट.... अर्धपुद्गलपरावर्तन में भी अनन्त चौबीसी जाती है। इतना संसार रहे, तब सम्यक्त्व उपजनेयोग्य होता है। भव्य की बात है न! अभव्य की बात तो निकाल दी। अभव्य तो निकाल दिये। अभव्यराशि तो कभी मोक्ष नहीं जाते। यह तो भव्य की बात है। भव्य में भी कुछ ही मोक्ष जानेयोग्य हैं, सब नहीं। कितने जानेयोग्य हैं, उसकी नोंध भी भगवान के ज्ञान में है। आहाहा! उसका संसार अर्धपुद्गल (परावर्तनमात्र) रहे, तब वह सम्यग्दर्शन पाने के योग्य हो जाता है, उसका नाम काललब्धि है। काललब्धि कहलाता है। आया न? उसका अर्थ यह है... काललब्धि भी एक नय है। प्रवचनसार में आया है कि कालनय से मोक्ष होगा। परन्तु उस कालनय का ज्ञान कब होता है? कि साथ में स्वरूप का पुरुषार्थ करके... जो पुरुषार्थ चाहिए इतना करके... समझ में आया?

कालनय और अकालनय—दो नय लिये हैं शास्त्र में—प्रवचनसार में। इसमें वे बहुत विवाद करते हैं न? काल में भी मोक्ष होता है और अकाल में भी मोक्ष होता है। किसी को क्रमसर में भी होता है और किसी को आगे-पीछे अकाल में भी मोक्ष होता है। दो नय आये हैं प्रवचनसार में। परन्तु उसका यह अर्थ है ही नहीं। वहाँ तो कहते हैं, जो समय उसका मोक्ष होने का है, उसी समय होगा, ऐसा जानना, वह कालनय है। और उसी समय में पुरुषार्थ से मुक्ति हुई, ज्ञान से मुक्ति हुई, ऐसा स्वभाव-सन्मुख का पुरुषार्थ करके... ऐसे बोल (का ज्ञान उसे) अकालनय कहा गया है। है तो एक ही समय में दोनों धर्म का ज्ञान। कोई काल में जायेगा और कोई अकाल में जायेगा, ऐसा समय भेद नहीं है। सूक्ष्म बात है।

काल में (ही मोक्ष) जायेगा, परन्तु उस समय में जो अकाल अर्थात् पुरुषार्थ आदि

बोल हैं... सूक्ष्म बात है। थोड़ी कठिन बात है। वह तो कहते हैं, यत्नसाध्य नहीं है। ऐसा कहेंगे। उसका कारण कि कालनय पर उसका विशेष जोर है। परन्तु वह कालनय का... जिस समय में केवलज्ञान होता है, मुक्ति होती है अथवा साधक को जिस समय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त होता है, ऐसा कालनय का ज्ञान करने के समय अपने स्वभाव सन्मुख होकर स्वभाव का अनुभव किया है, तो पुरुषार्थ से होता है, ऐसा कालनय के साथ में पुरुषार्थ, स्वभाव (आदि)नय जानने में आता है। और अकाल अर्थात् पुरुषार्थ और स्वभाव से होता है, काल के अतिरिक्त दूसरे से हुआ, ऐसा अकालनय उसी समय में जानने में आता है। बहुत सूक्ष्म बात! समझ में आया?

जो समय-काल है, समय तो वही है, परन्तु वह समय का ज्ञान किसको यथार्थ होता है? अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु अभेद... अभेद-निर्भेद का अनुभव हुआ—ऐसा पुरुषार्थ द्वारा अपने आत्मा को जहाँ साधन किया, तब उस कालनय का ज्ञान साथ में आया, तो उसी समय सम्यग्दर्शन होनेवाला था, ऐसा भान हुआ। सूक्ष्म बात। बड़ा विवाद इसमें से चले। वे कहें, आगे-पीछे होगा। आगे-पीछे की बात है नहीं। काल-अकाल और पुरुषार्थ सब एक समय में, ४७ नय का ज्ञान एक समय में है। ४७ (नय) आते हैं न? पढ़ा है न प्रवचनसार। सैंतालीस। तुम्हारे क्या कहते हैं? ४ और ७। ४७ नय हैं। उसमें यह आया है, कालनय से मोक्ष जायेगा, अकाल में जायेगा, पुरुषार्थ से जायेगा। दैव से जायेगा, क्रिया से जायेगा, ज्ञान से जायेगा—ऐसे ४७ नय आये हैं। जब उसका पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख हुआ, तब उसमें कालनय के ज्ञान का भी साथ में भान हुआ, वह बात है। तब अकाल में मोक्ष हुआ, वह तो उस समय में पुरुषार्थ हुआ, उस अपेक्षा से अकाल से हुआ, ऐसा कहने में आता है। समय तो वही है। आहाहा! समझ में आया?

नियत और अनियतनय। ये चार लगाते हैं सब। देखो! काल और अकाल। काल में भी मोक्ष होता है, अकाल में—अक्रम में होता है। नियत से होता है, अनियत से भी होता है। परन्तु नियत-अनियत का अर्थ यह है ही नहीं वहाँ। नियत तो आत्मा के स्वभाव से हुआ, उसको नियत कहा। स्वभाव है, उसको नियत कहा और जो निमित्ताधीन होकर विकार होता है, उसको अनियत कहा। अनियतभाव भी अन्दर है, इतना ज्ञान कराने को वह बात कही है। आगे-पीछे की बात वहाँ है ही नहीं। इसी प्रकार यहाँ काललब्धि के

साथ में सब नय लेना, ऐसा कहना है। काललब्धि ली है, परन्तु काललब्धि का ज्ञान कब होता है ? समझ में आया ? टोडरमलजी ने कहा न ? काललब्धि और भवितव्य कोई अलग वस्तु नहीं है। जिस काल में काम हुआ, उसका नाम काललब्धि और उस समय में जो भाव हुआ, उस जाति का, उसका नाम भवितव्यता। बहुत विवाद।

अरे भाई! तेरी पुरुषार्थ की जागृति स्वभाव सन्मुख हो तो सब पक गया है। काल भी पक गया है, पुरुषार्थ भी हो गया (और) अल्प काल में मुक्ति होगी, ऐसा तेरा निर्णय आ गया। हो जायेगा, उसमें शंका रहेगी नहीं। समझ में आया ? परन्तु अन्तर में स्वभाव सन्मुख होकर पुरुषार्थ करके अनुभव करे तो उसको ऐसा ज्ञान होता है। समझ में आया ? अकेली धारणा से बात कहे तो उसको काललब्धि का भी ज्ञान नहीं और पुरुषार्थ का भी ज्ञान नहीं। समझ में आया ? तब पाँच समवाय साथ में मिले न! पुरुषार्थ से स्वभाव-सन्मुख होकर, भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द, उसके सन्मुख होकर, विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव हुआ, प्रतीति हुई—पाँचों समवाय साथ में आ गये। काललब्धि भी उसी समय थी। अकेला काल नहीं है, काल के साथ ४७ नय आदि अनन्त नय हैं। समझ में आया ? परन्तु यहाँ उसको वजन देकर... अर्धपुद्गल (परावर्तन)काल हो, तब वह पायेगा, ऐसा वजन देना है। वजन समझे ? क्या कहते हैं ? जोर। उस पर जरा बल देना है।

यद्यपि सम्यक्त्वरूप जीवद्रव्य परिणमता है... देखो! सम्यक्त्वरूप तो जीवद्रव्य परिणमता है। वह कहा उसमें। भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्यमूर्ति ऐसा अन्तर अनुभवपने परिणमना—होना, वह जीवद्रव्य ही होता है। काल निमित्त है तो काल कराता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? द्रव्यसंग्रह में तो लिया है कि काल है, वह हेय है। काल निमित्त है, ऐसा द्रव्यसंग्रह की टीका में कहा है। परन्तु वह काल हेय है। यहाँ काल (अर्थात्) अपनी पर्याय ली है, परन्तु वह भी वास्तव में तो दृष्टि में हेय है। समझो। समझ में आया ? हमारे बहुत चर्चा चलती थी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पुरुषार्थ करता कहाँ है ? यह कहीं अपने आप पुरुषार्थ उल्टा करे... यह करता है इसलिए... यह करता है इसलिए। विकल्प करता है तो होता है। बिना किये होता नहीं। वहाँ रस लगा। उस पैसे में और इज्जत में रस लगा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टा पुरुषार्थ... उल्टा पुरुषार्थ है। यह उल्टा पुरुषार्थ है। समझ करे तो विकल्प घट जाये। यह किसलिए विकल्प करना? पर का तो होना है, वह होगा। मुझे क्या करना? समझ में आया? पर का जो होना है, वह होगा। मुझे विकल्प का क्या काम है? नहीं, नहीं, ऐसा निर्णय कच्चा है, निर्णय पक्का नहीं। पर का, कुटुम्ब का, देश का, शरीर का होना है, वह होगा। मुझसे क्या होगा? ऐसा निर्णय करने से पर के अनेक प्रकार के विकल्प हट जाते हैं। अब रहा अपने स्वरूप में। समझ में आया? अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वरूप हूँ, मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसा (ज्ञान) होकर, पर में सुख है— ऐसी बुद्धि का विकल्प नाश हो जाता है। परन्तु वह पुरुषार्थ से होता है, कोई बात से नहीं होता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा जब-जब अपने पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शनरूप परिणमन करता है, (तब) वह अपने पुरुषार्थ से ही करता है। समझ में आया? अपना पुरुषार्थ अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शनरूप परिणमन करना, वह आत्मा का ही कर्तव्य है। आत्मा उसका परिणमन करनेवाला है और उसका ही सम्यग्दर्शन कार्य है। **यद्यपि सम्यक्त्वरूप जीवद्रव्य परिणमता है, तथापि काललब्धि के बिना करोड़ उपाय जो किये जायें तो भी जीव सम्यक्त्वरूप परिणमन योग्य नहीं...** यह काललब्धि पर जोर दिया।...यहाँ हमें तो यह कहना है कि समय—काललब्धि हुई, यह पर्याय में होता है। तो पर्याय का ज्ञान कब होता है? कि जब द्रव्य का ज्ञान होता है, तब पर्याय का ज्ञान होता है। आहाहा!...पकड़े रखना। पकड़ रखने जैसा तो उसमें क्या आवे? पर का भी काललब्धि से होता है, होता है तो पर का कर्तापने का विकल्प छूट जाता है और अपना (कार्य) भी काललब्धि से हो तो मैं पर का ऐसा करूँ, राग करूँ, द्वेष करूँ—ऐसा विकल्प छूट जाता है। जब अपने स्वभाव सन्मुख होता है, तब काललब्धि का ज्ञान यथार्थ होता है। यह बात पकड़कर रखना है। समझ में आया?

परन्तु काललब्धि का ज्ञान कब होता है? इस काल में हुआ। इस काल में हुआ उसका ज्ञान कब हुआ? ज्ञान तो, स्वसन्मुख होकर निर्विकल्प आत्मा की प्रतीति और ज्ञान करके जहाँ काललब्धि का ज्ञान आया तो यह आया कि इस समय में पकने का काल था।

यहाँ स्व का ज्ञान हुआ तो काललब्धि का ज्ञान हुआ, नहीं तो ज्ञान होता नहीं। समझ में आया? हमारे तो इस सम्बन्धी बहुत चर्चा पहले से हो चुकी है।

(संवत्) १९८४ के वर्ष में वैशाख में यह चर्चा बहुत हुई थी। दामनगर, ८४। कितने वर्ष हुए? ३९, हाँ। जाना था राणपुर। नारणसेठ थे, वे कहे उन्हें एकान्त में कि यह महाराज पुरुषार्थ से कहते हैं... पुरुषार्थ से कहते हैं, परन्तु शास्त्र में (ऐसा है कि) काल हो तो होता है... काल हो तो होता है। ऐसी बात चली थी। ८४ का ज्येष्ठ महीना। चातुर्मास में जाना था राणपुर। समझ में आया? यह अन्दर बात करते थे एकान्त में। मैं बैठा था सामने और मेरे हाथ में बराबर द्रव्यसंग्रह था। द्रव्यसंग्रह, उसमें काल हेय है, यह आता है न? काल हेय। कहा, देखो! यह अधिकार द्रव्यसंग्रह में वाँचता था। ३९ वर्ष। क्या कहते हैं? काल... काल... काल तो हेय है। समझ में आया? हमारे बहुत चर्चा चलती थी। उसकी बहुत उल्टी दृष्टि थी। .... बहुत अन्दर से। निवृत्त व्यक्ति थे। गृहस्थ व्यक्ति, पैसेवाले व्यक्ति। दस लाख रुपये तब। ६० वर्ष पहले दस लाख और ४० हजार की आमदनी घर में। वह मानो कि हो गये अपने सब... धूल में। पैसे के कारण हुआ, ऐसा कहाँ से आया? लोक में मान बहुत। दशाश्रीमाली में बड़ा मान। इसलिए .... नहीं। काल हेय है।

द्रव्यसंग्रह में आता है। द्रव्यसंग्रह में आता है। ऐ छोटाभाई! कहाँ गये छोटाभाई? टीका में आता है। जहाँ काल का अधिकार आता है, वहाँ। काल हेय है। कहा, देखो! काल हेय है। उपादेय उसको—काल को करना है? यहाँ आया न? शुद्ध उपादेय, भगवान की वाणी में आया है। भगवान की वाणी में आया है कि शुद्धजीव उपादेय है। आया, ऐसा जो करे, उसकी काललब्धि पक गयी। समझ में आया? भगवान ने कहा—भगवान की वाणी में आया कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। तो सम्यग्दर्शन का अर्थ भगवान की वाणी में क्या आया? विपरीताभिनिवेश रहित अभिप्राय। उसका अर्थ क्या हुआ? स्वभाव सन्मुख होकर अविपरीत अभिप्राय करना, सम्यग्दर्शन करना, विपरीत अभिनिवेश का नाश होना, वह तो पुरुषार्थ से आया। समझ में आया?

अन्तर्मुख होना और विपरीत अभिनिवेश का नाश करना और अविपरीत अभिनिवेश—अभिप्राय अर्थात् सम्यक् का प्रयोग करना। भगवान की वाणी में ऐसा आया है। समझ में आया? यह तो जाननेयोग्य बात की है। जाननेयोग्य है, ऐसी बात की है।

देवीलालजी! बहुत गड़बड़ चलती है। अपना स्वरूप पुरुषार्थ से प्रगट होता है। पुरुषार्थ में स्वभाव भी आ गया, काल भी आ गया, भवितव्य भी आ गया और कर्म का अभाव होता है... होता है... होता है। उस समय में कर्म न हटे-न टले, ऐसा हो नहीं सकता। तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? यहाँ काललब्धि का ज्ञान करना है। यह बात सूक्ष्म है, भाई! एक ओर क्रमबद्ध होता है, काल में होता है, यह सिद्ध करना है, एक ओर पुरुषार्थ को सिद्ध करना है—दो बात सिद्ध करना है। आहाहा!

क्रमबद्ध में ही होगा। जिस समय में उसका मोह क्षय होगा, तभी तो केवलज्ञान (होगा)। सम्यग्दर्शन जिस समय में होनेवाला है, तभी होगा। गजब! समझ में आया? परन्तु इस समय में होगा, उसका ज्ञान कब होगा? यह पर्याय का ज्ञान कब होगा? सम्यक् हुआ, अनुभव हुआ, उसका ज्ञान कब होगा? स्वभाव-सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति करते हैं, तब स्वभाव का भान हुआ, पुरुषार्थ का बोध हुआ, कालनय का हुआ, अकालनय का हुआ, क्रिया का हुआ, ज्ञाननय से मुक्ति—सबका ज्ञान साथ में हो गया है। आहाहा! भारी गड़बड़। समझ में आया? उसमें आता है। दैव का आता है न नय में? दैव का आता है।

राजेन्द्रकुमार का बहुत लेख आया है। क्योंकि तीन वर्ष पहले कहते थे... मैंने तीन बार समयसार देखा। कर्म से ही विकार होता है, यह निश्चय है। यह फिर याद आया सवेरे उठते हुए। यह क्यों आया अभी? ऐसे कैसे आया उनका? कर्मसम्बन्धी का क्यों आया? कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, कर्म से विकार होता है। गोम्मटसार में कर्म से विकार होता है, (ऐसा) आवे। ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, वह भी आवे। समयसार में (भी) ऐसा आवे। क्योंकि द्रव्यदृष्टि कराना है तो विकार-फिकार पुद्गलपरिणाम है, ऐसा सब निकाल देना। उसमें भी आवे। पकड़ लिया कि लो, विकार कर्म से होता है। नहीं... नहीं, सुन तो सही! समझे बिना... समझ में आया?

आया है, कल बहुत आया है। बहुत जोर करते हैं। सेवक समाज बनाओ और विरोध करना है हमें। चर्चा हो गयी है, सब हो गया है। चर्चा सब बाहर आ गयी है। अब किसके साथ चर्चा करना? ऐसा कि सोनगढ़ के विद्वानों के साथ करना है, इसलिए फूलचन्दजी और यह सब। उनके साथ चर्चा... वह तो हो गयी चर्चा। कर्म से विकार होता

है ? तुझे पुरुषार्थ करने का अवसर कहाँ रहा ? भगवान ने ऐसा कहा है ? जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवे नहीं। तुम तो महन्त (रहना चाहते हो कि) हमें विकल्प आता है, हमें राग आता है, वह कर्म के कारण से आता है। बिल्कुल झूठ है। तुम पुरुषार्थ उल्टा करते हो तो विकार और राग-द्वेष आता है। जेठालालभाई! तुझे तो महन्त रहना है। हमारा न चले तो हमें क्या करना ? हमारा दोष नहीं। आहाहा! बेचारे कर्म को तो खबर भी नहीं। कर्म तो बेचारा जड़ है, धूल है, मिट्टी है, अजीव है, रूपी है, पुद्गल है। उसको तो भान भी नहीं कि उसको दोष होता है वह मेरे पर डालता है।

मुमुक्षु : जाननेवाले को भी भान नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! उसे भान तो है, तब तो यह बोलता है। नहीं तो मेरे (उल्टे) पुरुषार्थ से विपरीतता मुझसे है। और हमारे यहाँ कितने ही ऐसा कहते हैं, वे लोग ऐसा कहते हैं कि काललब्धि से होगा, हमारे क्रमबद्ध में आयेगा, तब चारित्र लेंगे। किसने कहा ऐसा तुझे ? ऐसा कि चारित्रबुद्धि... व्रत-नियम क्यों नहीं लेते ? क्रमबद्ध में होगा, तब आयेगा, इसलिए नहीं लेते। अरे! सुन भाई! किसने कहा तुझे ? अपना पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख उग्र नहीं होता, इस कारण से चारित्र नहीं आता है। कोई चारित्र क्रमबद्ध के कारण से नहीं आता, ऐसी बात है ? समझ में आया ? जितना पुरुषार्थ स्वभाव-सन्मुख होकर चारित्र अन्दर प्रगट करने (को चाहिए), इतने पुरुषार्थ की कमी के कारण से चारित्र नहीं आता है। समझ में आया ?

उस क्रमबद्ध का निर्णय करने जाये... वहाँ डाले क्रमबद्ध। वे लोग (-सोनगढ़वाले) ऐसा जवाब देते हैं, क्रमबद्ध में होगा, तब चारित्र होगा। अरे भगवान! किसने कहा ? प्रभु! ऐसा आक्षेप न कर। समझ में आया ? अपने स्वरूप-सन्मुख पुरुषार्थ की कमी है, स्थिरता की कमी है, तो चारित्र नहीं होता। चारित्र तो अपने पुरुषार्थ की उग्रता बहुत हो (तो हो)। चारित्र अर्थात्, ओहोहो! परमेश्वर दशा! साधुदशा अर्थात् ? 'मनुष्य होना मुश्किल है, साधु कहाँ से होय, साधु हुआ तो सिद्ध हुआ, कहना रहा न कोई।' साधु हुआ गजब... आहाहा! यह वह साधु किसे कहते हैं ? गणधर का जिसको नमस्कार पहुँचे, तीन कषाय का अभाव, धन्य अवतार... वीतरागता... वीतरागता... वीतरागता... असंख्य प्रदेश में छाई रहे। शान्त उपशमरस जहाँ ढल जाये, उपशमरस का ढाला ढले, ऐसी चारित्र की दशा अलौकिक है।

यह अपने पुरुषार्थ की कमी से नहीं आता। कोई कर्म के कारण से, कर्म रोकता है तो नहीं आता, ऐसा नहीं है। और क्रमबद्ध काल में (लिखा होगा तो) पकेगा, ऐसा तो कभी कहा ही नहीं। देवीलालजी! ऐसा है ही नहीं। अरे! भारी गड़बड़ करते हैं।

क्रमबद्ध का निर्णय करने में उसे कितने विरोध खड़े करने पड़ते हैं। यहाँ भी यही कहा, देखो! काललब्धि... काललब्धि... वह कहे, नहीं, काललबिध नहीं। भाई! काललब्धि में (होनेवाला) होगा, सम्यग्दर्शन तभी होगा। परन्तु होगा तब काल का ज्ञान आयेगा। इससे पहले काललब्धि का ज्ञान होता नहीं। बातें करना है? काल में होगा... काल में होगा, ऐसी (मात्र) बात करना है? समझ में आया?

मुमुक्षु : हमको भले न हो, भगवान ने कहा है उस प्रकार से तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने क्या कहा है? भगवान ने कहा कि तुम शुद्ध आत्मा उपादेय करो—ऐसे कहा है। वह तो पहले आया। बाद में यह बात चलती है।

भगवान की वाणी में आया कि अहो प्रभु! आनन्दमूर्ति प्रभु चैतन्य हो न? तुम्हारे में तो अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है न? नाथ! उसका आश्रय लो... आश्रय लो... भगवान ने तो ऐसा कहा। समझ में आया? अभी सम्यग्दर्शन नहीं, ज्ञान-चारित्र कुछ नहीं है। तो पहले भगवान की वाणी में ऐसा आया कि वस्तुस्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसकी दृष्टि करो। तुम्हारे पुरुषार्थ की कमी से दृष्टि नहीं होती है। दूसरा कोई कर्म-बर्म अवरोधक है, ऐसा नहीं है। यह बात है। समझ में आया? एक समय में भगवान आत्मा अपना चैतन्य का माहात्म्य करके जहाँ अन्दर में पुरुषार्थ करे, समझ में आया? अर्पणता... शुद्ध है, पूर्णानन्द है, ऐसी निर्विकल्पता से अर्पणता कर दे तो काललब्धि भी पक गयी, पुरुषार्थ हो गया और पाँचों समवाय और ४७ नय एक साथ में आ गये। समझ में आया? बात बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

समझना (है कि) जिनेश्वर ने कहा मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का है, ऐसा जो करता है, उसको दूसरे कारण मिलते ही हैं। इसमें क्या किया उसने? कारण मिलते हैं, ऐसा कहा। भगवान जिनेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ की आज्ञा है, 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'—ऐसा परमात्मा ने फरमाया है, तो ऐसा जो स्वभाव-सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन

करता है, उसको सब कारण आ गये। काललब्धि पक गयी, पुरुषार्थ हो गया, कर्म का नाश उस समय में होता ही है। सब आ गया। तुझे क्या करना है ? वास्तविक तत्त्व है, उसका पुरुषार्थ करना नहीं और बहाना ले लेकर बचाव करना, यह मार्ग में नहीं चलता। समझ में आया ? क्या करे ? हमारे कर्म में धर्म लिखा ही नहीं है। किसने कहा ऐसा ? कर्म तो जड़ है। जड़ में धर्म है ? हमारे नसीब में नहीं है, क्या करे ? समझ में आया ? कर्म तो धूल है, धूल में तो पैसा मिले, निरोगता मिले। सरोगता हो तो कर्म है उसमें निमित्तरूप। वह भी निमित्तरूप है। विकल्प—राग, वह कर्म कराता है ? समझ में आया ?

और धर्म नहीं करते, तो कर्म का जोर है तो धर्म नहीं करते ? तेरा पुरुषार्थ उलटा है। उसमें राग रुचता है, राग रुचता है, रागरूपी विकल्प रुचते हैं, पोषाण उसका है। उस कारण से स्वभाव सन्मुख नहीं होता। समझ में आया ? चाहे तो गणधर हो, चाहे तो समकिती तिर्यंच हो, अपनी पर्याय में राग का परिणमन है, उसको जानते हैं कि मेरी पर्याय में कमी है राग की। कर्तृत्वनय से मेरे परिणमन में कमी है, ऐसा जानते हैं। स्वभाव-सन्मुख हुआ, पुरुषार्थ से सम्यक् पाया और चारित्र पाया। पुरुषार्थ से स्वरूप-सन्मुख होकर आनन्द, चारित्र पाया। तो भी मुझमें राग परिणमन है, ऐसा कर्तृत्वनय को जानते हैं। कर्म के कारण से है, ऐसा नहीं। मैं ही पराधीन होकर, निमित्त के आधीन होकर थोड़े रागरूप परिणमता हूँ। काललब्धि के कारण से (पूर्णता) नहीं (होती), ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! भारी गड़बड़ ! बात तो ऐसी है, भाई ! अब इसे अन्तर में बैठे बिना यह बात सन्देह टले नहीं, नि:सन्देह हो नहीं, अन्दर विकल्प का जाल अनेक प्रकार का खड़ा करे।

जीवद्रव्य परिणमता है... अटलक की गैरबाजवी है। वह अटलक होती है न अटलक, नहीं ? अटलक क्या कहलाती है ? साटिन। साटिन का होता है न। ....पाटला जैसा आवे न। वह घढ़ी सब नहीं बैठा सकते। वह व्यापारी हो, वही बैठा सकता है। उसे खबर न हो तो चौड़ा करे तो घढ़ी नहीं बैठा सकता, इसी प्रकार एक-एक नय का विषय भगवान ने कहा.... पुरुषार्थ से तेरा आत्मा प्रगट होता है। पाँच समवाय में भी पुरुषार्थ मुख्य है। काललब्धि है सही, परन्तु उस काललब्धि का ज्ञान... भगवान ने कहा, भैया ! सम्यग्दर्शन विपरीत अभिनिवेश रहित प्रगट करो। विपरीत अभिनिवेश टालने का उपाय स्वभाव सन्मुख हो, तो विपरीत अभिनिवेश टलेगा, तब काललब्धि भी हो गयी। उसको

निर्णय हो गया कि मैं अल्प काल में ही केवलज्ञान पानेवाला हूँ। मुझे संसार-फंसार है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : काल का .... पाँचों...

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचों। वहाँ एक भी नहीं। एक कारण नहीं, वहाँ कोई भी नहीं। एक कारण है तो पाँचों कारण साथ में ही हैं। समझ में आया? बहुत गड़बड़ है, भाई!

कहते हैं, **सम्यक्त्वरूप जीवद्रव्य परिणमता है।** सम्यग्दर्शनरूप, चारित्ररूप, आनन्दरूप, केवलज्ञानरूप तो आत्मा ही परिणमन करता है। कोई काल परिणमन कराता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **तथापि काललब्धि के बिना करोड़ उपाय जो किये जायें तो भी जीव सम्यक्त्वरूप परिणमन योग्य नहीं, ऐसा नियम है। इससे जानना कि सम्यक्त्व वस्तु यत्नसाध्य नहीं....** अकेला पुरुषार्थ से साध्य नहीं, ऐसा। उसमें पाँचों समवाय आ जाते हैं। इसमें दो-तीन जगह बात है। उसमें नहीं लिखा। दो-तीन जगह है। उसमें लिखा नहीं। एक ३३ पृष्ठ में है इसमें। कलश... इसमें लिखा नहीं। कलश... ३३ पृष्ठ। कलश है २३। कलश २३ उसमें है। भावार्थ है उसमें? देखो! २३, कौन सी लाईन है? देखा!

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध चैतन्य का अनुभव तो सहज साध्य है। यत्नसाध्य तो नहीं है। वहाँ भी यह डाला है। सहज पुरुषार्थ... भावार्थ है। नीचे से आठ। नीचे हिन्दी में है। हिन्दी में आठवीं लाईन है। यत्न साध्य नहीं, सहजसाध्य अर्थात् स्वभाव पुरुषार्थ के साथ है। ऐसा अकेला... इसमें है। देखो! ६२वें पृष्ठ पर है इसमें। ६२, ६२। वह सहजसाध्य है, वहाँ तो अकेला कहा है। है न? ६२ है न। ६२ कहा? आहाहा! यह कलश... इसमें तो दूसरा कलश है उसका—कर्ताकर्म अधिकार का। हाँ।

परन्तु काललब्धि पाकर अपने स्वरूप को अनुभवशील हुआ। कोई विपरीत माने तो ऐसा कहे कि काललब्धि ऐसी है। दूसरा श्लोक है, **परपरिणतिमुज्जत।** कर्ता-कर्म का। कर्ता-कर्म का दूसरा कलश। है न? हिन्दी चलता है न! यह हिन्दी... देखो! **काललब्धि पाकर अपने स्वरूप को अनुभवशील हुआ।** यह तीसरी लाईन। **काललब्धि पाकर अपने स्वरूप का अनुभवशील...** हो, ऐसा। समझ में आया? अपने स्वरूप का अनुभव करो, दूसरा न कर सके तो उसे याद करो, ऐसा मूल तो पाठ है उसमें। हिन्दी में

ऐसा पाठ है। याद करना, ऐसा है, हों! **काललब्धि पाकर अपने स्वरूप का अनुभवशील....** हो। बराबर है ? बहुत ठिकाने आया है।

२८० पृष्ठ है इसमें। उसमें क्या आयेगा ? २८०। कलश है ५२ सर्वविशुद्ध अधिकार का। '**इति इदम् आत्मतत्त्वं**' यहाँ कलश है ५२, सर्वविशुद्ध अधिकार। '**अलं इति**' फिर '**इति इदम् आत्मतत्त्वं**' ५४वाँ कलश। २१६ आया न उसमें। इस और होगा। कितना है ? २१६ पृष्ठ। ५४ है न ? नहीं, निकाल दिया है। ज्ञानरूप से चलित... इसमें तो लिखा है, हों! उसमें तो पाठ है। इसमें तो निकाल दिया है, इसमें लिखा है। स्वसंवेदन कहते ज्ञानगुण से स्वानुभवगोचर हो, अन्यथा कोटि जतन करने पर ग्राह्य नहीं है। पुराने में है। है ? है ? क्या ? ५४ में ? रह गया है, इसमें नहीं। इसमें नहीं। उसमें होगा। उसमें एकाध बोल निकाल दिया है। यह यहाँ चाहिए। स्वसंवेदन है... अपने से अपने को जानता है... वहाँ तक। वहाँ थोड़ा बाकी रह गया है। ऐसा कैसे हो गया ? ठीक है। ऐसी एक शैली है जरा उनकी। समझ में आया ?

इससे जानना कि समकित वस्तु यत्नसाध्य नहीं... यह बताया। अकेले पुरुषार्थ साध्य नहीं, साथ में सब होना चाहिए। काललब्धि, स्वभाव (आदि) सब साथ में होता है। स्वभाव-सन्मुख होता है, तो सब साथ में होता ही है, ऐसा निर्णय करना। एक कारण मिले तो पाँचों कारण साथ में मिलें ही मिलें। स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि करने से एक कारण बना, तो सभी कारण साथ में मिलते ही हैं। कोई कारण बाकी रहे, ऐसा होता नहीं। बस, काललब्धि हो गयी उसको। ख्याल भी आ गया कि ओहो! मेरा संसार समाप्त हो गया। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई!

काललब्धि समझना और पुरुषार्थ साथ में रखना—दोनों बात हैं। अकेला काललब्धि... काललब्धि करे, क्रमबद्ध... क्रमबद्ध करे, काललब्धि कहो या क्रमबद्ध कहो, ऐसा नहीं चलता। हाँ, क्रमबद्ध है तो वस्तु.... वीरजीभाई कहते थे एक बार। क्रमबद्ध... क्रमबद्ध ऐसे नहीं चलता, ऐसा कहते थे। एक बार बैठे थे वहाँ। स्वभाव सन्मुख होकर आनन्द का—ज्ञान का अनुभव करे, तब क्रमबद्ध होता है, ऐसा ज्ञान उसके ख्याल में आता है। ऐसे क्रमबद्ध.... क्रमबद्ध करे तो कैसे चले ? समझ में आया ? कर्तापना छूट जाये, ज्ञातापना रह जाय... हाँ, मैं पर का कर सकता हूँ, मुझे ऐसा हुआ... ऐसा हुआ...

ऐसा अनुकूल रखूँ तो मुझे ठीक होगा, पैसा-बैसा मेरे पास थोड़ा रहे तो लोगों को आशा रहे, लड़का, स्त्री बहुत सेवा करे, खाली हो तो सेवा नहीं करे—यह सब विकल्प झूठे हैं। आहाहा! ऐसा नहीं होता, अपने आप आनेवाला हो (वह आवे और) होनेवाला हो, वह होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं, बिल्कुल झूठ है। अरे! होनेवाला हो, अपने आप हुए बिना रहे नहीं।

एक वृद्ध था। उसने रखा था ऐसा। ट्रंक (सन्दूक) रखा पत्थर भरके। फिर चार बहुएँ, लड़कों की चार बहुएँ, उनको बतावे। घर में आवे तो। ट्रंक का ध्यान रखना... ट्रंक का ध्यान रखना। बहू को ऐसा लगे कि निश्चित, बापू के ट्रंक में कुछ पड़ा है। थे पत्थर। बहुत ऊँचा करके देखे तो भार लगे। तो वह कहे, बापूजी! आज मैं आऊँगी पकाने और सब करने। ठीक, तू आना। वह चौथी कहे, मैं आऊँगी। वह कहे, मैं आऊँगी। ऐसे करते हुए अन्त में मृत्यु आयी तब एक जणी-बहू ही लगी और वहीं की वहीं रही। ऐसा कि निश्चित इसमें से अपने को कुछ मिलेगा, मर जायेगा इसलिए। मर गये और उघाड़ा, वहाँ पत्थर निकले। ऐ सेठ!

परन्तु वह उसे होने का था तो हुआ। पैसे कहाँ? यहाँ तो कहते हैं, जो बाहर की चीज़ आनेवाली है, वही आयेगी। परसों कहा था न? दाना, एक-एक दाने पर मोहरछाप पड़ी है। दाना, शक्कर, दूध, पानी... एक-एक बिन्दु। एक-एक रजकण... पानी का बिन्दु, जो रजकण-पानी यहाँ आनेवाला है, जो दवाई यहाँ आनेवाली है, जो सब्जी आनेवाली है, जो आहार का रजकण—चावल, दाल, भात, रोटी, आनेवाली है... आनेवाली है तो आयेगी ही आयेगी। तेरे विकल्प से रुक जाये, विकल्प करे तो आ जाये, ऐसी चीज़ है नहीं। ऐसी श्रद्धा ज्ञानी को हो जाती है, तब पर के कर्ता का विकल्प छूट जाता है।

हाँ, ऐसा लाऊँ, ऐसा लाऊँ, ऐसी दवा करूँ तो ऐसा हो... धूल भी नहीं होगा। जो होनेवाला होगा, वह होगा। डॉक्टर मर जाते हैं न? ऐई मणिभाई! मणिभाई ने बहुत दवा की। क्या करे? वह तो जिस समय में जो जड़ आनेवाला है, (वह आयेगा और) पैसा नहीं

आनेवाला है तो राग तेरा (कितना) भी कर तो नहीं आयेगा। समझ में आया ? यह लींबड़ी के दरबार का छोटा लड़का था। अपेन्डिक्स हुआ। क्या हुआ ? एकदम जवान कुँवर १४ वर्ष का लड़के का लड़का। राजगद्दी पर बैठेगा, उसका लड़का। ऐसी पीड़ा... उसके बाप का बाप—दादा गद्दी पर। दादाजी... क्या कहे ? दौलतसिंह गादी पर। लड़का रोवे तो देखा न जाये वृद्ध को। दस लाख की आमदनी। रोवे... रोवे... वृद्ध-राजा भी रोवे। आँखें ऐसी एकदम लाल हो गयी। बुलाओ डॉक्टर को मुम्बई से स्पेशल (ट्रेन द्वारा)। स्पेशल आयी। रेल—स्टेशन पर जाये, वहाँ लड़का मर गया। आयी जहाँ स्पेश्यल... क्या करे ? धूल करे ? आनेवाला आवे, न आनेवाला न आवे, क्या तेरे पुरुषार्थ से चीज़ आती है ? दस लाख का तालुकादार। कितना पैसा खर्चा होगा ? और राज का लड़का मर गया तो बहुत दुःख हुआ। बहुत दुःख हुआ। कोई उसके पास जाये... क्या कहलाता है ? सामने। सामने न जाने दे। एकदम लाल आँखें... मनाही है, न जाओ, उसे दुःख होगा। इतने पैसे खर्च किये। दस लाख का तालुकादार, स्पेशल बुलाई, जहाँ आयी वहाँ मर गया। उसमें कौन करता था पुकार ?

और वे रजकण आवे तो भी वहाँ परमाणु में परिणमन होना हो तो होता है। भाई ! तुझे खबर नहीं। क्रमबद्ध का निर्णय करने में तो वह है कि किसी भी रजकण की पर्याय जिस समय में आनेवाली है, वह किसी से रुक जाये, कोई उसे ला सके, तीन काल में (ऐसा) है नहीं। आहाहा ! ऐसी शरीर की पर्याय भी जिस समय में जो (होनेवाली) है, वह होगी। तेरे कल्पना करने से व्यवस्थित रहे, (ऐसा नहीं है)। मैंने कल्पना की, इसलिए साता अच्छा रखता हूँ। मूढ़ है। सब छूट जायेगा। पीछे आता है विकल्प, परन्तु वह अस्थिरता का आता है। अभिप्राय में ऐसा नहीं है कि मुझे विकल्प आया, इसलिए ऐसा शरीर को बना दूँ। उसका नाम क्रमबद्ध और काललब्धि का तात्पर्यफल है कि पर में कर्ताबुद्धि छूट जाये। समझ में आया ? आहाहा !

उपदेश के वाक्य निकलते हैं, वह अपने से नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! वस्तु तो जड़ है। जड़ को कौन करे, भाई ? तुझे खबर नहीं। यह कण्ठ का कंपना, हिलना, वह तो अनन्त परमाणु के पिण्ड / स्कन्ध की दशा है। वह कँपे और (वाणी) खिरे, वह

तो स्वयं की पर्याय के कारण से। आत्मा के कारण से है नहीं। आत्मा उपदेश कर सकता है? वाणी निकाल सकता है? कौन करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कारण यह कि उल्टा पुरुषार्थ। उल्टे पुरुषार्थ से विकल्प करता है। दूसरा कोई कारण है नहीं। यहाँ कहते हैं, ओहो! भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमता है, तब काललब्धि आदि सब ज्ञान में ख्याल में आ जाती है। (सब) एक साथ होता है।

कलश - ५

पाँचवाँ श्लोक।

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥५॥

'व्यवहरणनयः यद्यपि हस्तावलम्बः' जितना कथन... व्यवहारनय की व्याख्या यह कि जितना कथन। अन्दर में जाननेवाला (ज्ञान), वह बात नहीं ली यहाँ तो। वह तो राग हो, उस जाति का ज्ञान हो—यह सब उसमें गया कथन में गया। व्यवहार अर्थात् जितना कथन। **जीववस्तु निर्विकल्प है। वह तो ज्ञानगोचर है।** भगवान आत्मा निर्विकल्प है। वह तो अन्तर के ज्ञान से अनुभव में आनेवाली चीज़ है। कोई व्यवहार से विकल्प किया कि समझाने का विकल्प आया—उससे समझने में आनेयोग्य चीज़ नहीं है। समझ में आया? जीव—भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड प्रभु, रागरहित अभेद चीज़ है। निर्विकल्प शब्द नहीं लिया। वह ज्ञानगम्य है। अपने अन्तर ज्ञान से, स्वसंवेदन करे तो ज्ञान से अनुभव में आनेवाली चीज़ है। कोई राग से, निमित्त से, सुनने से वह अनुभव में आवे, ऐसी चीज़ है नहीं। यह चीज़ ऐसी नहीं है। आहाहा!

वही जीववस्तु को कहना चाहें, तब ऐसे ही कहने में आता है... चाहे जिस रीति

से जीववस्तु को कहो, तो इतना थोड़ा तो कहने में आता ही है। क्या ? **जिसके गुण दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह जीव।** देखो भाई ! यह आत्मा है न, श्रद्धा करनेवाला, जाननेवाला, रमण करनेवाला, वह आत्मा। इतना कहना भी व्यवहार हो गया। समझ में आया ? कहते हैं, अन्तर में विकल्प में ऐसा रहे कि यह आत्मा दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। रागसहित है, यह तो बात ही नहीं की, देखो ! कर्मसहित है, यह बात ही नहीं, नय की तो यहाँ बात ली ही नहीं। अन्ततः इतना एक नय आये बिना रहता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? मैं कर्म सहित हूँ, यह बात ही नहीं और राग मुझमें है, यह बात भी नहीं। मेरी वस्तु... वस्तु तो निर्विकल्प अभेद है। यह गुण कोई वस्तु से पृथक् नहीं पड़ते। जैसे यह लड़की है, देखो ! सूखड़ की। लकड़ी तो लकड़ी है। उसमें सुगन्ध, मुलायमपना, वजन भिन्न करके कहा (जाता है, परन्तु) वस्तु में भिन्नता है नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा एकरूप अनन्त गुण का पिण्ड है। वस्तु निर्विकल्प है—अभेद है। थोड़े में थोड़ा (कहने) की रीति हो तो वह आत्मा... कहनेवाला कहे तो अपने में विकल्प उठे। समझ में आया ?

यह दर्शन—श्रद्धा करनेवाला आत्मा, जाननेवाला आत्मा, स्थिरता होती है, यह आत्मा—ऐसा व्यवहार भी आता है। अभेद को बताता है, ऐसा व्यवहार बीच में आया, (परन्तु) आदरणीय नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपकारी क्या है ? उसका लक्ष्य छोड़कर अभेद करे तो उसे निमित्त कहने में आता है। आहाहा ! गजब बात डाली। वीतरागमार्ग... अकेला वीतरागी पिण्ड प्रभु। आहाहा ! समझ में आया ?

उसकी समझण में भी ऐसा विकल्प आया... दूसरा विकल्प तो क्या ? मैं कोई विशेष समझता हूँ, मैं कषाय की मन्दता करता हूँ, मुझमें विशेष ज्ञान हुआ है—ऐसा दृष्टि में अधिक(पना) रह जाये, उस व्यवहार की बात तो यहाँ की ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया ? जो उसमें है नहीं, उसकी तो बात की ही नहीं। जैसे कि ज्ञान सूक्ष्म हो जाये विशेष, अन्दर में ऐसा रहे कि मैं विशेष हूँ, मैं अधिक हूँ, उस नय की बात तो यहाँ की ही नहीं। वह तो मिथ्यात्व में चला गया। आहाहा ! समझ में आया ?

जो उसमें नहीं है, ऐसी राग की मन्दता की क्रिया की और थोड़ा क्षयोपशमज्ञान हुआ तो उसमें (माने कि) मेरा ज्ञान विशेष है... मेरा ज्ञान विशेष है, मैं कुछ अधिक हूँ— ऐसा भी अन्तर में रहे, वह तो मिथ्यात्वभाव हुआ। जो उसमें नहीं, उससे मैं बढ़ गया, ऐसा माना, उसकी बात तो यहाँ ली ही नहीं। यह ज्ञान-दर्शन तो जो उसमें है, उसकी बात लेते हैं। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी तो बात नहीं। यह तो अन्दर में अभेद में है, उसको भेद करके यह दर्शन, यह ज्ञान, यह चारित्र (कहना), यह व्यवहार है। इतना आये बिना रहता नहीं। भेद है। आहाहा! क्या कथनी, परन्तु कथनी व्यवहार को सिद्ध करने की (और) निश्चय को आदरने की!

कहते हैं कि भाई! जिसको अन्दर में ऐसा शल्य रह जाये कि मैंने तो क्रियाकाण्ड किया है, मैं तो ५०-५० वर्ष से व्रत पालता हूँ, ब्रह्मचर्य पालता हूँ, समझ में आया? और शास्त्राभ्यास मैं करता हूँ, शास्त्राभ्यास से मुझे दूसरे को समझाने की शक्ति बढ़ गयी है— (ऐसा) अभिमान है तो मिथ्यात्व का पोषक है। मिथ्यात्व में बढ़ा है। वह मिथ्यात्व बड़ा शल्य है। समझ में आया?

ज्ञानी के पास कोई विशेष क्षयोपशम न हो तो वह बोले नहीं। इसको (अज्ञानी को) लगे कि बोलने में मैं बढ़ गया हूँ। उसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की विराधना करके... समझ में आया? क्या कहते हैं? वस्तु में जो दर्शन-ज्ञान है, वस्तु में—अभेद में जो अनन्त गुण(रूप) भेद है, उसका इतना तो भेद (करना पड़ता है), आहाहा! विकल्प से समझानेवाला या समझनेवाला ऐसा भेद करे कि दर्शन (अर्थात्) त्रिकाल वस्तु की श्रद्धा करना, त्रिकाल का ज्ञान करना, त्रिकाल में स्थिर होना। ऐसा भेद, अभेद को बताता है, पर भेद में ही रह जाये तो भेद तो हेय है। अन्दर वस्तु है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, उसे पाना, ऐसा भेद भी हेय है। समझ में आया? अन्दर में है ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकरूप में भेद करते हैं, वह झूठा है। चाहे जो बुद्धिवाला हो,

समझनेवाला हो, (परन्तु) इतना (भेद) तो अन्दर में आये बिना रहता नहीं। खेद है, ऐसा कहेंगे। समझे? अन्त में... आता है न! किसमें? इसमें ही आया है। वे कहते हैं न, टीका में लिया है भाई ने अध्यात्म तरंगिणी में। बहुत... लिया है। खेद है। हम तो शब्द में अनुमोदन करते हैं। खेद है कि ऐसा व्यवहार विकल्प आया कि यह दर्शन, यह ज्ञान। हमारा चले तो उसका आश्रय लिये बिना हम अनुभव करें। परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इतने कहने का नाम व्यवहार है।** देखो! समझ में आया?

जो कोई बहु साधिक... साधिक का अर्थ क्या किया है? देखो! बुद्धिवाला विशेष हो। समझ में आया? **कोई बहु साधिक (-अधिक बुद्धिमान्) हो तो भी ऐसा ही कहना पड़े।** ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। इतना बस है, दूसरी कोई चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इतने कहने का नाम व्यवहार है।** आहाहा! समझ में आया? परलक्ष्यी ज्ञान, परलक्ष्यी राग की मन्दता और देव-गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव और पंच महाव्रत का भाव—यह सब तो वस्तु में है ही नहीं। समझ में आया? वह तो वस्तु में है ही नहीं। उससे अधिक मानना, वह तो व्यवहार—मिथ्यात्व व्यवहार है। समझ में आया? भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। आत्मा वीतरागस्वरूप है। अपना वीतरागी स्वरूप... यह वीतरागभाव, वह आत्मा, समझे? यह भी भेद हो गया। वीतरागदृष्टि में इतना शल्य भी काम नहीं करता। समझ में आया? ऐसी निर्विकल्प चीज़ में भेद करके... चाहे जो बुद्धिवाला हो। समझ में आया? (उसे) इतना तो कहना पड़ेगा। इसका नाम व्यवहार है। कहो, यह व्यवहार की व्याख्या। इतना व्यवहार तो आया... वह व्यवहार निश्चय का कारण नहीं है। समझाते क्या हैं? अभेद में जा। अभेद में जाये तो व्यवहार को निमित्तरूप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

'हरि का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' प्रभु का मार्ग—वीतराग का मार्ग शूरवीर का है। समझ में आया? यह पामर का मार्ग नहीं है। एक बार कहा था न वह नपुंसक का—पावैया का? नपुंसक क्यों कहते हैं? आचार्य जो कहते हैं, वह करुणा से कहते हैं, हों! करुणा से... नाथ! तेरा स्वरूप तो अभेद है न प्रभु! राग, पुण्य से मुझे धर्म होगा, ऐसी मान्यता तुम करते हो, वह तो नपुंसक(पना) है। क्योंकि उसकी मान्यता से तुम निगोद में—नपुंसक में जाओगे। तत्त्व का विरोध करते हो (तो) तुम तुम्हारा विरोध करते

हो। ज्ञान हीन हो जायेगा, प्रभु! निगोद में रहना पड़े। अनन्त काल में त्रस होना मुश्किल है। भाई! यह जेल के दुःख महाकठिन हैं। अपनी पर्याय जहाँ हीन हो जाये, ऐसी चीज़ का दुःख, वह तो दुःख वेदनेवाला जाने। भाई! ऐसा न कर, प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? नपुंसक कहकर करुणा (बताते हैं)। ऐसा मेरा कहना है। ऐसे तिरस्कार नहीं करते।

भाई! तेरा पुरुषार्थ स्वभाव पूर्ण है न, स्वभाव की दृष्टि करके शुद्धस्वरूप की रचना करना, वह पुरुष का पुरुषार्थ है। राग की रचना करना और अन्दर समता—वीतरागता प्रगट नहीं करना और राग को उल्लंघ नहीं सकता, (वह) पुरुषार्थ नहीं, (वह) पुरुष नहीं। आहाहा! भाई! तेरा वीर्य हीन हो जायेगा। समझ में आया? वस्त्र-पात्र रखकर... भगवान करुणा से कहते हैं, हों! वस्त्र-पात्र रखकर साधुपना मानेगा तो निगोद में जायेगा, प्रभु! हों! नाथ! यह तुझे कठिन पड़ेगा। करुणा है। समझ में आया? क्योंकि तुम नौ तत्त्व की विराधना करते हो। तेरी पर्याय की विराधना हो जायेगी, भाई! तुझे दो इन्द्रियपना मिलना मुश्किल पड़ेगा, भाई! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्यभाव, राग मन्द करे तो पुण्य बँधे। उसमें मैंने धर्म किया, ऐसा माने तो मिथ्यात्व का महापाप बँधे। भले दो इन्द्रिय हो अन्दर में। पानी की बूँद न पीवे। मैं बैठ गया हूँ... यह तो शरीर है। मैंने शरीर को यहाँ रखा, यह दृष्टि(वान) अजीव का स्वामी होता है, मिथ्यादृष्टि है। थोड़ी कठिन बात है, भैया! यह तो वीतराग का मार्ग है। यह कहीं पोल चले, ऐसा नहीं है। हाँ, थोड़ा अभ्यास करे, भाई! और नरम पड़ जाना चाहिए। आहा!

कहते हैं कि **यहाँ कोई आशंका करेगा कि वस्तु निर्विकल्प है, उसमें विकल्प उपजाना अयुक्त है।** ऐसी शंका करे। परन्तु वस्तु तो निर्विकल्प है, उसमें भेद करना, विकल्प करना तो अयुक्त है। बात तो सच्ची है, परन्तु ऐसा आये बिना रहता नहीं और खेद करते हैं। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ६, शनिवार, दिनांक २६-८-१९६७
कलश - ५, प्रवचन नं. १०

समयसार कलश है। जीव अधिकार, ५वाँ कलश। यहाँ कहते हैं, जीव जो... जीव अधिकार है न? जीव तो निर्विकल्प वस्तु है। जीव अभेद अनन्त गुण का पिण्ड, ऐसी अभेद चीज़ है। उसको भेद करके समझाने का कारण क्या? वस्तु तो निर्विकल्प है। क्या कहा, समझ में आया? वस्तु में गुण-गुणी भेद उसमें है नहीं। ज्ञान, वह आत्मा; दर्शन, वह (आत्मा, ऐसा भेद) वस्तु में है नहीं। जीव अधिकार है। जीव तो चैतन्यमूर्ति, विकल्प से रहित अभेद निर्विकल्प चैतन्यबिम्ब है। उसको समझाने में दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसा भेद करने का कारण क्या है? निर्विकल्प में ऐसा भेद डालना—भेद करना? ऐसा प्रश्न है। समझ में आया? दूसरी रीति से प्राप्त नहीं हो सकता... समझ में आया?....

क्या कहते हैं? ऐई! देरी क्यों लगती है? देरी क्यों होती है? हर समय बाद में आते हो। सामने बैठना और (देरी से) आना, वह बराबर नहीं है। न्याय तो कर। कहो, समझ में आया? यहाँ कहते हैं, वस्तु तो निर्विकल्प है। वास्तव में तो यह १३वीं गाथा का उपोद्घात है। बारहवीं (गाथा) के बाद वह एक (कलश) तो आ गया है। 'उभयनयविरोधध्वंसिनी' १२वीं गाथा के बाद आ गया है। समझ में आया? आत्मा कषाय की मन्दता से तो प्राप्त होता नहीं, समझ में आया? और शास्त्रज्ञान के बोध से भी प्राप्त नहीं होता, ऐसी चीज़ है। दो आये—ज्ञान और बाह्यक्रिया। समझ में आया? परन्तु उस चीज़ में दर्शन-ज्ञान-चारित्र (ऐसे) भेद भी नहीं। वह चीज़ (-बाह्य क्रियादि) तो है नहीं उसमें। समझ में आया? यह चीज़ जो अन्दर में है, यह तो एकरूप है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र(मय) एकरूप वस्तु है। ऐसी अभेद चीज़ में भेद करने का क्या कारण है? वह कल आया है, देखो!

वस्तु निर्विकल्प है, उसमें विकल्प उपजाना अयुक्त है। शिष्य का प्रश्न है। देखो! यहाँ तक तो शिष्य का प्रश्न है। वस्तु तो अत्यन्त अभेद एकरूप अखण्ड एकस्वभावी है। ऐसी चीज़ में विकल्प करना—भेद करना तो उचित नहीं है। ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया।

वहाँ समाधान इस प्रकार है कि व्यवहारनय हस्तावलम्ब है। जैसे कोई नीचे पड़ा हो तो हाथ पकड़कर ऊपर लेते हैं... परन्तु ऊपर आने की शक्ति अपने से है, हों! मुर्दा ऊपर आवे नहीं। फिर उससे (-दूसरे से) उठता है, ऐसा नहीं लेना। **जैसे कोई नीचे पड़ा हो तो हाथ पकड़कर ऊपर लेते हैं...** परन्तु गति करने की ताकत तो उसकी है। आहाहा! उसकी। परन्तु उसे पकड़कर उठाता है, वह निमित्त है। **वैसे ही गुण-गुणीरूप भेद कथन...** देखो! पहला दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा था। अभेद में दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे (भेद) किये बिना तो चले नहीं—ऐसा पहले कहा था। साधिक—बुद्धिवाला हो तो पहले इतना तो कहना पड़े, ऐसा लिया था। यह आत्मा... श्रद्धा करे, वह आत्मा... जाने, वह आत्मा... स्थिर हो, वह आत्मा... ऐसा भेद लिया था। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अब यहाँ कहते हैं, **वैसे ही गुण-गुणीरूप भेद कथन ज्ञान उपजाने का एक अंग है।** इतना भेद करना कि यह दर्शन, वह आत्मा; ज्ञान, वह आत्मा; चारित्र, वह आत्मा—ऐसा भेद करके कहना, (वह), यह ज्ञान, वस्तु जैसी है, ऐसा ज्ञान उपजने का—व्यवहार ज्ञान उपजने का एक प्रकार है। निश्चय ज्ञान की बात यहाँ नहीं है। समझ में आाय? उसके ख्याल में आवे कि चीज़ यह है अखण्ड ज्ञायक चैतन्य, वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र.... उससे समझनेयोग्य है। ज्ञान, वह आत्मा है; दर्शन, वह आत्मा—ऐसा गुणी में इतने गुण के भेद करके गुणी को बताना, इतना एक ज्ञान का प्रकार है। लक्ष्य में लेने की चीज़ में यह प्रकार आता है। समझ में आया? नहीं आया? ऐ पोपटभाई! ख्याल में प्रथम में प्रथम (लेना कि) यह गुणी है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र सम्पन्न है, उससे आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा लक्ष्य तो पहले गुण-गुण का भेद (का ज्ञान) कराने में आता है। ऐसा ख्याल अन्दर में लेना पड़ता है। इतना ख्याल तो आता ही है, ऐसा कहते हैं। वह वास्तविक ज्ञान नहीं है। समझ में आया?

वास्तविक ज्ञान तो, अभेद का अनुभव हो, तब वास्तविक ज्ञान होता है। यह एक प्रकार आये बिना रहता नहीं कि यह आत्मा... दूसरी चीज़ तो निकाल दी अब। जिसमें अभेदरूप से है, उसको भेद करके कहा कि यह गुणी... ज्ञान, दर्शन, चारित्र से समझनेयोग्य है कि ज्ञान, वह आत्मा; दर्शन, वह आत्मा। देखो! गुण और गुणी। गुण और गुणी। गुण-

गुणी का भेद करके समझाना, ऐसा ज्ञान उपजने का एक अंग है। कौन सा ज्ञान? सम्यग्ज्ञान, ऐसा नहीं। यह ख्याल में आने का एक प्रकार है। जिसे अभेदज्ञान हो, तब वास्तव में ज्ञान उत्पन्न हुआ कहने में आता है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : पहला व्यवहार आवे....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले-फहले की बात कहाँ है? अभी इन्होंने तो अज्ञानी ही लिया है। मात्र ख्याल में आता है न इतना। ख्याल आया इतना। '**हन्तः**' क्या करे? और टीकाकार ने ऐसा लिया नहीं। जहाँ तक शुद्धस्वरूप की पूर्ण प्राप्ति नहीं, तब तक ऐसा गुण-गुणी के भेद का विकल्प आये बिना रहता नहीं—ऐसी बात ली है। बारहवें में लेना है न बारह में। फिर बारहवें में आता है न व्यवहारनय। फिर तेरहवें में लिया है। भले सन्धि करे। बारहवें में यह कलश गया चौथा। चौथा श्लोक बारहवें में गया। इस पाँचवें (के बाद) '**भूदत्थेणाभिगदा**' कहना है न? नौ तत्त्व का विषय भेदरूप है। वहाँ नौ तत्त्व, यहाँ गुण-गुणी का भेद लिया। समझ में आया? यह वस्तु बहुत सूक्ष्म है। दूसरे कोई प्रकार जानने की वहाँ आवश्यकता नहीं है। इतना तो, यह गुणी ज्ञानगुणवाला है, श्रद्धावाला है, श्रद्धावाला है—ऐसा गुण-गुणी का भेद करने का लक्ष्य तो पहले आ जाता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मुमुक्षु : परन्तु उसको भावदेशना है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावदेशना... वह ठीक है। उस प्रकार का ज्ञान में ख्याल आया। देशनालब्धि तो पहले पूर्ण हो गयी। परन्तु उस प्रकार का पहले विकल्प आया कि ज्ञान, वह आत्मा; श्रद्धा करे, वह आत्मा। इतना गुणी में गुण का भेद किया। ऐसा ख्याल पहले करना पड़ता है।

'**हन्तः**' है, आगे कहेंगे। खेद है कि इतना आता है। सीधे चले जायें तो हम निर्विकल्प अनुभव में चले जायें, (ऐसी) यह चीज़ है। गजाधरजी ने ऐसा कहा है, गजाधरजी ने ऐसा कहा है। गजाधरलाल पण्डित ठीक थे अर्थ करनेवाले। खेद है... '**हन्तः**'—खेद है। अरे! इतना विकल्प कि यह गुणी और यह गुण, ऐसा भेद का ज्ञान अन्दर आये बिना रहता नहीं। खेद है तो भी आता है, परन्तु अपने स्वरूप का अनुसरण करने में वह कारण

नहीं है। भेद का अनुसरण छोड़कर, अभेद की दृष्टि करे तो सम्यग्ज्ञान होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा अन्तर में... कहते हैं कि पहले... दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो या गुण कहो, और गुणी वह—पहले तीन बोल लिये थे न? फिर चार लिये, फिर चेतन लेंगे, फिर द्रव्य-गुण-पर्याय लेंगे। ऐसे चार प्रकार से लेंगे। समझ में आया? कहते हैं, भगवान! तेरी चीज़ सर्वज्ञ परमात्मा ने देखी है, ऐसी उसको समझना... समझाने में और समझने में गुण-गुणी के भेद के ज्ञान का प्रकार पहले आये बिना रहता नहीं। है, वह व्यवहार। कहो, यह व्यवहार। समझ में आया?

उसका विवरण—जीव का लक्षण चेतना इतना कहने पर... देखो! चेतना लिया। तीन में से एक लिया। ज्ञान लक्षण मुख्य है, वह लिया। **पुद्गलादि अचेतन द्रव्य से भिन्नपने की प्रतीति उपजती है।** चेतना और चेतन इतना तो भेद करना पड़ा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। चेतना जीव का लक्षण... चेतना जीव का लक्षण... देखो! गुण-गुणी का भेद हो गया इतना। पहले दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा था, समझ में आया? फिर गुण-गुणी भेद कहा तो भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन आ गये उसमें। तीन में से एक लिया अब। यह चेतना, यह चेतन... चेतना, वह चेतन... चेतना, वह आत्मा... पुद्गल से भिन्न, चेतना से यह चेतन—ऐसे लक्षण से चेतना से चैतन्य की प्रतीति होती है। समझ में आया? आहाहा!

जीव का लक्षण चेतना इतना कहने पर... सारे पुद्गलादि, रागादि सब हों। रागादि भी निकल जाते हैं। चेतना, यह जीव का लक्षण... सब (भेद) निकल गये। जानना-देखना चेतना, वह जीव का लक्षण। देखो! जीव अधिकार है। चेतना, वह चेतन—ऐसा भेद आये बिना पर से भिन्न नहीं हो सकता। पुद्गल से भिन्न, राग से भिन्न, दया-दान के विकल्प से भिन्न। समझ में आया? चेतना लक्षण से लक्षित। राग लक्षण से नहीं, पुद्गल से नहीं, शरीर से नहीं, परन्तु चेतना लक्षण जीव का, इतना भेद किये बिना पर से भिन्न की प्रतीति नहीं हो सकती। समझ में आया? यह चेतना क्या? त्रिकाल ज्ञान-दर्शन चेतना है न यह। बाह्य का समझने की बात यहाँ नहीं है। बाहर का ख्याल करना, वह चेतना नहीं है। शास्त्र का पठन-पाठन... उसमें जो गुण है, वह पर्याय में ऐसा... यह

चेतना, वह चेतन, बस। चेतना जानन-देखन, वह आत्मा। ऐसा पहले भेद आता है। समझ में आया? खेद है कि इतना व्यवहार आता है, क्या करे? परन्तु है व्यवहार, (वह) अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए जब तक अनुभव होता है... देखो! जहाँ तक अनुभव होता है—आत्मा का निर्विकल्प आनन्द का अनुभव होता है, **तब तक गुण-गुणी भेदरूप कथन ज्ञान का अंग है।** अनुभव जब तक न हो, तब तक इतना (भेद रहता है कि) चेतना, वह आत्मा; ज्ञान, वह आत्मा; दर्शन, वह आत्मा; चारित्र, वह आत्मा।....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे की। सातवें की नहीं, भाई! लोग सब ले जाते हैं, यह तो मानो सातवें-आठवें में, ऐसा लोग कहते हैं, हों! यह जाते हैं बहुत सब जगह, इसलिए लोग कहते हों न। ऐसा नहीं। यह तो चौथे की बात है। समझ में आया? प्रथम सम्यग्दर्शन के काल की बात चलती है। आहाहा! क्या कहे?

इस चीज़ को ऐसी बना दी है। सम्यग्दर्शन अर्थात् मानो कोई साधारण चीज़ कि एक देव-गुरु-शास्त्र को मानना। ऐसी चीज़ नहीं है। वह कहेंगे अभी। आगे आयेगा। **सकल कर्मोपाधि से जैसा है, वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव...** यह छठवें कलश में आयेगा। '**इह दर्शनम्**' शब्द पड़ा है न? इस ओर है। सातवें पृष्ठ पर नीचे से पाँचवीं लाईन। '**इह दर्शनम्**' है? वैसा ही प्रत्यक्षरूप से अनुभव होना। क्या कहते हैं, समझ में आया?

भगवान आत्मा अखण्ड चैतन्यपिण्ड अनन्त गुण का पिण्ड है, वस्तु निर्विकल्प है। उस चीज़ को अनन्त काल से समझा नहीं तो इसका इतना तो भेद आये बिना रहता नहीं कि यह चेतना, वह आत्मा अथवा यह गुण इस गुणी का, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा। इतना पहले लक्ष्य में आना, उसका नाम व्यवहार कहते हैं। परन्तु वह व्यवहार कब तक आयेगा? कि अनुभव हो तो व्यवहार छूट जायेगा। समझ में आया? व्यवहार को अनुसरकर अनुभव होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह चेतना, वह आत्मा, (ऐसे) भेद के लक्ष्य से अभेद का अनुभव होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु पहले ऐसा ख्याल आता है कि

यह चेतना, वह आत्मा। यह छूट गया। छूटकर अनुभव हो, (उससे) पहले ऐसा तो आता है। इतना कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सहारा-बहारा क्या? हमारे इनकार करते हैं राजमलजी। सहारा मिला तो छोड़ देना पड़ा। वह लिया ही नहीं। ख्याल में आये बिना दूसरा क्या करे? उससे हुआ है? भेद से हुआ है? भेद से हुआ हो तो सहारा मिला कहा जाये। समझ में आया? शान्ति से समझना। आहाहा!

धीर हो, भाई! अन्तर की चीज़—वस्तु अखण्ड निर्विकल्प अभेद, वह तो अन्तर के आश्रय से मिलती है। परन्तु ऐसा (भेद) पहले आये बिना रहता नहीं। क्या करे? दूसरा कोई उपाय नहीं है, ऐसा करके कहते हैं। समझ में आया? ओहोहो! यहाँ तो अभी कितनी क्रिया की, दया-दान किये, व्रत-भक्ति की, व्यवहार करते-करते निश्चय सम्यग्दर्शन होता है... अरे! कहाँ तेरी स्थूलता? भाई! यह मार्ग नहीं है। उसमें वह मार्ग है ही नहीं। उसमें है उसका भेद करके कहना, वह भी उसको शरण नहीं है। आहाहा! जेठालालभाई! अभेद वस्तु को भेद करके कहना, वह भी शरण नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। उपाय नहीं है। अनन्त काल से अपनी अभेद चीज़ क्या है, वह उसके जानने में आयी नहीं। समझ में आया?

जब तक अनुभव होता है, तब तक गुण-गुणी भेदरूप कथन ज्ञान का अंग है। अनुभव होता है, इसका अर्थ यह। जब तक अनुभव होता है, तब तक आवे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा करना। अनुभव होता है तब तक ऐसा (भेद) आता है। बस, इतना है। समझ में आया?

इसलिए **जब तक अनुभव होता है, तब तक गुण-गुणी भेदरूप कथन ज्ञान का अंग है।** यहाँ तो 'ज्ञान का अंग' के ऊपर वजन देना है। इतना गुण-गुणी के भेद को ज्ञान का अंग क्यों कहते हैं? अनुभव न हो, तब तक ऐसा आता है। जब अनुभव हुआ तो फिर

छूट गया। उसका भी लक्ष्य रहता नहीं। तब उसको सम्यग्दर्शन—आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। समझ में आया ? आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, कैसे प्राप्त हो—उसकी भी खबर नहीं और ऐसे ले लेते हैं कि यह तो अपने को खबर नहीं पड़ती कि सम्यग्दर्शन है या नहीं। तो अब लो व्रत और नियम। उसकी—व्रत-नियम की खबर कहाँ से पड़ गयी ? किसकी खबर पड़े अन्ध को ? अज्ञानी तो है, भान तो है नहीं। क्रियाकाण्ड यह बाहर से दिखाई दे न कि यह किया और यह छोड़ा और यह रखा, यह दिखता है। वह खबर पड़े कि अज्ञान है। समझ में आया ? भाई! वीतराग का मार्ग, आहाहा! इतनी वीतरागता कि जिसे गुण-गुणी के भेद का लक्ष्य भी लाभदायक नहीं। आहाहा!

ऐसी वीतरागी चीज़ आत्मा... भगवान आत्मा वीतरागीबिम्ब चैतन्यबिम्ब केवलज्ञान का कन्द है। ऐसी चीज़ को भेद (किये बिना) दूसरा कभी समझे नहीं। तो समझाने में और उसको समझने में इतना (भेद) आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह भी अपने अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। अन्तर अभेद अनुभव हो, वहाँ तक (विकल्प) आता है, पश्चात् छूट जाता है। ऐसी वीतरागी आत्म चीज़ है। समझ में आया ? निर्णय में तो ले, उसकी भूमिका में सुधार तो करे। ऐसी श्रद्धा का सुधार (करे) कि यह वस्तु दूसरी किसी चीज़ से तो प्राप्त नहीं होती, परन्तु उसका—गुण-गुणी के भेद का लक्ष्य करना, उससे भी प्राप्त नहीं होती। परन्तु आये बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान।
सेवे नहीं गुरु सन्त को, छोड़ा नहीं अभिमान॥

और मूल चीज़ के अनुभव और सम्यक्त्व बिना चारित्र कहाँ से आयेगा ? चारित्र तो स्वरूप में रमणता करना, वह चारित्र है। जिसमें रमणता करना है, वह चीज़ ही दृष्टि में आयी नहीं, अनुभव में आयी नहीं, कहाँ रमना ? कहाँ स्थिर होना ? बात तो, वस्तु की ऐसी स्थिति है, भाई! व्रत लेना है नहीं, तो उसको बनाया कष्टदायक। अरे भगवान! ऐसा न कर। व्रत आदि का विकल्प है, वह तो शुभ-पुण्य है। स्वरूप की दृष्टि होने के बाद स्थिरता करना तो महा अनन्त पुरुषार्थ है। यह कोई सहज नहीं मिल जाता। तब कहे, क्यों पुरुषार्थ नहीं करते ?

कोई रोकता है या नहीं ? कर्म आया, देखो ! अरे ! रोके कौन ? सुन तो सही ! अपनी स्थिरता नहीं वह रोकती है। अस्थिरता रोकती है। कर्म रोकते हैं ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन विज्ञानपिण्ड वीतरागस्वरूपी प्रभु... वीतरागस्वरूपी प्रभु... निर्विकल्प कहो या वीतरागस्वरूप अभेद कहो। यह 'ज्ञानचेतना, वह आत्मा' ऐसा भेद करने से पर से भिन्न होता है और उसका लक्ष्य छोड़कर अभेद हो जाता है तो भेद करने का लक्ष्य छूट जाता है, तब अनुभव होता है। समझ में आया ? चेतना लक्षण आत्मा का कहने से शरीर, कर्म, राग का लक्ष्य छूट जाता है, इतना। उसमें इतना लाभ हुआ। कि चेतना आत्मा है... चेतना आत्मा है... चेतना आत्मा है, तो सब राग आदि का लक्ष्य छूट गया। यह लक्ष्य आया कि चेतना क्या ? यह चेतना (वह आत्मा, ऐसा) भी जब तक है, तब तक भी भेद है। समझ में आया ?

जब सम्यग्दर्शन... जब तक अर्थात् जहाँ तक, ऐसा। अनुभव होता है, वहाँ तक— तब तक वह बात रहती—होती है। समझ में आया ? **व्यवहारनय जिनका हस्तावलम्ब है, वे कैसे हैं ?** अब कहते हैं जीव। **'प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां' विद्यमान ऐसी जो (प्राक्पदव्याम्) ज्ञान उत्पन्न होने पर प्रारम्भिक अवस्था...** यहाँ अज्ञानी लिया है। यहाँ अर्थ में अज्ञानी लिया है। और मूल टीका में विशेष ज्ञानदर्शनचारित्र की पूर्ण प्राप्ति नहीं... आया था टीका में ? भाई ! उसमें—अध्यात्म तरंगिणी टीका में। यह बारहवें में है न टीका। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्ण प्राप्ति नहीं, तब तक ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। व्यवहार जाननेयोग्य है, अनुसरण करनेयोग्य नहीं। आता अवश्य है। समझ में आया ?

ज्ञान उत्पन्न होने पर—सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होने पर **प्रारम्भिक अवस्था उसमें (निहितपदानां) निहित-रखा है, पद-सर्वस्व जिन्होंने....** अर्थात् अपना लक्ष्य वहाँ है, ऐसा। सब छोड़ दिया, पुद्गल, रागादि सब छोड़ दिया। यह चेतना, वह आत्मा... चेतना वह आत्मा... ऐसा आया। पहली पदवी में इतना आये बिना रहता नहीं। **भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई सहजरूप से अज्ञानी है।** स्वाभाविक अज्ञानी—अनादि का अज्ञानी है। **जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं...** वह तो रखा है, हों, फूलचन्दजी ने। अज्ञानी कहकर, मन्दज्ञानी कहकर उनका यह का यह वाक्य

द्रव्य-गुण-पर्याय का कहा है शुरुआत में। **जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप....** क्या ? कि मैं द्रव्य कौन हूँ, मेरे गुण क्या हैं, मेरी पर्याय क्या है—ऐसा जानने का अभिलाषी है। अपने हों, दूसरे की बात नहीं अब, परद्रव्य की बात नहीं।

अपना जीव जो है, वह द्रव्य क्या है ? उसमें शक्ति-गुण क्या है ? शक्तिवान द्रव्य, शक्ति और उसकी वर्तमान प्रगट दशा क्या है, ऐसे जानने के **अभिलाषी हैं, उनके लिये...** देखो ! द्रव्य-गुण-पर्याय का जानने का अभिलाषी, ऐसा कहा पहले। किसके ? अपने। **जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्याय....** जीवादि शब्द भले आया, परन्तु पहला जीव। जीव के द्रव्य-गुण-पर्याय। आदि शब्द डाला है। समझ में आया ? जीव के द्रव्य-गुण-पर्याय क्या ? भेद से विचार करना, वह भी विकल्प है। परन्तु ऐसा समझने की अभिलाषा तो पहली होती है कि यह क्या चीज़ है ? बाद में पुद्गलादि.... पुद्गल द्रव्य क्या है ? गुण क्या है ? उसकी पर्याय क्या है ? (उसकी) पर्याय उससे होती है, मुझसे नहीं। मेरी पर्याय मुझसे होती है, उससे नहीं। तो वह चीज़ क्या है ? पर्याय क्या है, गुण क्या है, द्रव्य क्या है ? पर का द्रव्य अर्थात् शक्तिवान वस्तु, उसकी शक्ति और प्रगट दशा क्या है—ऐसा अभिलाषी को प्रथम जानने का भाव आता है। समझ में आया ?

द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं, उनके लिये गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है। देखो ! यह ज्ञान, वह आत्मा। दर्शन-श्रद्धा कौन करता है ? राग करता है ? शरीर करता है ? पुद्गल करता है ? हाँ, जो श्रद्धा करता है, वह आत्मा। ऐसा गुण-गुणी भेदरूप कथन योग्य है, योग्य है। ऐसा आये बिना रहता नहीं। सब निकाल दिया ऊपर का दूसरा। मात्र अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और जड़ के द्रव्य-गुण-पर्याय, बस इतना। साधारण ऐसा विकल्प रह गया। आहा !

'हन्त तदपि एषः न किञ्चित्' यद्यपि व्यवहारनय हस्तावलम्ब— निमित्तरूप कहा **है, तथापि कुछ नहीं।** उसमें कुछ सार नहीं। भेद के लक्ष्य से अनुभव होता नहीं, ऐसा कहते हैं। जब तक भेद रहे कि चेतना वह यह, ज्ञान वह यह... यह, हों ! आत्मा के ऊपर (लक्ष्य) जाये। दूसरी बात तो कहीं रही। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जीव का कान पकड़कर....

पूज्य गुरुदेवश्री : कान पकड़ा नहीं। कान कहाँ पकड़े? ऐसा कि चेतना, वह आत्मा, कान पकड़ा न अब? वह छूट जाये तब पकड़ में आये। परन्तु ऐसा पहले आता है, ऐसा कहने में आता है। क्या करे? आठवीं गाथा में यह कहा है। आत्मा, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसा कहते हैं, तथापि व्यवहारनय हमारे और श्रोता को अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! उसके अनुसार मुझे अनुभव नहीं होता। वह भेद अभेद को समझाता है, परन्तु भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद का अनुभव करना, वह बताते हैं। वस्तु ऐसी है, ऐसा कहते हैं। यह चीज़ ऐसी है। जो भेद से, राग से अनुभव में आवे, ऐसी वह चीज़ नहीं। तथा भेद और राग में ऐसी सामर्थ्य नहीं कि उसके कारण से अभेद अनुभव हो। ऐसी भेद और राग में सामर्थ्य नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सामायिक करके मर जाये न! सामायिक कहाँ थी? एक आसन में दस सामायिक... सीधा-सट्ट तो सही। यह सब समझना न... दस सामायिक समझे? एक आसन पर बैठकर दस-दस सामायिक करते न! ३०-३० सामायिक करे। एक आसन में ३०। चौबीस घण्टे की ३० क्या, चालीस। यह चार बजे शुरु करे सामायिक, वह दूसरे दिन नौ बजे। व्याख्यान पूरा हो तब तक। कितने घण्टे हुए? देखो, २९ घण्टे। घण्टे, हों! उसमें फिर दो-दो घड़ी की कितनी... हमारे बोटाद में बहुत होती थी... चार बजे उठे, तब से सामायिक करे तो पूरे दिन सामायिक में और पूरी रात और (दूसरे दिन) सवेरे नौ बजे सामायिक पूरी हो। आथमणुं कहलाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कूटो क्या? कूटो पड़ा रहा, अन्दर का भान नहीं होता। आत्मा रागरहित, विकल्परहित, निर्विकल्प अभेद है, उसका भान नहीं। कहाँ कूटा रखा? कूटा तो है तेरे पास। दृष्टि में मिथ्यात्व पड़ा है। समझ में आया?

कहते हैं, **तथापि कुछ नहीं, नोंध (ज्ञान, समझ) करने पर झूठा है।** देखो! कल आया था न, केवलज्ञान में नोंध है। यह जीव इस समय में समकित पायेगा, यह जीव इस

समय में चारित्र पायेगा, यह जीव इस समय में केवल(ज्ञान) पायेगा और यह जीव इस समय में सिद्ध होगा—यह सब नोंध केवलज्ञान में है। यह नोंध आयी। नोंध आयी थी न कल, बताया था कल। बताया था न कल ? ऐसी नोंध केवली की नोंध यहाँ है। ऐसा ज्ञान उसमें है। समझ में आया ? ऐसा यहाँ ज्ञान का अनुभव करने पर 'ज्ञान, वह आत्मा' यह बात रहती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

ज्ञान—नोंध करने पर, अनुभव करने पर, स्वभाव की दृष्टि में निर्विकल्प वेदन करने पर, आत्मा प्रत्यक्ष होने पर यह व्यवहार सब झूठा है, व्यवहार झूठा है, व्यवहार कुछ काम का नहीं। समझ में आया ? काम नहीं हुआ था, तब तक तो काम का था न ? नहीं। यह झूठा ही है। भेद में तो बन्धन होता है। भेद के लक्ष्य से वहीं रहे तो राग ही होता है, बन्ध होता है। भगवान आत्मा... अलौकिक बात है, भाई! समझ में आाय ? गजब कर दिया। वस्तु तो ऐसी है भैया! पहले समझ में तो लेनी पड़ेगी। उसकी रुचि में ऐसी पहली जमवट होनी चाहिए। यह 'ज्ञान, वह आत्मा' इतना भेद, उसको अनुभव में काम का नहीं। पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म, हों! समझना पड़ेगा। हमारे फूलचन्दजी भी ऐसा कहते हैं, बराबर समझ में आता है। नया आया है, नया आया है, उसको उत्साह है। परसों कहते थे, हमारा कल्याण होगा ही। भाई! आत्मा में सामर्थ्य है। क्या नहीं है ? उत्साह तो ला, भले दूसरा हुआ। आहाहा!

मैं आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु... गुणसागर आत्मा है, पवित्रता में किसी के अवलम्बन की जरूरत नहीं। आहाहा! राग के अवलम्बन की जरूरत नहीं, भगवान के अवलम्बन की जरूरत नहीं। यहाँ तो (कहा कि) गुण-गुणी के भेद आते हैं, तो हन्त—खेद है। आहाहा! तो ... व्यवहार ... उत्साह करते हैं। क्या कहना है, समझ में आया ? ऐई! 'व्यवहार से होता है' ऐसा व्यवहार सुने तो, (कहे), हाँ, हाँ। यहाँ तो कहते हैं कि भेद का लक्ष्य करना, हन्त—खेद है हमको। क्या करे ? यह कहे कि व्यवहार बीच में आता है तो हमको उत्साह है। क्या है तुझे ? ओहोहो! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा अभेद चिदानन्द प्रभु में, यह 'ज्ञान, वह आत्मा' इतना भी लक्ष्य होना, यह अनुभव होने पर वह लक्ष्य झूठा है। वह लक्ष्य कार्यकारी नहीं।

आहाहा! आचार्य 'हन्त' कहकर इतने में भी खेद बताते हैं। भगवान निर्विकल्प सीधी चीज़ एकरूप जिसमें भेद का अभाव... भेद का अभाव, विकल्प का अभाव... अरे! जिसमें भेद का अभाव है, उसमें भेद करके 'यह आत्मा' ऐसा लक्ष्य करना, उसका भी खेद है। आहाहा! समझ में आया? दूसरा व्यवहार बीच में आओ, परन्तु खेद है। जाननेयोग्य है, परन्तु उससे आत्मा का लाभ निश्चय होता है, ऐसा है नहीं। तो व्यवहार करते-करते निश्चय होता है, (ऐसा) भगवान! कहाँ रहा?

यहाँ तो आचार्य वहाँ तक कहते हैं कि अन्दर चेतना... चेतना... क्योंकि ज्ञान में सब गुण देखने में आते हैं न? ज्ञान की ताकत है न कि ज्ञान श्रद्धा को जानता है, चारित्र को जानता है, आनन्द को, अस्तित्व को—सबको (जानता है)। यह सबको जानता है (फिर भी) 'चेतना-ज्ञान, वह आत्मा' ऐसा भेद तो वस्तु में है नहीं, परन्तु इतना भेद करना, कहते हैं, खेद है। अनुभव करने पर यह लक्ष्य झूठा है, उससे कुछ लाभ हुआ नहीं। उसका अनुसरण छोड़े तो लाभ हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसकी जैसी चीज़ है, ऐसा पहले निर्णय तो करे। तत्त्व का निर्णय करना, वही स्वरूप-सन्मुख जाने का उपाय है। अन्त में स्वरूप-सन्मुख—अन्तर्मुख होना, यही चीज़ है। समझ में आया? बहिर्मुख लक्ष्य करना, वह भी बहिर्मुख है इतना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बाहर के राग की मन्दता—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि सब बाहर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ तो विकार है। उससे आत्मा की प्राप्ति होती है, अनुभव होता है, (ऐसा) तो तीन काल में है नहीं। समझ में आया? भाई! इसे कठिन पड़े। यह मानो कि यह सोनगढ़ का है। सोनगढ़ का नहीं, भगवान के घर का है। ऐसा आवे कि यह तो सोनगढ़ से ऐसा कानजीस्वामी कहते हैं। ऐसा और कहते हैं। उनके घर का नहीं, आत्मा का है। कल्पना का नहीं, वस्तु का (स्वरूप है)। भाई! तुझे खबर नहीं। अनन्त तीर्थंकर ऐसा कह गये हैं, अनन्त केवली ऐसा अनुभव कर गये हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... देखो न! गाथा कैसी रची है! पहले अज्ञानी हो तो ऐसा आया और निर्विकल्प में न रह सके, तब भी राग आता है इतना। यह आत्मा... आत्मा... इतना लक्ष्य... कहते हैं, क्या करे? आओ, परन्तु अनुभव करने पर वह झूठी बात है। तो यह राग की

मन्दता अनुभव करने पर झूठी है ही। आत्मा का अनुभव करने में बिल्कुल मददगार नहीं है। आहाहा! यह तो वही सुना है अभी तक तो। यह करो... यह करो... ऐसा करो... कल्याण हो जायेगा, निर्जरा हो जायेगी। देखो न! कितनी बात करते हैं, भाई! यह सब एक ही बात चलती है अभी सम्प्रदाय में। वरना तो इसके घर में चीज़ पड़ी है। दिगम्बर सन्तों ने कही हुई बात शास्त्र में पड़ी है। दूसरे में तो ऐसी बात है ही नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कही बात, सन्तों ने कही, सब बात शास्त्र में पड़ी है। दिगम्बर शास्त्रों में सब बात यथार्थ पड़ी है। समझ में आया? ऐसी बात दूसरे शास्त्र में है ही नहीं। हमने तो सब शास्त्र देखे हैं न, करोड़ों (श्लोक)। यह तो उसमें (दिगम्बर में) ही वस्तु थी। उसमें पड़ी है। कोई नयी नहीं है। विचारते नहीं, निकालते नहीं, अपनी दृष्टि से अर्थ करते हैं। यहाँ तो क्या कहते हैं? अरे! व्यवहारनय हस्तावलम्ब निमित्तरूप... निमित्तरूप भले कहा, परन्तु खेद है। अनुभव करने पर वह सब झूठा है। अनुभव हुए पहले तो कार्यकारी था न? कार्यकारी की बात यहाँ है ही नहीं। ऐसा कि वह आया तो अनुभव हुआ न? इतना आया तो हुआ या नहीं? यह आता है इतना खेद है। इतना आये बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। फिर भी उसको छोड़ा तो अनुभव हुआ। अमरचन्दभाई! आहाहा! यह मूल रकम की बात है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी प्रभु के अन्तर घर की मूल सम्यग्दर्शन की यह चीज़ है। आहाहा!

वे जीव कैसे हैं... व्यवहारनयवाले। व्यवहारनयवाले। **जिनके व्यवहारनय झूठा है? 'चिच्चमत्कारमात्रं अर्थं अन्तः पश्यतां'** व्यवहारनय झूठा कब उसको हो जाता है? **'चिच्चमत्कारमात्रं अर्थं अन्तः पश्यतां' चेतना (चमत्कार) प्रकाश (मात्रं) इतनी ही है...** यह तो चेतनामात्र है, ऐसा अनुभव अन्तर देखते हैं। **(अर्थं) शुद्ध जीववस्तु, उसको (अन्तः पश्यतां) प्रत्यक्षपने अनुभवते हैं।** लो, उसमें भी आया। **अन्तः पश्यतां... अन्तः पश्यतां...** देखो! भगवान आत्मा **अन्तः पश्यतां**—अन्तर से प्रत्यक्ष होने पर, ज्ञान की पर्याय—ज्ञान में ज्ञाता को अभेद करके, राग का, मन का अवलम्बन रहा नहीं, ऐसे मति-श्रुतज्ञान से आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है। तब उसको व्यवहारनय झूठा है। समझ में आया? पहले था सही, है सही... है सही, ऐसा कहा, परन्तु अनुभव करने पर यह झूठा हो गया। उससे लाभ है नहीं। समझ में आया?

अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवलियों की यह कथनी और यह पद्धति है। भगवान की दिव्यध्वनि में यह आया है। वह पहले आ गया, शुद्ध जीव उपादेय... शुद्ध जीव उपादेय... स्व सन्मुख हो, अन्तर्मुख हो। बहिर्मुख के लक्ष्य से अन्तर्मुख कभी होता नहीं। समझ में आया? कहते हैं, **चित्त्वमत्कारमात्र...** चेतना... चमत्कार का अर्थ प्रकाश। चेतना प्रकाश सबको जाने। उसमें सबको जाने, ऐसा उसमें भेद कहीं है नहीं। यह जाने, बस इतना। इसलिए इन्होंने 'प्रकाश' अर्थ किया। प्रकाश... चेतनाप्रकाश... अकेला चेतनाप्रकाश... **इतनी ही है...** चेतनाप्रकाश वह वस्तु, वह जीववस्तु। अर्थ अर्थात् जीववस्तु। चेतनाप्रकाश, वही वस्तु अभेद। अभेद, हों। चेतना, वह आत्मा, ऐसा नहीं। **चेतना प्रकाश इतनी ही है, शुद्ध जीववस्तु...** ऐसा। चेतना, वह चेतन, चेतना वह लक्षण, ऐसा नहीं। समझ में आया?

देखो! फिर से लेते हैं। 'चेतना, वह आत्मा' यह तो भेद हो गया। यहाँ तो कहते हैं, यह भेद का (लक्ष्य) छूटकर... कब व्यवहार झूठा हुआ? कि चेतना चित्प्रकाश इतनी है, शुद्धवस्तु, ऐसा अनुभव में आया। **अन्तः पश्यतां... अन्तः पश्यतां...** इसका अर्थ किया। '**अंतः**' का अर्थ नहीं आया? प्रत्यक्षरूप से अनुभव (ऐसा) आ गया। प्रत्यक्षरूप से अर्थात् अन्तर में... प्रत्यक्ष का अर्थ आ गया। नहीं तो है '**पश्यतां**' का अर्थ, अनुभव। परन्तु '**अंतः**' कहा न, (अर्थात्) अन्दर में देखना, ऐसा। अन्दर में देखते हैं। अन्दर अर्थात् प्रत्यक्षरूप से अनुभवते हुए... ओहोहो! बाहर का देखना छूट गया। यह ज्ञान, वह आत्मा; चेतना, वह आत्मा—यह अभी व्यवहार हुआ। समझ में आया? प्रकाशमय चेतनवस्तु शुद्ध चैतन्यद्रव्य ऐसा अन्तः में जिसको प्रत्यक्ष हुआ तो व्यवहार झूठा हो गया। व्यवहार व्यवहार में रह गया। अन्तर में आया (तो व्यवहार) झूठा हो गया। समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान में प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के काल की यह बात है। कोई कहे, और यह सातवें गुणस्थान में, कोई कहे मुनि को चारित्र लेने के बाद आवे। चारित्र कहाँ से आवे सम्यग्दर्शन बिना? आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है—वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है। पहले कहा था न! पहले में कहा था, **व्यवहरणनयः** दूसरी लाईन। **यद्यपि... (व्यवहरणनयः) जितना कथन...** वह वहाँ ले लिया। **वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है,...** उसका अर्थ—विकल्प भी रहता नहीं, मैं ऐसा हूँ,

यह भी रहता नहीं और ज्ञान (का भेदरूप) लक्ष्य जो है, वह भी कथन में जाता है। क्या कहा? 'चेतना, वह आत्मा' ऐसा लक्ष्य है न, वह भी कथन में गया—वह बाह्यकथन में गया, विकल्प भी कथन में गये, वाणी भी कथन में गयी—तीनों गये। आहाहा! समझ में आया? **वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है,...** वाणी तो छूटी है, परन्तु अन्दर विकल्प है न अन्तर्जल्प? अन्तर्जल्प (अर्थात्) यह चेतना, वह आत्मा (ऐसा) अन्तर विकल्प और उस प्रकार का ज्ञान। समझे? उन सबको यहाँ वचनव्यवहार कह दिया है। अन्तर में उठा न इतना विकल्पभाव कि यह चेतना, वह आत्मा... इतना भी भाववचन हो गया, भाववचन। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब द्रव्यवचन ही है। आहाहा! पुद्गल का परिणाम। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु परमानन्द की मूर्ति, (जैसा) भगवान परमेश्वर ने देखा, ऐसा अन्तर में पहले लक्ष्य तो आया, परन्तु अनुभव करने पर वह लक्ष्य अर्थात् व्यवहार वचन सब छूट गया, झूठा हो गया। यह व्यवहार झूठा हो गया। कथनी झूठी, विकल्प झूठा, ज्ञानचेतना वह आत्मा, ऐसा लक्ष्य भी झूठा। आहाहा! राजमलजी टीका करते हैं... राजमलजी गृहस्थाश्रम में थे, हों! परन्तु गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन चीज़ तो जैसी सिद्ध की है, ऐसी गृहस्थाश्रम में है, ऐसी तिर्यंच की है। सम्यग्दर्शन में क्या अन्तर है? चारित्र में अन्तर है। समझ में आया?

कहते हैं, पंच महाव्रत जिसने लिया, सत्य बोलने की प्रतिज्ञा हो, उसके (वचन) हमें मान्य हैं। तो क्या ये झूठ बोलते हैं धर्म में? सम्यग्दृष्टि धर्म के लिये झूठ बोलते हैं? समझ में आया? यह बहुत लिखते हैं अखबार में—पत्र में। पंच महाव्रतधारी का वचन मान्य है, गृहस्थाश्रम का नहीं, अमुक का नहीं। परन्तु आचार्य शब्द से क्या? सम्यग्दृष्टि—ज्ञानी की सब बात सच्ची है, धर्म के लिये। लौकिक के लिये हो वह दूसरी बात है। धर्म के लिये विपरीतता होती है सम्यग्दृष्टि को? केवली को विपरीतता नहीं, ऐसे सम्यग्दृष्टि को भी धर्म के लिये विपरीतता नहीं। समझ में आया?

जो मार्ग अन्दर में से आया, वही मार्ग अन्दर केवली कहते हैं, ऐसा ही सम्यग्दृष्टि (कहते) हैं, उसमें कोई मार्ग में अन्तर नहीं। अन्तर हो तो सम्यग्दर्शन कैसा? वस्तु तो एक ही रहेगी। समझ में आया? आहाहा! (गृहस्थ) का स्पष्ट है, वह मानना नहीं न, (इसलिए) लगा दे, आचार्य का वचन लाओ। आचार्य का ही है, भाई! अन्तर अनुभव से जो बात आयी, वह वीतराग कहते हैं, वही बात है। समझ में आया? श्रीमद् में एक पत्र है। यह वाणी राग-द्वेष और मोह बिना की निकलती है, इसलिए मान्य है। समझ में आया?

वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है। कैसी है वस्तु? कैसी है वस्तु जो अनुभव में आयी वह? आत्मा। **'परमं' उत्कृष्ट है...** उत्कृष्ट है। महान पदार्थ है। चैतन्य भगवान महान वस्तु है। देखो! वस्तु हों, वस्तु। **उपादेय है।** यह परम की व्याख्या की। परम उत्कृष्ट है अर्थात् उपादेय है, ऐसा लिया। यही वस्तु उपादेय है। पहले कहा था न? शुद्ध जीववस्तु उपादेय... उत्कृष्ट क्यों? कि वही उपादेय है। एक समय में अभेद चीज़ पूर्णानन्द वस्तु, समझ में आया? उपादेय है अर्थात् उसका ही आदर करनेयोग्य है, उसका आश्रय करनेयोग्य है। दृष्टि में उसका ही आश्रय लेनेयोग्य है, वह उपादेय है। **और कैसी है वस्तु? 'परविरहितं'....** पहले अस्ति स्थापित की, फिर उत्कृष्ट उपादेय कहा और .... बात की। समझ में आया? चेतना प्रकाशमात्र जीववस्तु, यह अस्ति से सिद्ध किया। अकेली चेतनाप्रकाश जीववस्तु... चेतनवस्तु, चेतन प्रकाशस्वरूप अकेली वस्तु... यह अस्ति से कहा।

'परविरहितं'.... द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से भिन्न है। द्रव्यकर्म अर्थात् आठ कर्म, नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी और भावकर्म अर्थात् दया, दान के विकल्पादि शुभाशुभभाव / विकार—उससे भगवान आत्मा भिन्न है। समझ में आया? चेतनाप्रकाशस्वरूप है, द्रव्यकर्म, भावकर्म से रहित है। अस्ति-नास्ति कहा, उसका नाम अनेकान्त है। अनेकान्त में अमृत का अनुभव है। ऐसे (झूठा) अनेकान्त... अनेकान्त (कहे तो) वस्तु ऐसी नहीं। ऐसी चेतनाप्रकाश वस्तु, ऐसी अस्ति में रागादि का अभाव (और) अनुभव में अमृत आया। अनेकान्त में आनन्द का स्वाद आया, उसका नाम अनेकान्त कहते हैं। समझ में आया?

अनेकान्त का अर्थ ऐसा नहीं है कि आत्मा आत्मारूप से है और पररूप से नहीं,

ऐसा जानना—ऐसा अनेकान्त नहीं। पर नहीं, ऐसा अन्दर हुए बिना अनेकान्त हुआ कहाँ से? समझ में आया? क्या कहा, देवीलालजी? आत्मा... क्या कहा? देखो! **चेतना प्रकाश इतनी है शुद्ध जीववस्तु...** हुआ? ऐसा दृष्टि में आये कब? कि रागादि उसमें नहीं। नहीं हुआ तो कब 'नहीं' (ऐसा) हुआ? समझ में आया? शुद्ध चैतन्यप्रकाशमूर्ति अनुभव में आयी (और) यह (राग) उसमें नहीं—ऐसा आया तब तो अनुभव हो गया, अमृत हो गया। अनेकान्त तो अमृत है। अनेकान्त कोई कथन है या अकेला ज्ञान है—ऐसा नहीं। देखो! कैसे कहा? प्रत्यक्षरूप से अनुभव में ऐसी चैतन्यवस्तु (आयी कि) जो द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से रहित है। तो 'रहित' कब हुआ? (रहित) है, परन्तु उसमें—दृष्टि में, अनुभव में आये बिना रहित कैसे आया? समझ में आया?

कैसी कलश टीका है! ओहोहो! वीतरागभाव को कितना स्पष्ट कर दिया है! हो गयी न क्रिया? अनुभव की। अनेकान्त की—अनुभव की क्रिया रह गयी। अमृत की क्रिया रही। आता है न कहीं? अनेकान्त अमृत है। प्रवचनसार। गाथा आती है कहीं। अमृत है अनेकान्त... नहीं आता? सप्तभंगी। अमोघमन्त्र द्वारा नाश... यह सप्तभंगी... ११५? हाँ, वह तो दूसरे भाग में... सप्तभंगी। अमोघमन्त्र। यहाँ हैं यहाँ। अमृत है... अन्यत्र होगा, हों! अमृत... हाँ, वह। बस इतना। 'सम्यक् रीति से उच्चारित किये जानेवाले 'स्यात्' काररूपी अमोघ मन्त्रपद द्वारा 'ही' कार में रहे हुए समस्त विरोध-विष के मोह को दूर करता है।' इसका अर्थ हो गया। विरोध विष के मोह को दूर करे तो अविरोध आनन्द को प्रगट करता है। वह है न स्यात्? स्यात्। '**स्यात्कारामोघ मंत्रपदेन समस्तमपि विप्रतिषेधविषमोह...**' जहर है। आहाहा! समझ में आया? यह जहर में रखा तो इसका अमृत में रखा। गुलाँट खायी तो अमृत में आया। समझ में आया?

लक्ष्य में जो राग-विकार है, वह जहर है। आहाहा! यह इसमें (-आत्मा में) नहीं, ऐसा आया तब अमोघमन्त्र हुआ। आत्मा, आत्मा में है और आत्मा में राग भी है—यह तो जहर हुआ। समझ में आया? जहर कब नाश होता है? यह आत्मा चैतन्यप्रकाश जीववस्तु... ऐसा आया न? देखो न यहाँ? **(अर्थ) शुद्ध जीववस्तु...** शुद्ध जीववस्तु... प्रकाश... चैतन्यप्रकाश वस्तु अकेला चैतन्य पुंज... पुंज... तब क्या नहीं है? राग, कर्म, नोकर्म नहीं है। 'नहीं है' ऐसा कब हुआ? अन्तर्दृष्टि का अनुभव हुआ तो अमृत का आनन्द आया,

जहर छूट गया तो पर के अभाव का अनुभव हुआ। समझ में आया? हीरालालभाई! बातें भी गजब! ऐ न्यालभाई! ऐसी सूक्ष्म बातें।

अनेकान्त, यह अमृत है; एकान्त, वह जहर है। चीज़ क्या है एकान्त? मान्यता। अकेला ज्ञान करना, ऐसा नहीं। स्वरूप में से बाहर निकलकर जितना राग उत्पन्न होता है, परलक्ष्यमी जानपना है, वहाँ रुकता है, वह एकान्त है। एकान्त है, वह जहर है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यप्रकाशस्वरूप... स्वरूप... प्रकाशवाला, ऐसा नहीं। प्रकाश ज्ञानपुंज वस्तु... ज्ञानपुंज वस्तु... अर्थ—पदार्थ ये द्रव्यकर्म, भावकर्म... यह तो समझाते हैं एक के बाद एक। यहाँ साथ में है। समझ में आया? कि जीववस्तु पहले समझायी, बाद में उसमें नहीं है—ऐसा नहीं है। एक साथ में है। एक ज्ञायकमात्र वस्तु है (और) यह नहीं। 'नहीं' का लक्ष्य नहीं करना है। 'यह है' ऐसा अनुभव हुआ तो उसमें नहीं है, ऐसा अमृत का आनन्द आ गया। जहर का नाश होकर... अमृत। अनेकान्त का फल यह अमृत है। एकान्त का फल जहर और चार गति है। अमृत में, न मरे—ऐसे मोक्ष का उपाय उसमें है। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं, **द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से रहित (विरहितं) भिन्न है।** ऐसा भगवान... (भेद के) लक्ष्य को छोड़कर जहाँ भगवान आत्मा का प्रत्यक्ष अन्तर अनुभव हुआ, उसको यहाँ जीववस्तु कहने में आयी। यह जीव अधिकार है न? जीव अधिकार है न? उसको जीव का अधिकार है। जीव का अधिकार उसमें आया है। समझ में आया? उसको आत्मा का ज्ञान हुआ और उसको सम्यक्त्व हुआ...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ७, रविवार, दिनांक २७-८-१९६७
कलश - ६, प्रवचन नं. ११

श्री समयसार जीव अधिकार। कलशटीका में छठवाँ कलश है।

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

अहो! आचार्य महाराज स्वयं प्रार्थना करते हैं, देखो! अमृतचन्द्राचार्य महाराज हैं तो मुनि, तो भी उसमें अपनी एकत्व की भावना करते हैं। '**नः... नः**' शब्द पड़ा है न? '**नः**' अर्थात् हमको। ऐसा है। '**नः**' का अर्थ हमें होता है। 'न' नकार का नहीं। '**अस्तु नः**' हमको हो... हमको हो। देखो! समझ में आया? '**तत् नः एकः आत्मा अस्तु**' एक अपनी बात करते हैं और जगत को सत्य क्या है, वह समझाते हैं। समझ में आया? कथन-प्ररूपणा करते हैं, यह अपने लिये है। अपने भाव को घोंटते हैं। समझ में आया? दूसरे के लिये नहीं। आया है विकल्प, परन्तु अपने में विकल्प रहित मैं हूँ, ऐसा अनुभव है। तो भी उस विकल्प रहित मुझमें मैं एकत्व हो जाऊँ, शुद्ध वस्तु शुद्धनय का विषय पूर्ण अखण्ड ज्ञानघन, मैं उसमें एकत्व (होऊँ)। जो वस्तु है ही....

'**एकत्वे नियतस्य**' आगे आयेगा। '**एकत्वे नियतस्य**' एकपने निश्चय है। वस्तु... यहाँ नौ तत्त्व के सामने लेना है न? नौ के (सामने) एक। मैं '**एकत्वे नियतस्य**' पहला शब्द यह पड़ा है। मैं एकपने निश्चय से हूँ। मेरी प्राप्ति त्रिकाल एकपने ही है। समझ में आया? वह हमें... यह विद्यमान जो शुद्ध चैतन्यपदार्थ... देखो! यह विद्यमान... '**नः**' है न? '**नः**' का अर्थ हमें। **(अयं) यह विद्यमान...** यह चैतन्य शुद्ध चैतन्य ध्रुव अभेद अखण्ड पिण्ड वस्तु जो विद्यमान है... विद्यमान है... कैसी है? **शुद्ध चेतनपदार्थ...** 'एक' का अर्थ किया। एकरूप है, उसका अर्थ किया कि शुद्ध है। नौ तत्त्व का मिश्रपना उसमें नहीं है, भेद नहीं है। समझ में आया? नौ तत्त्व का भी जिसमें मिश्रणपना नहीं। शुद्ध चैतन्यमात्र हो।

हम तो अकेले शुद्ध चैतन्यमात्र जो है, ऐसे होऊँ। है, ऐसा होऊँ पर्याय में, यह कहते हैं। समझ में आया?

शुद्ध चैतन्यमात्र अभेद... नौ तत्त्व का परिणमन तो मिथ्यात्व परिणाम है। आगे कहेंगे। नौ तत्त्व का परिणमन मिथ्यात्व है। यह (कितने ही) कहते हैं, (कि) नौ तत्त्व की श्रद्धा करना, यह समकित है। यहाँ तो कहते हैं, नौ प्रकार सन्तति सम्बन्ध जो हो जाता है... एकरूप चैतन्य भगवान आत्मा... समझ में आया? यह शुद्ध चैतन्यपदार्थ मुझे प्राप्त हो। मैं तो जैसा शुद्ध एकपने निश्चय हूँ, ऐसा ही पर्याय में मुझे प्राप्त हो। समझ में आया?

उसमें ऐसी कोई माँग नहीं की है कि मैं इतने शास्त्र पढ़ जाऊँ, इतनी कषाय की मन्दता, व्रत पालन करूँ या ऐसी कोई... मैं तो शुद्ध एकरूप हूँ। मैं, विद्यमान हूँ। शुद्ध चैतन्यपदार्थ होऊँ। होऊँ तो क्या वस्तु नहीं है? वस्तु तो है ही एकरूप, मेरी पर्याय में एकत्वरूप प्राप्त हो जाओ। कहो, समझ में आया? क्या कहा, समझ में आया? ओहोहो! आचार्य अपने आत्मा में (-पर्याय में) प्रार्थना करते हैं। अरे! मैं शुद्ध विद्यमान पदार्थ हूँ, एकरूप वस्तु हूँ, ऐसी ही मेरी पर्याय में एकपने की प्राप्ति हो जाओ। समझ में आया? नौ तत्त्व के सम्बन्ध की मुझे जरूरत नहीं। तब दूसरे सम्बन्ध की कहाँ जरूरत रही? समझ में आया? यह कोई कथन नहीं है, यह तो अन्दर में भावना है। समझ में आया? यह वस्तु शुद्ध चैतन्य विद्यमान पदार्थ एकरूप ही है। पर्याय में एकरूप की प्राप्ति होओ। आचार्य महाराज कहते हैं कि यह मेरी प्रार्थना है। थोड़ा सूक्ष्म लगेगा, परन्तु यह बहुत गूढ़ बात है। नौ तत्त्व का सम्बन्ध करना, वह मिथ्यात्व है, यहाँ तो यह कहते हैं। ओहोहो!

भावार्थ इस प्रकार है—जीववस्तु चेतनालक्षण तो सहज ही है। देखो अब! भगवान आत्मा चेतनालक्षण स्वरूप उसका त्रिकाल है। जानना-देखना लक्षण स्वरूप ही भगवान आत्मा सहजस्वरूप है। समझ में आया? **जीववस्तु चेतनालक्षण तो सहज ही है। परन्तु मिथ्यात्वपरिणाम के कारण भ्रमित हुआ...** भाषा देखो! दर्शनमोह के कारण भ्रमित हुआ, मोहकर्म के कारण भ्रमित हुआ—ऐसा नहीं लिया है। समझ में आया? **मिथ्यात्वपरिणाम के कारण भ्रमित हुआ...** ऐसा लिया है। अपना भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब ध्रुव एकरूप की दृष्टि न करके, राग आदि अशुद्ध मलिन परिणाम मेरा है, ऐसा मिथ्यात्वरूप

परिणमा है आत्मा। वह पर के कारण से नहीं। देखो! भाषा तो देखो! समझ में आया?

मिथ्यात्व परिणाम के कारण भ्रमित हुआ तो एकान्त हो जाता है। दर्शनमोह कर्म से भी भ्रमित हुआ, (ऐसे) दूसरा कारण लो साथ में। भ्रमित में भी दो कारण लो। यहाँ तो कहते हैं कि भ्रमित में एक ही कारण है। सुन न अब! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य एकरूप है, उसकी दृष्टि (नहीं), अनादि से चेतनालक्षण सहज होने पर भी विपरीत अभिप्रायसहित परिणमता हुआ, विपरीत मान्यता से परिणमता हुआ, अपनी पर्याय में ऐसा भाव होने से भ्रमित हुआ। **मिथ्यात्वपरिणाम के कारण...** ऐसा शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? दूसरा कारण तो ज्ञान करने की चीज़ है। वस्तु तो यह है। आहाहा! अभी तो उल्टी श्रद्धा में भी कर्म का जोर डाले, उसे उल्टी श्रद्धा का भी यथार्थ भान नहीं है। मेरा आत्मा मुझसे उल्टा परिणमा है। मेरा स्वभाव चैतन्यज्योति ज्ञायकमूर्ति है। राग और पुण्य तथा कर्म के सम्बन्धरहित चीज़ (होने पर भी) उसका सम्बन्धवाला हूँ, ऐसा मैं मिथ्यात्वरूप परिणमा हूँ। ऐसा निर्णय किये बिना—उसकी भ्रमणा की स्वतन्त्रता उसको स्वीकार न हो तो—भ्रमणा टालने का अवसर नहीं रहता। समझ में आया? कितने शब्द रखे हैं, देखो!

परन्तु मिथ्यात्वपरिणाम के कारण... फिर वह परिणाम लेते हैं। समझ में आया? परिणाम... परिणाम लेंगे। सम्यग्दर्शन में स्वभाव परिणमन लेंगे। ओहोहो! बहुत ही संक्षिप्त बात में! भटका है, ऐसा कहते हैं। कर्म के कारण से, ऐसा-फैसा है नहीं। आहाहा! और बहुत संक्षिप्त बात में 'उसका अनुभव होता है' ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? टूंकी समझते हो? संक्षेप... संक्षेप... सेठ! यह थोड़ा हिन्दी... अब तीन दिन हिन्दी है, हों!

मुमुक्षु : अब तो गुजराती में तैयार हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा, लो, ठीक।

क्या कहते हैं? ओहो! आचार्य का कलश तो देखो! छठवाँ कलश है, छठवाँ। समझ में आया? भगवान आत्मा विद्यमान भगवान चैतन्यपदार्थ एकरूप चेतनालक्षण सहित सहज... सहज... यह चीज़ है। (परन्तु) अनादि से अपने मिथ्यात्व परिणाम के कारण, अपने शुद्ध स्वरूप का अन्तर्मुख दृष्टि के अनुभव के अभाव में... समझ में आया?

श्रीमद् ने भी एक टुकड़े में ऐसा कहा है कि 'तेरी भूल इतनी कि पर को अपना मानना और अपने को भूल जाना।' बस, इतने शब्द हैं। वहाँ बोटाद में हैं। बताया था बोटाद में। कमरा है न उसके सामने रखा है पटिया। यह अनादि सन्तों की शिक्षा है। शिक्षा है, ऐसा लिखा है। अनादि सन्तों की शिक्षा ऐसी है कि तुम तुम्हारे स्वभाव को अपना न मानकर... पर को अपना माना (और) अपने को भूल जाना, वही परिभ्रमण का कारण है। थोड़े में... समझ में आया? सन्तों ने पहली शिक्षा यह की है। यहाँ (लोग) कहे कि कर्म के कारण भटकते हैं, कर्म के कारण... अरे भाई! क्या करता है? चर्चा करो। लो, तब चर्चा करो। सोनगढ़ के पण्डितों ने चर्चा तो की फूलचन्दजी ने वहाँ... अभी चर्चा करो, कहते हैं। परन्तु क्या चर्चा करे? अरे! यह लगायी जहाँ अभी पहले से ही उल्टी। कर्म के कारण से....

यहाँ तो कहते हैं, **मिथ्यात्वपरिणाम के कारण भ्रमित हुआ...** ऐसे 'कारण' शब्द रखा है। अपना स्वरूप चैतन्य आनन्द, उसको भूलकर, विकार आदि नौ तत्त्व के संयोगसहित हूँ, ऐसे मिथ्यात्वरूपी परिणमन, उस कारण से भ्रमित हुआ। समझ में आया? अपने स्वरूप को नहीं जानता। वापस यह कारण। देखो! रागादि, पुण्यादि परिणाम से एकत्व होकर, मिथ्यात्व परिणाम से परिणमित होकर.... जो एकत्वस्वरूप में रागादि नहीं। रागादि सहित मैं हूँ, ऐसा मिथ्यात्वरूप परिणमन करके अथवा शुद्ध स्वभाव को छोड़कर अशुद्ध परिणमन में परिणमता हुआ, मिथ्यात्वभाव से भ्रमित हुआ भ्रमण करता है। यहाँ तो निगोद से लेकर यह लिया। निगोद को कर्म का जोर है तो मिथ्यात्वरूप परिणमता है (और) बाहर पंचेन्द्रिय में आया तो फिर पुरुषार्थ से परिणमे, ऐसा कुछ है ही नहीं। समझ में आया?

मिथ्यात्वपरिणाम के कारण भ्रमित हुआ... भगवान आत्मा अपने परिणाम को भूलकर, परिणामी त्रिकाली आनन्दकन्द को छोड़कर, रागादि पर्याय में परिणमित हुआ, मिथ्यात्व से भ्रमित हुआ अपने स्वरूप को नहीं जानता। मेरा आनन्द-ज्ञान शुद्ध चैतन्य है, मेरा स्वरूप अभेद अखण्ड आनन्द है—ऐसे स्वरूप को अनादि काल से नहीं जानता। ११ अंग पढ़ डाला, ९ पूर्व जाना, परन्तु यह नहीं जाना। समझ में आया? ११ अंग, ९ पूर्व...

मुमुक्षु : प्रयोजनभूत चीज़ को नहीं जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल चीज़ को नहीं जाना। वह मिथ्यात्व के कारण भ्रमित हुआ, उसमें ९ पूर्व और ११ अंग का ज्ञान भी आ जाता है। अपने स्वरूप को नहीं जाना। भगवान आत्मा ध्रुव विद्यमान आनन्दमूर्ति प्रभु का जानना नहीं किया। कहो, समझ में आया?

इससे अज्ञानी ही कहना। इस कारण से अज्ञानी ही कहना। इस कारण से अज्ञानी कहना उसको। समझ में आया? मिथ्यात्व परिणाम लिये और अज्ञानी इस कारण से कहा। दूसरे को कोई नहीं जानते, ... वह कुछ है नहीं। अपना स्वरूप नहीं जानकर, मिथ्यात्व परिणाम से भ्रमता हुआ अपने को नहीं जानता, इस कारण से उसको अज्ञानी कहा जाता है। समझ में आया? **अपने स्वरूप को नहीं जानता, इससे अज्ञानी ही कहना।** भाषा... कैसी टीका बनायी है! अपना भगवान आत्मा अन्तर आनन्द और ज्ञायक एकरूप वस्तु को नहीं जाना, उस कारण से अज्ञानी हुआ, इस कारण से अज्ञानी कहना। इस कारण से उसको अज्ञानी कहते हैं। समझ में आया?

अतएव ऐसा कहा कि मिथ्या परिणाम के जाने से... इसलिए ऐसा कहा कि मिथ्या परिणाम... जो पहले कहा कि मिथ्या परिणाम से परिणमित हुआ भ्रमित होता है राग से। राग मेरा है, राग का सम्बन्धवाला मैं हूँ—ऐसे मिथ्या परिणाम से परिणमित हुआ... **मिथ्या परिणाम के जाने से...** देखो! एक ही बात। मिथ्या परिणाम का व्यय होने से... **यही जीव... यही जीव अपने स्वरूप का अनुभवशीली होओ।** बस, दूसरा कोई कारण नहीं कहा कि बाहर का त्याग किया, ऐसा किया, फैसा किया। **मिथ्या परिणाम के जाने से...** बस एक बात। यह त्याग, यह व्यय। **मिथ्या परिणाम के जाने से...** बस उसका त्याग होने से **यही जीव अपने स्वरूप का अनुभवशीली होओ।** अपने आत्मा का अनुभव का शीली (अर्थात्) अनुभवशीलवान—अनुभव स्वभाववान होओ। भाषा रखते हैं बहुत जगह शीली... शीली... शीली... **अनुभवशीली होओ।** मिथ्यात्व का अनुभव है, उसको छोड़कर.... मिथ्यात्व परिणाम के जाने से... रागादि मैं हूँ, ऐसे मिथ्यात्व परिणाम के रहने से परिभ्रमण है। मिथ्यात्व परिणाम के जाने से, स्वभाव का अनुभव होने से **अपने स्वरूप का अनुभवशीली होओ।** आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु का अनुभवशीली... यह अनुभवशीली पर्याय है। समझ में आया? उसका अनुभवशील... मिथ्यात्व परिणाम के जाने से उस स्थान में आत्मा का अनुभवशील होओ। मिथ्यात्व परिणाम जाने से... जो मिथ्यात्व का अनुभव था, वह स्वभाव सन्मुख की एकता होने से अनुभवशीली हुआ, शुद्ध चैतन्य का अनुभवशीली हुआ। जो राग का अनुभवशील था, वह चैतन्य का अनुभवशील हुआ। समझ में आया? ओहोहो! **मिथ्या परिणाम के जाने से...** जाने से, वह अपने आप जाने से, ऐसा नहीं, हों! वह कहेंगे। तुम स्वभाव का अनुभव करो, स्वभाव अन्तर आनन्द विद्यमान चैतन्य है, उस पर दृष्टि एकरूप लगाओ, मिथ्या परिणाम नाश हो जायेगा। समझ में आया? दूसरे किसी कारण से मिथ्या परिणाम नाश होगा नहीं। देखो! यहाँ कितनी बात करते हैं! वे तो कहते हैं, भगवान के दर्शन करने से निद्धत-निकाचित मिथ्यात्व (कर्म) का नाश हो जाता है। हो गया। अरे भगवान! क्या कहते हैं? ऐसी बड़ी चर्चा... समझ में आया? भगवान के जिनबिम्ब का दर्शन करने से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं, ऐसा पाठ आता है।

मुमुक्षु : कितने समय से करते हैं, अभी क्यों टुकड़े नहीं हुए? भगवान ने नहीं किये इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस (निज) भगवान जिनबिम्ब का दर्शन नहीं किया, वह कहते हैं। समझ में आया? परलक्ष्यी तो शुभभाव है, पुण्य है। उससे मिथ्यात्व का नाश होता है? जिनबिम्ब भगवान आत्मा का लक्ष्य छोड़कर... ऐसे भगवान थे वीतरागी निष्क्रिय... अत्यन्त निष्क्रिय... यहाँ लोग देखते हैं, जानते हैं कि ऐसा बिम्ब है—ऐसा लक्ष्य कर अपने स्वरूप जिनबिम्ब का दर्शन किया तो, कहते हैं कि मिथ्यात्व के परिणाम का नाश हुआ। इस कारण से मिथ्यात्व परिणाम का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? कितना जोर लगा दिया। वह कहते हैं, नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व है। यह कहेंगे। यहाँ तो वह बात कहनी है न!

आचार्य कहते हैं, **तन्मुत्तवा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः...** हमें तो एक रहो। समझ में आया? आहाहा! कर्म का सम्बन्ध तो न रहो। वह तो कोई प्रश्न है नहीं, सम्बन्ध है नहीं, वह तो बाहर में है। परन्तु मैंने विकल्प से जो सम्बन्ध किया था कि मैं राग

हूँ, पुण्य हूँ, यह हूँ। स्वभाव एकत्व की दृष्टि नहीं थी तो पृथक् जो रागादि हैं, उनसे एकत्व दृष्टि की। मैंने ही की थी। समझ में आया? तो उसे छोड़कर मैं एकत्व होऊँ। चैतन्यमूर्ति मैं हूँ। '**एको अस्तु...**' मुझे तो एक आत्मा ही होओ। है, परन्तु विशेष होओ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'**इमाम् नवतत्त्वसन्ततिम् मुत्तवा**' देखो! **क्या करके? (इमाम्) आगे कहे जानेवाले (नवतत्त्व) जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप...** देखो! नौ आ गये। जीव अजीव (आदि) नौ तत्त्वरूप परिणमा है, ऐसा कहेंगे, हों! अजीवरूप परिणमे है, ऐसा कहेंगे। अजीव का अर्थ, यह अजीव जो है, उसका ज्ञान करके, अजीव मैं हूँ, ऐसा परिणम गया है। अजीव का लक्ष्य करके जो विकल्प उठते हैं, ज्ञान में जो उठते हैं, उसे ही अपना मानकर अजीवपने परिणमा है। समझ में आया?

'**इमाम् नवतत्त्वसन्ततिम् मुत्तवा**' चिल्लाहट मचा जाये कि हें... नौ तत्त्व का परिणमन मिथ्यात्व? हाय... हाय! (संवत्) १९९९ में वह आया था पहले वहाँ राजकोट। नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व... हाय... हाय! यह क्या? यह तो... पुण्य तो उड़ाते हैं, व्यवहार उड़ाते हैं, सब उड़ाते हैं कि धर्म नहीं। परन्तु नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व? यह क्या? भगवान ने नौ तत्त्व कहे हैं न? भगवान ने नौ तत्त्व कहे, ऐसा अनुभव करने में मिथ्यात्व आ गया? भाई! पुण्य और पाप, आस्रव और बन्ध और अजीव—उन सहित आत्मा नहीं, उसको सहित मानना, ऐसा नौ तत्त्व का अनुभव अनादि का है, परन्तु मिथ्यात्व है। समझ में आया?

यह संवर-निर्जरा अर्थात् जितना राग घटा न, उस अपेक्षा से उसको संवर कहा। लौकिक संवर, हों! भावसंवर नहीं। जितना राग, कर्म घटा, उसको निर्जरा कहा और अंश से बन्ध घटा, उसको मोक्ष कहा। नौ में ... अनादि का जो पुण्य परिणाम है और पाप है, वह मैं। दूसरा? देखो अजीव लेते हैं। जीव। जीव में विकल्प उठते हैं न कि मैं जीव हूँ। ऐसे दूसरे जीव को जानने से विकल्प उठते हैं और अपने जीव को जानने से विकल्प उठते हैं—उस विकल्प को जीव माना। समझ में आया? और पर का—अजीव का ज्ञान हुआ और अजीव का विकल्प हुआ, उसे अपना मानकर एकत्व हुआ। आस्रव और पुण्य-पाप

दोनों मिलकर के आस्रव हुआ। जो रुक गया, वह बन्ध है। संवर, अनादि का (द्रव्य) संवर हो, नये (भाव) संवर की बात नहीं। जितना राग मन्द हुआ, उतनी प्रकृति रुक गयी है, उस अपेक्षा से संवर कहा। अनादि का मिथ्यादर्शन का संवर-भावसंवर की बात नहीं है। अमरचन्दभाई! और निर्जरा। थोड़ा शुभभाव होता है तो कर्म खिर जाते हैं या नहीं? यह निर्जरा (अर्थात्) एकदेश राग का घटना और मोक्ष भी हुआ। क्या? एक अंश में बन्ध का अभाव, उसको मोक्ष गिनने में आया है। अज्ञानी का, हों! ऐई धन्नालालजी! नयी बात नहीं। वह तो आ गया है, प्रवचन में आ गया है। पहला प्रवचन हुआ, उसमें आ गया है। समझ में आया? भगवान आत्मा....

जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप के अनादि सम्बन्ध को छोड़कर... ऐसा अनादि से नौ का मुझे सम्बन्ध है... राग के साथ, मोक्ष अर्थात् बन्ध के एक अंश के अभाव के साथ सम्बन्ध है, (उसे) छोड़कर... नौ तत्त्व के विकल्प से सम्बन्ध था, उसको छोड़कर... ओहोहो! समझ में आया? यह तो राग को मन्द किया— कोई दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, यात्रा, पाँच-पचास लाख खर्च करे, (ऐसी) राग की मन्दता, वह मन्दता सहित अनुभव करना मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सेठ! सम्यग्दर्शन का प्रश्न करते थे न? कल कहते थे न कि हमें सम्यग्दर्शन नहीं? जाँच कर लो। नामा लिख लो ऐसा। राग की मन्दता हो, उसे अपना है, ऐसा मानना, अनुभव करना, उसका नाम मिथ्यात्व है। वह राग परतत्त्व है न? निज तत्त्व एकत्वरूप उसमें कहाँ है? समझ में आया? वीतरागमार्ग... बापू! वीतराग नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वस्तु आत्मा ही वीतरागस्वरूप है। अकेला चिद्बिम्ब, जिनबिम्ब... जिनबिम्ब, चैतन्यप्रतिमा भगवान आत्मा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह मिटावे तब मिटे न! अपने आप मिटे? ऐसे मिट जाता है कहीं? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अपने शुद्धस्वरूप एकत्व में नौ तत्त्व का सम्बन्ध (रूप) जो अनेकपने का अनुभव है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! इसमें कहीं कर्म को याद भी नहीं

किया, देखो! है ? यह और यहाँ नहीं। वह पृथक् तो है, परन्तु उसके कारण हुआ... उसके कारण हुआ, यह बात ही यहाँ नहीं है। **अनादि सम्बन्ध को छोड़कर....** अनादि से तूने सम्बन्ध किया था... तूने तेरे कारण से। उसे छोड़कर। बस समाप्त। कर्म था तो सम्बन्ध किया था और कर्म गये... क्षयोपशम होता है, तो छोड़कर होगा, यह बात ही यहाँ है नहीं। समझ में आया ? तेरी स्वतन्त्र पर्याय में एकत्वपने का भान नहीं और अनेकपने के अनुभव से एक में अनेक का अनुभव, वही मिथ्यात्वभाव है। यह मिथ्यात्वभाव तूने खड़ा किया है। किसी दूसरे ने किया नहीं और उस कारण से अनादि काल से रुलता है, परिभ्रमण करता है। चाहे तो साधु होकर पंच महाव्रत पालन करे, २८ मूलगुण पाले, परन्तु एकत्वबुद्धि है राग के साथ, विकार के साथ, भेद के साथ, वही मिथ्यात्वभाव परिभ्रमण का कारण है। समझ में आया ?

अनादि (ऐसी) '**सन्ततिम्**' की व्याख्या की। नौ तत्त्व... समझे ? नौ तत्त्व (रूप) परिणमा है, हों! आगे अभी कहेंगे। **अनादि सम्बन्ध को छोड़कर...** अभी तो 'नव तत्त्व छोड़कर' के लिये आया है। बाद में तो परिणमा है (ऐसा) आयेगा। परिणमा था तभी तो छोड़कर आया है न ? ऐसा। पहले 'छोड़कर' (ऐसा) आया है। **अनादि सम्बन्ध को छोड़कर... भावार्थ इस प्रकार है—संसार-अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है...** देखो! वह 'छोड़कर' आया है न ? छोड़कर कहाँ से ? उसरूप हुआ था—परिणमा था, तो छोड़कर हुआ न ? किसको छोड़ना ? स्त्री, कुटुम्ब को छोड़ना ? कर्म को छोड़ना ? किस चीज़ को छोड़ना ? समझ में आया ? आहाहा!

संसार-अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा... था। नौ तत्त्वरूप परिणमन था। मैं पुण्यवाला हूँ, मैं पाप हूँ, मैं आस्रव हूँ, मैं बन्ध हूँ, मैं अजीव हूँ, मैं मोक्ष हूँ... राग जरा अल्प हुआ तो मुझे मोक्ष है, मुझे संवर है, मुझे निर्जरा है... इतनी प्रकृति... कितनी बार मिथ्यात्व में भी कितनी प्रकृति मन्द तो होती है न ? ऐसा यह संवर है, निर्जरा है—ऐसा नौ प्रकार का जो विकल्प से परिणमन था... परिणमन था, उसको छोड़ना... 'छोड़ना' यह तो उपदेश किया है। स्वभाव को आश्रय करते ही नौ तत्त्व की सन्तति छूट जाती है। उपदेश करना क्या ? **अनादि सम्बन्ध को छोड़कर...** बस। नौ प्रकार का विकल्प, नौ तत्त्व का विकल्प। ओहोहो! समझ में आया ?

एक भगवान नौपने परिणमा? यह नौपने परिणमन मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? **अनादि सम्बन्ध को छोड़कर... संसार-अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है...** अजीवरूप परिणमा है। संवर, निर्जरा, मोक्ष, आस्रव, बन्धरूप परिणमा है—हुआ है। अनादि से मोक्षरूप हुआ है। कहाँ मोक्षरूप हुआ है? पहला दो बार तो कह दिया। बन्ध का अल्पभाग घटा, उसे यहाँ अज्ञानी का मोक्ष गिना। मोक्ष... उस (भाव) मोक्ष की बात नहीं है। समझ में आया? दो बार कहा, ध्यान नहीं रखा। ख्याल नहीं है। क्या? अनादि का मिथ्यादृष्टि को मोक्ष है। बन्ध का अंश में अभाव है, इतने देशरूप को गिनकर सारा मोक्ष गिनना है। अनादि का मोक्ष है, उसके पास। यह मोक्ष नहीं, हों! निर्मल मोक्ष की पर्याय, वह नहीं, आत्मा का द्रव्यमोक्ष, वह भी नहीं लक्ष्य में। थोड़ा तो मन्द है न? चाहे जो प्राणी है। निगोद में भी इतना अवकाश तो रहता है न थोड़ा? थोड़े तो छूटते हैं न कर्म? थोड़े छूटे, उसे मोक्ष गिनने में आया। आहाहा! समझ में आया?

शोर मचाये, अरर! मोक्ष की श्रद्धा भी मिथ्यात्व है? यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो मोक्ष (अर्थात्) अनादि का बन्ध का अल्पपना, उसको मोक्ष गिनकर (कहा)। और बन्ध में थोड़ा राग अशुभ है तो भी उसको थोड़ा तो पुण्यप्रकृति का भी रस पड़ता है। समझ में आया? तो संवर-निर्जरा अंश में गिनकर अनादि सम्बन्ध से जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है। लो, अनादि संवर, निर्जरा, मोक्षरूप परिणमा है। संवर-निर्जरा यह नहीं। वह भूमिका के योग्य जो कहते थे, उसरूप परिणमा है। समझ में आया?

वह तो विभाव परिणति है.... यहाँ तो वापस परिणति डालनी है न? नौ तत्त्वरूप जीव परिणमा है, वह विकारदशा है, मिथ्यात्व परिणाम है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब-फुटुम्ब तो कहीं नहीं रहे इसमें। सेठ! जांबुड़ी और जांबुड़ी का मकान कुछ यहाँ रहे नहीं। सेठ का शरीर (के साथ) बंध पड़ता है। उसका कहाँ था शरीर? कहो, समझ में आया? आहाहा! राग आया न? कहा न पहले.... भक्ति का, पूजा का, दान का... लाख-दो लाख खर्च करने का राग मन्द आया, वह भी मेरा है, (ऐसी मान्यता) मिथ्यात्वभाव है। आत्मा अकेला आया, उसके साथ ये (रागादि) मानना, मिथ्यात्व है। आहाहा! सेठ! समझ में आया?

भगवान एकरूप से.... '**एकत्वे नियतस्य**' बाद में आयेगा इसका अर्थ। पहला शब्द है न '**एकत्वे नियतस्य**' पहला शब्द है न, इसका अर्थ बाद में आयेगा। बाद में आयेगा, देशो! **(एकत्वे) शुद्धपना (नियतस्य) उस रूप है।** बाद में है आठवें पृष्ठ पर पाँचवीं लाईन है। है ? यह पहले शब्द का अर्थ है। **(एकत्वे) शुद्धपना (नियतस्य) उस रूप है।** त्रिकाल, ऐसा। '**एकत्वे नियतस्य**' जो पहला शब्द है, उसे बीच में डाला है। वस्तुमात्र की दृष्टि से देखने से शुद्धपना इसरूप है। इसरूप है, हों! त्रिकाल है। वस्तु एकरूप त्रिकाल है, एकरूप त्रिकाल है। ऐसे एकरूप की दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? ओहोहो! परन्तु क्या कलश रखा है! अकेला मक्खन रखा है। यह दिगम्बर सन्तों ने कलेजा निकालकर रखा है अन्दर (कि) देखो यह। समझ में आया ?

वह तरबूज में निकालते हैं न ? तरबूज में। छुरी मारकर बड़ा... अधमण तरबूज हो अधमण। मण-मण के तरबूज होते हैं, मण-मण के लाल... ऐसे राजा के पास जाये और सौ रुपये, सवा सौ रुपये दे। तरबूज समझते हैं या नहीं ? तरबूज नहीं समझते ? क्या कहते हैं ? तरबूज। डली मारकर ऐसे निकाले। इतना बड़ा निकाले। मण का हो तो... राजा प्रसन्न हो जाये। हाँ, राजा को बताने को... देख अन्नदाता! ऐसी ऊँची-ऊँची चीज़ आपको ही चले। हम तो पामर-गरीब व्यक्ति हैं। .... जाओ, सवा सौ रुपये ले जाओ। होवे एक रुपये का फल। उसी प्रकार यह आत्मा राजा है। अन्दर का माल एकत्वरूप जहाँ निकाला। दो उसको मोक्ष, जाओ। समझ में आया ? आत्मा स्वीकार कर तो राग नाश पाये अन्दर में से। मुक्त.... मुक्त.... मुक्त.... '**एकत्वे नियतस्य...** एकरूप वस्तु, त्रिकाल एकरूप है, ऐसी वस्तु... एकरूप का जहाँ अनुभव हुआ... समाप्त, एकरूप रहेगा। सम्बन्ध-सम्बन्ध रहेगा नहीं। (भले) सम्बन्ध थोड़ा हो, वह सम्बन्ध से पृथक् पड़ा तो सम्बन्धरहित ही हो जायेगा। समझ में आया ?

कहते हैं कि **विभाव परिणति है।** कौन ? **संसार-अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है...** देखो! इसमें कर्म-फर्म की कोई बात ली ही नहीं। **संसार-अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है, वह तो विभाव परिणति...** मिथ्यात्व की है। **इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।** इस कारण से नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव,

एकरूप वस्तु में नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह एक के सामने नौ रखा, नौ के सामने एक। यह तो गुलाँट खाकर बात समझना। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा एक होकर (भी) नौ रूप हो गया, मिथ्यात्व है, कहते हैं। मान्यता है। समझ में आया? नौ का विकल्परूप परिणमन हो गया, ऐसा कहते हैं। परवस्तु (रूप) तो होता नहीं। पैसा, लक्ष्मी, कर्म, उसरूप तो होता ही नहीं। परिणमन में मैं अजीव हूँ, अजीव का ज्ञान हुआ, वह मैं हूँ, वह भी अजीव हुआ। समझ में आया? और राग मैं, पुण्य मैं, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष (अर्थात्) अंश में—देशभाग घटता है, वह नौ का भाग, एकरूप में नौ का अनुभव मिथ्यात्व है।

देखा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो कहीं रह गयी। वह श्रद्धा राग है। वह राग अपने में मानना, वह मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! वे कहते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। और ऐसा मारते हैं। प्रश्न में ऐसा लिखा है। दया पालना मिथ्यात्व है या नहीं? अरे भगवान! यह क्या कहते हैं? पर की दया का भाव मिथ्यात्व है? यह तो शुभभाव है, पुण्य है। उसे परमार्थ से धर्म माने, अपना कल्याण होगा (ऐसा माने) तो मिथ्यात्व है। आहाहा! ....ऐसे अर्थ लगाते हैं यहाँ के कि देखो! यह दया को मिथ्यात्व कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। उदयपुर में ऐसा चला था तब पहले (संवत्) २०१३ के वर्ष में। २०१३ के वर्ष में। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। मक्खनलालजी की ओर से वहाँ आया था। पम्पलेट निकला था २०१३ के वर्ष में। इस बार सब शान्त हो गया। समझ में आया?

भाई! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो राग-शुभराग है, मिथ्यात्व नहीं। समझ में आया? उस राग को अपने स्वरूप के साथ एकत्वबुद्धि करना अथवा वह राग मेरा निश्चय सम्यग्दर्शन का धर्म है और सच्चा चारित्र है, राग मेरा चारित्रधर्म है—ऐसा मानना मिथ्यात्व है। आहाहा! क्या करे? जगत को चीज़ मुश्किल से (हाथ) आयी, वहाँ फेरफार... फेरफार करो। इसका अर्थ उल्टा करके दुनिया के समक्ष रखने लगे। कहते हैं, **इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।** कारण सहित तो रखा है। भगवान आत्मा एकरूप से नौ का विकल्प पृथक् है। पृथक् है, उसके (साथ) एकत्व का अनुभव करना

मिथ्यात्व है। अपने स्वरूप की एकत्वबुद्धि हुई, पश्चात् नौ तत्त्व के विकल्प उठते हैं, वह भिन्न रहते हैं। अपनी एकत्वबुद्धि में आते नहीं। समझ में आया? कहते हैं, इस कारण विभाव परिणति... इस कारण से, ऐसा। जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है, वह तो विभाव—विकारदशा है। परिणति कहो या दशा कहो। **इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।** ओहोहो! विभावरूप परिणमन, वह मेरी चीज़ है—ऐसी मान्यता मिथ्यात्वरूप है। समझ में आया?

'यद्स्यात्मनः इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनम् नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शनम्' अब मिथ्यात्व के सामने सम्यग्दर्शन की व्याख्या। सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं? **(यत्) जिस कारण (अस्यात्मनः) यही जीवद्रव्य (द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्)....** देखो! द्रव्यान्तर—अपने द्रव्य से अन्य द्रव्य। राग, पुण्य, शरीर कर्म—सब अन्य द्रव्य हैं। दया, दान, भक्ति, पूजा, राग सब आत्मद्रव्य से अन्य द्रव्य हैं। समझ में आया? **(द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्) सकल कर्मोपाधि से रहित जैसा है....** राग.... समझ में आया? पुण्य, विकार, विभाव सबसे द्रव्यान्तरेभ्य—भिन्न। भिन्न-रहित ऐसा आत्मा **जैसा है (इह दर्शनम्)....** ऐसा दर्शन। **जैसा है (इह दर्शनम्)....** उसका दर्शन। उसका दर्शन का अर्थ—**वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव...** देखो! दर्शन की व्याख्या। ऐसे नहीं कि देखना, अकेली प्रतीति करना, ऐसा नहीं। आहाहा! **वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव...** राग और पुण्यादि का एकत्वबुद्धि से अनुभव, वह मिथ्यात्व है और उससे पृथक् होकर अपने ज्ञान में, आत्मा का राग से भिन्न होकर प्रत्यक्ष ज्ञान में अनुभव होना, उसका नाम आत्मा का सम्यक् अवलोकन कहने में आता है। समझ में आया? उसका नाम प्रत्यक्ष दर्शन कहो या सम्यग्दर्शन कहो। ऐसे प्रत्यक्ष दर्शन में प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

प्रत्यक्ष होना तो मति-श्रुतज्ञान का विषय है, भाई! प्रत्यक्षपना तो मति-श्रुतज्ञान को लागू पड़ता है। सम्यग्दर्शन को प्रत्यक्षपना लागू नहीं पड़ता। परन्तु मति-श्रुतज्ञान में ऐसे राग की अपेक्षा बिना जहाँ अनुभव हुआ, तो प्रत्यक्ष हुआ। उसमें प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन—प्रतीति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष की बात नहीं है। समझ में आया? यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में बहुत लिया है। शिष्य ने प्रश्न किया तो मलकापुर...

मलकापुर नहीं। मुलतानपुर के रहनेवालों ने प्रश्न किया था, टोडरमलजी से। क्या? निश्चय सम्यग्दर्शन प्रत्यक्ष और व्यवहार सम्यग्दर्शन परोक्ष—ऐसा है? कि नहीं। सम्यग्दर्शन में प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद होता ही नहीं। सम्यग्दर्शन तो प्रतीतिरूप है। ज्ञान में प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद पड़ता है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी बहुत ... आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी कितनी... ओहो! समझ में आया?

(संवत्) १९८४ के वर्ष में पहले आयी थी। लिख लिया था। भेजी थी वीरजीभाई ने वहाँ दामनगर। दी नहीं उन्होंने। यदि महाराज के हाथ में जायेगी तो... छुपाकर रखी। चातुर्मास उठकर गये वहाँ अमरेली। नरभेरामभाई के यहाँ किसी का था न, वर्षीतप का पारणा था। अमरेली। उनकी बुआ का या किसी का था। ८४ में, नहीं? नरभेरामभाई आये थे। ८४ में अमरेली आये थे। किसी का पारणा था। नरभेरामभाई प्रार्थना करने आये थे। वहाँ गये तो यह चिट्ठी मिली, लो! जीवराजजी लेते आये थे। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। ८४ के मगसर महीने में वहाँ पारणा था। दामनगर के चातुर्मास से उठकर सीधे अमरेली गये थे। नरभेरामभाई प्रार्थना करने आये थे। कोई उनकी बुआ थी या कोई था। उस डेला के पास नहीं? किसका डेला कहलाता है? प्रभुभाई। प्रभुभाई को पहचानते हो? वे कलकत्ता रहते हैं। उसमें वहाँ डेला की इस ओर घर है। उनके रिश्तेदार का—वृद्धा का था। उसे वर्षीतप था। ८४ की बात है। ३९ वर्ष हुए। तब यह मिली। पढ़कर... आहाहा! यह तो कैसी बात करते हैं! यह भाई ने गुप्त रखा। बात तो यही सच्ची है। समझे? इतनी रहस्यपूर्ण चिट्ठी.... ज्ञान को प्रत्यक्ष-परोक्ष लागू पड़ता है। सम्यग्दर्शन को प्रत्यक्ष-परोक्ष लागू नहीं होता। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन प्रत्यक्ष हो जाये। लिखा है न? देखो! क्या लिखा है?

सकल कर्मोपाधि से रहित जैसा है, वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव, निश्चय से यही सम्यग्दर्शन है। देखो! यहाँ तो, अनुभव के काल में प्रतीति हुई, परन्तु अनुभव कैसा है, उसकी बात करके प्रतीति की बात की है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! प्रत्यक्षपना तो ज्ञान में होता है। सम्यग्दर्शन तो निर्विकल्प वस्तु है, ज्ञान सविकल्प है। 'सविकल्प' का अर्थ राग, ऐसा नहीं है। अपने को और पर को जानना, यह ज्ञान का स्वभाव है। ज्ञान, ज्ञान को जाने, ज्ञान, ज्ञेय—सारे द्रव्य को जाने—ऐसा प्रत्यक्षरूप से आत्मा को जानना और उसमें जो प्रतीति (हुई), उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसा अर्थ ले

लेवे उसमें से कितने ही। देखो! इमसें क्या है? **कर्मोपाधि से रहित जैसा है (इह दर्शनम्) वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव निश्चय से... नियमात्** है न। **नियमात्?** निश्चय से सम्यग्दर्शन प्रत्यक्ष (होने) को कहते हैं, ऐसा कोई ले लेवे, परन्तु ऐसा है नहीं। समझ में आया? परन्तु अनुभव को प्रत्यक्ष कहकर, जो प्रतीति हुई, उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं, ऐसा उसमें से ले लेना। समझ में आया? गजब, भाई!

यह बात कितनी कठिन है! अपवास कर डालना तो कर डाले, वर्षीतप कर डालना हो तो कर डालें।... यह मार्ग और यह वस्तु और यह क्या कहते हैं? एकरूप वस्तु, उसका प्रत्यक्षपना होना... और (कहते हैं) प्रत्यक्ष नीचे (छद्मस्थ को) होता है या केवली को होता है? प्रत्यक्षपना तो केवलज्ञान (में है)। ज्ञान के भाग तो पाँच हैं। मति-श्रुत तो परोक्ष है और अवधि, मन:पर्यय देशप्रत्यक्ष हैं। केवलज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है। नीचे (के गुणस्थान में) कहाँ आये अवधि-मन:पर्यय-केवल? तो प्रत्यक्ष कहा हुआ? अरे! सुन तो सही! ऐसा स्पष्टीकरण तो तत्त्वार्थसूत्र में भी आया नहीं, ऐसा प्रश्न करते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में मति-श्रुत को परोक्ष कहा। तुम कहाँ से प्रत्यक्ष लाये? तुम्हारे घर की बात है, आर्षवाक्य नहीं है। अरे भगवान! सुन तो सही! व्यवहार की बात वहाँ की है तो मति-श्रुत को पर का लक्ष्य करने (की अपेक्षा से) परोक्ष कहा है। अपना अनुभव में मति-श्रुत प्रत्यक्ष हो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

(संवत्) १९८२ में यह बात हुई थी भाई मगनलाल दफ्तरी के साथ। राजकोट आये थे ८२ के वर्ष में। यह पीछे मकान है न बोधाणी का, वहाँ यह बात हुई थी। यह क्या? मैंने कहा, प्रत्यक्ष है मति-श्रुतज्ञान में। ८२ के वर्ष में। मगनलालभाई दफ्तरी थे न मोरबीवाले। उन्होंने यह निकाला था। उन्हें तो वेदान्त के साथ मिलाना था। यह क्या है? प्रत्यक्ष है, मति-श्रुत में प्रत्यक्ष है। जैन का प्रत्यक्ष है, अन्य का प्रत्यक्ष नहीं। समझ में आया? यह श्लोक आता है, पंचाध्यायी में आता है। मति-श्रुत में अनुभव के समय (आत्मा) प्रत्यक्ष हो जाता है। आता है। तब ८२ के वर्ष में पहले पढ़ा था न सब। समझ में आया? ८२। १८ और २३—४१ वर्ष। यहाँ तो बहुत वर्ष से चलता है न! आहाहा! कहा, भाई! यह प्रत्यक्ष है, ऐसा कहते हैं, ऐसी बात जैन में होती है? लोगों ने ऐसी सुनी न हो बाहर से। और प्रत्यक्ष ऐसा? अरे! जैन में अर्थात् वस्तु यहाँ है। अन्यत्र वस्तु कहाँ है?

परमेश्वर आत्मा... नीचे की दशा में नौ में एकत्व है तो परोक्ष हो जाता है, परन्तु एक में एकत्व हुआ (तो) आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है। समझ में आया? ज्ञान में प्रत्यक्ष हुए बिना प्रतीति किसकी करना? जाने बिना... यह चीज़ है, ऐसा जाने बिना प्रतीति किसकी? ससला के... खरगोश के सींग की? खरगोश के सींग है नहीं तो जानता नहीं। यह आया है, १७-१८ गाथा में आता है। समयसार। वस्तु ख्याल में आयी नहीं तो 'यह चीज़ है' ऐसी प्रतीति कैसे करना? परोक्ष की प्रतीति है? परोक्ष की प्रतीति आती है? समझ में आाय? परोक्ष का ख्याल नहीं और प्रतीति करना—इसका अर्थ क्या? समझ में आया? देवीलालजी! बात ऐसी है।

ज्ञान में प्रत्यक्ष होता है कि यह आत्मा। पर के अवलम्बन बिना, राग के, मन के अवलम्बन बिना। **वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव निश्चय से यही सम्यग्दर्शन है।** पाठ है न? '**एतदेव सम्यग्दर्शनम्**' ऐसा लिया है न? **एतत एव सम्यग्दर्शनम्...** इसलिए कोई उसमें से ले जाये... ऐसा नहीं, परन्तु कोई ले जाये कि प्रत्यक्ष है, वह सम्यग्दर्शन, ऐसा। समझे? परन्तु उसका अर्थ यह कि प्रत्यक्षपने में जो प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह आत्मा... ऐसा प्रत्यक्ष हो कि यह आत्मा। ऐसा भान हुआ, उसमें प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? ओहो! कैसी बात रखी है! यह सब चलता था न! पहले था सही न यह। कलश तो चहे आते हैं या नहीं? और भाई ने कलश की टीका कैसी की है! यह राजमलजी। चर्चा बहुत चलती थी। चर्चित होगा न आत्मार्थी सब... उसमें वाँचते-वाँचते ऐसा आ जाये तो ऐसा हो जाये कि निश्चय सम्यग्दर्शन तो प्रत्यक्ष, व्यवहार सम्यग्दर्शन परोक्ष। यह प्रश्न फिर उठता है। यह पुराना है न पुराना। अभी प्रकाशित हुआ है। तब नहीं था ३५-३७ वर्ष पहले। यह पुराना है।

'**द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् इह दर्शनम्**' यह शब्द साथ में है। '**द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् इह दर्शनम् नियमात् एतत एव सम्यग्दर्शनम्**' यह शब्द। राग और प्रत्येक द्रव्य से भिन्न अपना स्वरूप एकत्व है, (वह) प्रत्यक्षरूप से अनुभव में आना, उसका नाम श्रद्धा है। अनुभव तो ज्ञान है, (साथ में) स्थिरता है। अनुभव में प्रतीति हुई, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। यह निश्चय सम्यग्दर्शन आठवें गुणस्थान की बात है? यह तो पहले की (-प्राथमिक)

बात करते हैं। भाई! अभी तो मिथ्यात्व का अभाव (हुआ तब की) बात करते हैं। अरे भगवान! क्या करता है यह? अरे भाई! मिथ्यात्व परिणमन है, विभाव परिणमन है... **पृथक् दर्शनम्...** नौ तत्त्व में तो परोक्ष रह गया आत्मा, ख्याल में भी आया नहीं। अकेला नौ तत्त्व का अनुभव तो मिथ्यात्व रहा। समझ में आया? उसके अभाव में तो बात करते हैं। तो कहे, नहीं, वह प्रत्यक्ष-ब्रत्यक्ष आठवें में होता है, शुद्ध उपयोग आठवें में होता है। भगवान! सुन तो सही भाई! तू ऐसे खून न कर। अभी ऐसी श्रद्धा भी नहीं करते, उसको अनुभव कैसे होगा? समझ में आया? प्रत्यक्ष होता है, तब आत्मा की कीमत होती है (कि) ऐसा यह आत्मा है। समझ में आया?

कल कहा था न रात्रि में? प्रकाशगुण। प्रकाश उसका गुण है। प्रत्यक्ष होना तो गुण है। तो द्रव्य जहाँ दृष्टि में आया और प्रत्यक्ष न हो तो उसकी दृष्टि में गुण आया ही नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। वस्तु में प्रत्यक्ष (होनेरूप) प्रकाश नाम का गुण है। वस्तु की दृष्टि एकत्वपने की हुई तो आत्मा प्रत्यक्ष होता है, गुण है तो उसकी पर्याय में प्रत्यक्ष हुआ। गुण है, उसका कार्य हुआ। द्रव्य में गुण व्यापक था, द्रव्य में एकाकार हुआ तो प्रकाशगुण की प्रत्यक्ष पर्याय कार्यरूप हुई। उसमें प्रत्यक्षपने द्रव्य-गुण का सारा ख्याल आया, उसका नाम प्रत्यक्ष कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया? पश्चात् भावार्थ लेंगे। फिर इसका भावार्थ लेंगे विशेष बाद में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ८, सोमवार, दिनांक २८-८-१९६७
कलश - ६, प्रवचन नं. १२

कलशटीका, जीव अधिकार, छठवाँ श्लोक। देखो! अन्तिम—आखिरी लाईन आयी न? '**यदस्यात्मनः इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनम् नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शनम्**' सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं? यह जीवद्रव्य अपने द्रव्य से अन्य—अन्य द्रव्य, अन्य (-अन्य) द्रव्य शब्द से रागादि सब अन्य द्रव्य हैं। उससे रहित—रागादि से रहित, परद्रव्य से भिन्न '**इह दर्शनम्**' आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव में दर्शन होना—प्रतीति होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में द्रव्यस्वरूप वस्तु शुद्ध चैतन्यघन है। अन्य द्रव्य (अर्थात्) अपने द्रव्य से अन्य—पृथक् द्रव्य। अन्य द्रव्य से पृथक् शब्द से राग, शरीर, कर्म (आदि) पर सब वास्तव में अन्य द्रव्य में आ गये। उससे रहित अपना शुद्ध ध्रुव स्वभाव उसका प्रत्यक्षरूप से अनुभव, ज्ञान में—मति और श्रुतज्ञान में अपना स्वरूप प्रत्यक्ष होना, उसका नाम अनुभव है। अनुभव में प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? एक ही पद में सारा भर दिया है। '**यत्**' '**यदस्यात्मनः इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनम् नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शनम्**' समझ में आया?

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय स्वतन्त्र है। पर्याय को अन्तर में मोड़ने से द्रव्य भी स्वतन्त्र दृष्टि में आना... समझ में आया? पर्याय परतन्त्र हो तो पर्याय को अन्तर में मोड़ने में स्वाधीनता रहे नहीं। समझ में आया? पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था किसी भी द्रव्य की। उत्पादरूप जो स्वतन्त्र पर्याय उस काल की स्वतन्त्र, स्वतः, पर से नहीं, पूर्व से नहीं—पूर्व पर्याय से नहीं। वास्तव में तो द्रव्य-गुण से भी नहीं; पर्याय, पर्याय से है। ऐसी सत्ता की स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि दृष्टि में होने से... व्यवहार दृष्टि... वह पर्याय स्वतन्त्र है तो अन्तर्मुख में शुद्ध चैतन्य की ओर उसका झुकाव करने से मति-श्रुतज्ञान द्वारा—मति-श्रुतपर्याय द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव में आना, उसका नाम आत्मा का अनुभव कहा जाता है। अनुभव में प्रतीति होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई! जगत ने क्या... यह वापस निश्चय सम्यग्दर्शन, हों! '**नियमात्**' शब्द पड़ा

है न ? तो '**नियमात्**' का अर्थ इतना ही है कि निश्चय से, ऐसा। नियम से अर्थात् निश्चय से। समझ में आया ?

सम्पूर्ण १४ पूर्व और १२ अंग का सार... प्रथम भगवान आत्मा पृथक् अपना द्रव्य... द्रव्यान्तर है न ? तो द्रव्यान्तर अर्थात् अपने द्रव्य से अन्य (-पृथक्) द्रव्य। समझ में आया ? उससे पृथक् अपना द्रव्य—वस्तु, उससे अन्य (-पृथक्) विकल्प, व्यवहार दया, दान, व्रत आदि या शरीर, कर्म, सब, इनसे वह पृथक् है। वास्तव में उस समय की पर्याय जो है न, है स्वतन्त्र, परन्तु वह 'पर्याय जितना आत्मा नहीं'—ऐसी द्रव्य में दृष्टि करने से पर्याय में मति-श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष स्वाद आना, आनन्द का स्वाद आना... पर्याय की स्वतन्त्रता स्वीकार करके पर्यायवान त्रिकाल (जो) पर्याय जितना नहीं है। समझ में आया ? ऐसी जो शुद्ध चैतन्यवस्तु '**द्रव्यान्तरेभ्यः**'—अन्य द्रव्य से पृथक्, तो सब पर्याय का लक्ष्य भी छूट गया। समझ में आया ?

लक्ष्य छूटा, तो रही तो पर्याय स्व का आश्रय करने में। समझ में आया ? परन्तु लक्ष्य छूट गया, पर्याय के ऊपर से लक्ष्य छूट गया। '**द्रव्यान्तरेभ्यः**'—पृथक्, अन्य द्रव्य (जो) इस द्रव्य से भिन्न। ऐसे द्रव्य पर दृष्टि देने से जो ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष हुआ... वह पर्याय है स्वतन्त्र। समझ में आया ? उस पर्याय में 'यह द्रव्य शुद्ध चैतन्य है' ऐसा शुद्धपने के अनुभव में यह शुद्ध (द्रव्य) अनुभव में आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहने में आता है। कान्तिभाई ! बहुत सूक्ष्म ! यह बाहर में सुना हो, बाहर से यह करे और यह करे... यह करो... जाओ, सम्यग्दर्शन। ले लो व्रत और तप करो। यह चीज़ क्या है, भगवान आत्मा ? एक शब्द में तो बहुत भर दिया।

'**द्रव्यान्तरेभ्यः**' शब्द है सकल कर्मोपाधि से रहित। समझ में आया ? परन्तु परवस्तु का लक्ष्य छूटकर अपना शुद्ध द्रव्य सन्मुख के लक्ष्य में अपनी पर्याय में, 'यह आत्मा शुद्ध है' ऐसा अनुभव में आना, उसका नाम ही सम्यग्दर्शन है। शोभालालभाई ! बहुत सूक्ष्म। मुश्किल-मुश्किल से आवे कभी, वहाँ ऐसा सूक्ष्म। यह प्रथम श्रेणी का बन्ध के नाश का (और) मोक्ष का प्रथम श्रेणी का उपाय है। समझ में आया ? यहाँ से मोक्ष के उपाय की शुरुआत होती है। **भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दर्शन जीव का गुण है।**

त्रिकाल। त्रिकाली में एक समय सम्यग्दर्शन—त्रिकाल श्रद्धा नाम का गुण है। **वह गुण संसार-अवस्था में विभावरूप परिणमा है।** समझ में आया? भगवान आत्मा सत् दर्शन—श्रद्धा, ऐसा त्रिकाली गुण है। वह गुण संसार अवस्था में निमित्ताधीन होकर विभावरूप परिणमा है, मिथ्यात्वरूप परिणमा है। समझ में आया?

वह गुण संसार-अवस्था में... संसार अर्थात् अनादि संसार, हों! यहाँ संसार अर्थात् (साधक)—१४वें गुणस्थान आदि की बात नहीं लेना है। कोई कहे, संसार अवस्था (में भी) शुद्धता पड़ी है न? अनादि संसार की बात है। सम्यग्दर्शन पाने के पहले की बात है, यह संसार अवस्था लेना। वरना तो संसार तो, १४वें गुणस्थान तक असिद्धभाव—संसारभाव है। वह बात यहाँ नहीं है। यह तो अनादि काल से संसार अवस्था अर्थात् वस्तु में जो राग और राग की एकता का भाव नहीं है, ऐसे (राग) भाव में जो पड़ा है, उसका नाम संसार अवस्था है। समझ में आया? भगवान आत्मा में संसार अवस्था है ही नहीं। संसार अवस्था अर्थात् उदयभाव, राग की एकता की बुद्धि मिथ्यात्वभाव। वह स्वभाव में है ही नहीं। परन्तु स्वभाव में सम्यग्दर्शन गुण है, वह अनादि से विभावरूप—मिथ्यात्वरूप परिणमा है। समझ में आया?

वही गुण जब स्वभावरूप परिणमे.... देखो! **वही गुण जब स्वभावरूप परिणमे तब मोक्षमार्ग है।** देखो! यहाँ संसार अवस्था और स्वभावरूप परिणत मोक्षमार्ग—दोनों ले लिये। क्या कहा, समझ में आया? यह... मोक्षमार्ग अवस्था है। देखो! मोक्षमार्ग। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु अखण्ड परमानन्द की मूर्ति है। पुस्तक दो सेठ को। ऐई! थोड़े देरी से आये हो। समझ में आया? शुरुआत कहाँ से होती है, वह बात चली गयी। वह कहीं फिर से नहीं आती। अब यहाँ से लेना है। संसार अवस्था में... संसार, यह अवस्था है। संसार अवस्था शब्द से मिथ्यात्व अवस्था (अर्थात्) अपना चैतन्य शुद्ध आनन्द ज्ञायकमूर्ति की सम्यक् श्रद्धा अवस्था से विरुद्ध। समझ में आया? मिथ्याश्रद्धा—राग का एकत्वपना... परद्रव्य है, राग परद्रव्य है, वास्तव में स्वद्रव्य नहीं। शुभराग का एकत्वपना, ऐसी मिथ्यात्वरूपी अवस्था। शोभालालभाई! भारी कठिन बात।

मिथ्यात्व अवस्था में, सम्यग्दर्शन गुण जो त्रिकाल था, वह विकाररूप परिणमा

है—विभावरूप परिणमा है। वही गुण जब स्वभावरूप परिणमे—उस गुण का स्वभावरूप परिणमन हो, (अर्थात्) जैसा आत्मा में स्वभाव है, ऐसा परिणमन हो सम्यग्दर्शनरूप, तब मोक्षमार्ग है। तब से मोक्षमार्ग है, इसके पहले मोक्षमार्ग है नहीं। समझ में आया? राग की एकत्वबुद्धि का परिणमन मिथ्यात्व, वह संसार। यहाँ संसार अवस्था उसे कहना है। बस, मिथ्यात्व (ही) संसार और सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग या मोक्षस्वरूप ही यह है। समझ में आया? वस्तु भगवान पूर्ण आनन्दकन्द ज्ञायकस्वभाव... आगे आयेगा। 'पूर्ण ज्ञानघन' है न उसमें? 'पूर्ण ज्ञानघन' बाद में आयेगा। पूर्ण ज्ञानघन है। पूर्ण ज्ञान... पूर्ण ज्ञान शब्द से अकेला ज्ञान (ही नहीं), यहाँ तो ज्ञान से लिया है, बाकी पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण आनन्द है, पूर्ण स्वच्छता है, पूर्ण प्रभुता है, कर्ता-कर्मशक्ति का स्वभाव पूर्ण ही है। समझ में आया?

यहाँ तो ज्ञानप्रधान से कथन किया है, क्योंकि ज्ञान में... ज्ञान में, यह श्रद्धा, यह कर्तृत्व, यह करण—ऐसा सब ज्ञान में ख्याल में आता है। तो सब गुण ज्ञान में ख्याल में आते हैं। ज्ञान यह सविकल्प स्व-परप्रकाशक प्रधान असाधारण एक गुण है। इस गुण में... दूसरे गुण अपने को नहीं जानते। दूसरे गुण अपने को नहीं जानते, पर को—ज्ञान को भी (नहीं जानते)। ज्ञान जो है, वह अपने को जानता है और श्रद्धा, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व आदि... यह ज्ञान अपने को जानता है और अनन्त गुण को (जानता है)। ऐसा एक ज्ञान में अनन्त आ गये तो सारा ज्ञानमय आत्मा हो गया। समझ में आया? उसे परमभावग्राहक कहा है।

ऐसा पूर्ण ज्ञानघन आत्मा, पूर्ण आनन्दघन आत्मा, पूर्ण परमेश्वरघन आत्मा, परम ईश्वरशक्ति सम्पन्न पूर्ण परमेश्वर आत्मा है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन जो त्रिकाल गुण अन्दर में है, उसका विभावरूप परिणमन मिथ्यात्व है, स्वभावरूप परिणमन सम्यक् है। यहाँ तो सम्यक् नहीं कहा, यह (सम्यक्) परिणमे, उसे मोक्षमार्ग कहा। सम्यक् की व्याख्या तो पहले कर दी। अब मोक्षमार्ग कहा। वही गुण जब स्वभावरूप परिणमे, तब मोक्षमार्ग है। समझ में आया? तीनों लेना है उसमें। पहली तो उस सम्यक् की व्याख्या की। परन्तु मोक्षमार्ग में तीनों ले लेना है। साथ में तीनों हैं, अकेला सम्यग्दर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

विवरण—सम्यक्त्वभाव होने पर नूतन ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मास्त्रव मिटता है... भगवान आत्मा अपना पूर्ण स्वभाव, पूर्ण शुद्ध चैतन्यवस्तु के अनुभव की प्रतीति होने से उसमें आवरण नहीं—वस्तु में आवरण नहीं, परिणाम हुआ, उसमें आवरण नहीं। तो आवरण जो है (ऐसा) नया द्रव्यकर्म उसको आता नहीं। सम्यग्दृष्टि को नया आवरण आता ही नहीं। एक बात। समझ में आया? संवर-निर्जरा बताना है। संवर-निर्जरा सिद्ध करना है। सम्यक्त्व में संवर-निर्जरा सिद्ध करना है। संवर-निर्जरा (रूप) मोक्षमार्ग में तीनों आ गये हैं, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह तीनों आ जाते हैं—यह बात सिद्ध करनी है। अमरचन्दभाई! समझ में आया?

सम्यक्त्वभाव... सम्यक्त्वभाव... भाव शब्द से पर्याय। पर्याय को यहाँ भाव कहा है। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा, उसके अन्तर्मुख होकर जो सम्यक्त्वभावरूप परिणमन पर्याय में हुआ, तो नूतन कर्म का बन्ध रुक गया (अर्थात्) संवर हो गया। भाव तो सबको कहते हैं, द्रव्य को भाव कहते हैं, गुण को भाव कहते हैं, पर्याय को भाव कहते हैं, विभाव को भाव कहते हैं, स्वभाव की पर्याय को भाव कहते हैं। यहाँ सम्यक्त्व पर्याय को भाव कहने में आया है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव में सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप शक्ति तो उसमें पड़ी है। समझ में आया? जो सम्यग्दर्शनरूप परिणमन हुआ, वह पर्याय(रूप) शक्ति श्रद्धागुण में पड़ी है, वह कोई बाहर से नहीं आती। वह पड़ी है तो अन्तर्मुख स्वभाव होकर जो सम्यक्रूप पर्याय हुई, वह मोक्षमार्ग है। सम्यक्त्व... समझ में आया? भाव होने पर यानि कि मोक्षमार्ग होने पर नूतन—नये ज्ञानावरणादि आठों कर्म रुक जाते हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

क्यों?—कि मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग—एक समय की विकारी अवस्था है। पाँचों एक समय की विकारी अवस्था है। तो विकारी अवस्था से जहाँ पृथक् हुआ, तो पाँचों उसमें आये नहीं। समझ में आया? पाँचों है नहीं अन्दर में। पर्याय में जो मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग था, वह एक समय की पर्याय में था। वस्तु की दृष्टि होने से दृष्टि में पाँचों रहे नहीं। वस्तु में है नहीं और दृष्टि में पाँचों रहे नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि उसको नूतन कर्म है ही नहीं, वह संवर कहा। और **पूर्वबद्ध कर्म निर्जरता**

है... यह तो मोक्षमार्ग सिद्ध करना है न! अपनी शुद्ध चैतन्य वस्तु जैसी है, ऐसी अन्तर्दृष्टि में आयी तो उसमें मिथ्यात्व, अव्रत आदि है नहीं। दृष्टि के विषय में है नहीं और दृष्टि मोक्षमार्ग जो प्रगटा है, उसमें वे पाँच हैं नहीं। समझ में आया? उस कारण से नये कर्म तो उसको रुक जाते हैं, परन्तु पुराने कर्म जो हैं, वह झर जाते हैं। कहो, समझ में आया? भाई! यह समझने की चीज़ है। यह कोई दे देवे, ऐसी चीज़ नहीं है कि भाई! हमको समझा दो... हमको समझा दो। कौन समझावे? बलजोरी से कोई समझा सकता है? किसी की ताकत है? तीर्थंकर की—उसकी पर्याय में ताकत है? पर को समझा सके (ऐसी) पर्याय में ताकत है? और समझनेवाले की पर्याय में ताकत है कि पर से समझे—ऐसी उसकी पर्याय है? समझ में आया? कहा न पहले। पहले भी कहा था कि पर्याय स्वतन्त्र है। उसकी पर्याय भी स्वतन्त्र है। पर से समझे, ऐसी पर्याय है नहीं उसकी। यह (जब) समझे, तब स्वतन्त्र अपने से समझता है, ऐसा कहते हैं, पर से नहीं। सेठ!

मुमुक्षु : समझने को तो इकट्ठे होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझने को अन्दर इकट्ठा होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। वस्तु वीतराग है। वस्तु वीतराग है। अभी कहेंगे। वस्तु... वस्तुमात्र शुद्धनय... वस्तुमात्र अकेली शुद्धनय (रूप) है। समझ में आया? यह आगे उसमें लेंगे, हों! शुद्धनय में लेंगे। वह है न सातवाँ श्लोक, उसमें लेंगे। **शुद्धनय वस्तुमात्र के आधीन है।** ऐसा भाई! शब्द है अन्दर। शुद्धनय की व्याख्या ही यह कही है, वस्तुमात्र। शुद्धनय अर्थात् वस्तुमात्र। सातवें (कलश) की चौथी लाईन। वस्तुमात्र... शुद्धनय की व्याख्या ही यह की है। '**शुद्धनयायत्तम्' शुद्धनय वस्तुमात्र के आधीन है।** सातवाँ श्लोक है न? सातवाँ श्लोक। अमरचन्दभाई! सातवाँ श्लोक। यह चौथी लाईन।

शुद्धनय वस्तुमात्र के आधीन है। भाषा क्या करते हैं! यह वस्तु वस्तुमात्र के आधीन है, ऐसा। यह वस्तुमात्र के आधीन है। शुद्धनय का अर्थ ही यह है। **वस्तुमात्र के आधीन है।** बस, **वस्तुमात्र के आधीन है।** सारी चीज़ वस्तुमात्र—अपने से आधीन है। '**शुद्धनयायत्तम्**' में **शुद्धनय...** अर्थात् वस्तुमात्र और '**आयत्तम्**' अर्थात् आधीन। **वस्तुमात्र के आधीन है।** अर्थात् क्या? अपनी वस्तु, वस्तु है, बस ऐसा है। पर के आधीन है ही नहीं,

वस्तु ऐसी है। राग के आधीन है नहीं, पर समझावे तो समझे, ऐसी वस्तु है नहीं। ऐई, जेठालालभाई! गजब बातें, भाई! यहाँ कहते हैं कि सम्यक्त्व भाव होने पर नये कर्म रुक जाते हैं और पुराने कर्म झर जाते हैं। बस, इस कारण से मोक्षमार्ग है। इस कारण से मोक्षमार्ग है। नये आते नहीं—संवर हुआ, पुराने झर जाते हैं—निर्जरा हुई, इस कारण से मोक्षमार्ग है। संवर-निर्जरा, यह मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

एक सम्यक् आत्मा का अनुभव होने से सम्यक् भाव से मोक्षमार्ग हुआ। क्यों हुआ? कि उसमें नया कर्म का आना रुक गया और पुराने कर्म झर जाते हैं। उस कारण से संवर-निर्जरा हो गये (और) संवर-निर्जरा ही मोक्षमार्ग है। अब, दो में से तीन को निकालेंगे। पहले भाई! सम्यक् लिया, पीछे संवर-निर्जरा लिये। अब संवर-निर्जरा में से तीन निकालेंगे। समझ में आया? एक कलश में गजब बात की है!

देखो! **इस कारण मोक्षमार्ग है।** भाई! क्रियाकाण्ड या बाह्य की वस्तु मोक्षमार्ग नहीं है। ओहोहो! भगवान आत्मा अपना पूर्ण ज्ञानघन, आनन्दघन, गुणघन, गुणपिण्ड एक वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु में दृष्टि हुई, वह दृष्टि वस्तु में पड़ी थी। समझ में आया? डाह्याभाई! जो दृष्टि सम्यक् हुई, वह अन्दर पड़ी थी। उसमें है, उसमें से निकली है। मिथ्यात्वरूप परिणमन था, स्वभाव में दृष्टि देने से सम्यक् स्वभावरूप परिणमन हुआ, वह मोक्षमार्ग है। क्यों? कि नये कर्म रुक जाते हैं, पुराने खिर जाते हैं। क्या रहा? संवर-निर्जरा हुई। समझ में आया? यह कोई समझावे ऐसा नहीं समझे। शोभालाल सेठजी! छोटाभाई समझाते नहीं, बराबर समझाते नहीं।....एक लाईन सिखलाई। एक लाईन सिखलाई एक लाईन। फिर अलग करके सीखे तो सिखलाया कहलाये। सब इकट्ठे में तो मस्तिष्क काम नहीं करता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे सब करना चाहिए। यह नये प्रकार से सिखाया जाता है उसमें सुनने में। यह कहा जाता है न, यह सीखो। सीखने के लिये तो यह बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

अब, देखो! प्रश्न उठा शिष्य का। शंका उठाकर अपने ही अपने स्पष्टीकरण करते

हैं। भगवान आत्मा संसार अवस्था में मिथ्यात्वरूप परिणमा था, विभावरूप परिणमा था, (श्रद्धा) गुण की सम्यग्दर्शनपर्याय का स्वभावरूप परिणमन हुआ—सम्यक् भावरूप हुआ, (तो) नये कर्म रुक गये, पुराने झर गये, संवर-निर्जरा हो गयी, तो मोक्षमार्ग हुआ। लो, यह मोक्षमार्ग। कठिन बात, भाई! **यहाँ पर कोई आशंका करेगा...** आशंका, हों! शंका नहीं। महाराज! क्या कहते हो? इतने में तीनों (की एकतारूप) मोक्षमार्ग आ गया? यह तो सम्यक् आया—अकेला सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ। परन्तु उसमें चारित्र कहाँ आया? समझ में आया?

यहाँ पर कोई आशंका करेगा... आशंका अर्थात् क्या है? आप एक बार सम्यक् कहते हो, दूसरी बार नया कर्म नहीं आना, पुराना झर जाना, ऐसे को मोक्षमार्ग कहते हो। मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र—तीनों हैं। चारित्र (नहीं) तो तीनों कहाँ आये? ऐसा मेरे समझ में नहीं आया, ऐसा कहते हैं। आप कहते हो, वह झूठा है, ऐसा नहीं। यह तो शंका (हो गयी)। परन्तु इसमें तीन कैसे आये? आप तो मोक्षमार्ग कहते हो। उसको तो मोक्षमार्ग कहते हो। पहले आपने कहा कि द्रव्यान्तर से पृथक् होकर अपने स्वरूप का अनुभव करना, वह निश्चय से सम्यग्दर्शन है। वहाँ तो आपने दर्शन कहा था। फिर जहाँ आगे बढ़े तो सम्यक् भाव होने पर नया कर्म रुका, पुराना कर्म झर गया (ऐसा कहकर), वहाँ तो आपने संवर-निर्जरा दो की बात की है। उसको आप मोक्षमार्ग कहते हो। मोक्षमार्ग तो हमने सुना है तीन (की एकतारूप)। समझ में आया? दर्शन-ज्ञान और चारित्र। यह तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र है। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। अभी तो सम्यक्त्व हुआ, वहाँ चारित्र कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। तीन कहाँ से आ गये? आप तो मोक्षमार्ग... मोक्षमार्ग कहते हो। मोक्षमार्ग तो तीनों (की एकतारूप) है। सुन... सुन... सुन! कहते हैं।

कहा कि **मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों के मिलन से होता है।** आपने कहा कि अन्दर आत्मा शुद्धस्वरूप सम्यग्दर्शनरूप परिणमन हुआ, (तो) मोक्षमार्ग हुआ, नये कर्म रुक गये, पुराने कर्म खिर गये। इतना सब कहा, उसमें चारित्र की कहाँ बात रही? समझ में आया? **यहाँ पर कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-**

चारित्र इन तीनों के मिलन से होता है। उत्तर इस प्रकार है—शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव करने पर तीनों ही हैं। सेठ! है उसमें? क्या है? वाँचो तो सही। उस बीड़ी का वाँचते हो, उसी प्रकार यहाँ.... बोलो। तीनों ही हैं, इतना। **शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव करने पर तीनों ही हैं।** ऐसा बराबर स्पष्ट नहीं आया। धीरे-धीरे आया। बीड़ी में ऐसा नहीं करते। ऐसा लेना है, ऐसा लेना है, लाओ। क्या छूट गया है? यह सब हाथ में होता है। ऐसा होगा? शोभालालजी जाये वहाँ सबका इनके हाथ में हो। यहाँ क्या कहते हैं, समझ में आया? पतंग उड़ता है न पतंग! पडाई समझते हो? पतंग। डोरी हाथ में रहती है। चारों ओर काम करे, ख्याल में बराबर रखे। शोभालालजी कितने रुपये लाये, कितने... सब ख्याल रखते हैं। जेठालालभाई!

मुमुक्षु : नहीं तो पतंग उड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ जाये....

यहाँ तो कहते हैं.... आहाहा! देखो न! एक आशंका में कितना डाला है! आशंका हो, शंका नहीं। महाराज! आप कहते हो, वह बराबर होगा, परन्तु मेरी शंका है। चारित्र की बात तो यहाँ आयी ही नहीं। मोक्षमार्ग आपने कह भी दिया। मोक्षमार्ग हो गया... मोक्षमार्ग हो गया... समझ में आया? (चारित्र) तो आया ही नहीं, कहाँ से मोक्षमार्ग हो गया?

उत्तर इस प्रकार है,... भगवान! सुन! **शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव करने पर...** भगवान... देखो! भाषा। शुद्ध परमात्मा अपना शुद्धस्वरूप परमानन्दमूर्ति का अनुभव करने पर... समझ में आया? 'वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावे विश्राम, रस स्वादत सुख उपजे, अनुभव ताकौ नाम।' (नाटक समयसार, उत्थानिका, पद १७)। बनारसीदास का है। समझ में आया? 'वस्तु विचारत ध्यावतै...' भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द ध्रुव ज्ञायकभाव ऐसे विचार में ध्यान करने से 'वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावे विश्राम।' संकल्प-विकल्प विश्राम हो जाते हैं। 'रस स्वादत सुख उपजे।' भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। 'रस स्वादत सुख उपजे...' आत्मा के रस का स्वाद अनुभव में लेने से, 'अनुभव ताको नाम' इस अनुभव में तीनों आ गये—दर्शन-ज्ञान और चारित्र। समझ में आया?

देखो ! **शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव करने पर तीनों ही हैं। तीनों ही हैं।** स्वरूप की प्रतीति हुई, स्वरूप का स्वसंवेदन ज्ञान हुआ, स्वरूप में आनन्द के स्वाद में लीनता हुई—तीनों आ गये। आहाहा ! अरे ! अपने स्वरूप का माहात्म्य उसको नहीं है। क्या चीज़ भगवान सारा परमात्मा... स्वयं साक्षात् परमात्मस्वरूप ही है। शक्ति और सत्त्व से परमात्मस्वरूप आत्मा है। उसकी पर्याय में शक्ति है, वह व्यक्त होती है। उसमें न हो तो प्रगट में कहाँ से आयेगा ? समझ में आया ? तो कहते हैं कि जब शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा... सारी दूसरी बात एक ओर पड़ी रही। भाई ! इतना सुना और कषाय मन्द किया, इतना जानपना किया, वाद-विवाद से दूसरे को हटाया और हम जीत गये। झंझट एक ओर पड़ी रही। समझ में आया ?

तेरा भगवान तुझे मिला। भगवानस्वरूप परमात्मा का माहात्म्य देख। विस्मय होकर जहाँ झुक गया अन्दर में, तो जो आत्मा का आनन्द का अनुभव हुआ, (उसमें) तीनों आ गये—दर्शन भी आया, ज्ञान भी आया और चारित्र भी आया। स्वरूपाचरण स्थिरता साथ में है। देखो ! उसमें स्वरूपाचरण भी कहा अकेले सम्यक्त्व में। समझ में आया ? वह कहते हैं न, मना करते हैं न अभी ? चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता। अरे भगवान ! आहाहा ! वह है तो भगवान परन्तु पामर होकर पड़ा है। श्रीमद् ने लिखा है कि प्रभु के गुण का पार नहीं होता, परन्तु अपलक्षण का भी पार नहीं होता। 'प्रभु सर्व गुणसम्पन्न' ऐसा शब्द है पत्र में—श्रीमद् में। प्रभु सर्व गुणसम्पन्न, परन्तु अपलक्षण का भी पार नहीं होता। उस पर्याय में अपलक्षण (और) सर्व गुणसम्पन्न वस्तु में। समझ में आया ?

लोग कहते हैं, देखो ! परमात्मा के भी दोष निकालते हैं। शान्तिभाई ! श्रीमद् को ऐसा कहते हैं लोग। प्रभु सर्व गुणसम्पन्न, उसमें भी अपलक्षण हैं। अभी भगवान के अपलक्षण निकाना है। अरे सुन न ! तेरी बात करते हैं। परमात्मा तो पूर्ण हो गये, उनमें उपलक्षण है ही कहाँ ? अपलक्षण समझते हो ? खोटे लक्षण—बुरे लक्षण। तो भगवान की बात कहाँ है ? यहाँ तो भगवान तू है, ऐसा कहते हैं। तुझमें सर्व गुणसम्पन्न(पना) है। भगवान ! (तू) सर्व गुणसम्पन्न। अनन्त सिद्ध की पर्याय से सम्पन्न भगवान आत्मा है। उसकी पर्याय में अपलक्षण हैं। राग मेरा, राग से मुझे धर्म होगा, राग मैं करता हूँ, राग से

मैं अधिक हूँ, मैं पुण्य करता हूँ—ये तेरे अपलक्षण मिथ्यात्व के अपार हैं। छोड़ न अपलक्षण अब! समझ में आया? इसलिए कहा था।

भगवान में अपलक्षण निकालते हैं। भगवानजीभाई! आता है न पत्र में? श्रीमद् में आता है। यहाँ यह कहते हैं, भाई! मिथ्यात्वरूप परिणमे, ये तेरा अपलक्षण है। भगवान आत्मा अपने स्वरूप में शुद्ध चैतन्य पर दृष्टि करके जो अनुभव स्वसन्मुख में हुआ, उसमें तीनों आ जाते हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप के आनन्द का स्वादरूपी आचरण। समझ में आया?

कैसा है शुद्ध जीव? 'शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य' निर्विकल्प वस्तुमात्र की दृष्टि से देखते हुए... शुद्धनय की व्याख्या यह। **निर्विकल्प वस्तुमात्र की दृष्टि से देखते हुए...** अन्तर में। **शुद्धपना उसरूप है।** त्रिकाल शुद्धरूप ही है। त्रिकाल... देखो! यहाँ बात... **निर्विकल्प वस्तुमात्र की दृष्टि से देखते हुए शुद्धपना उसरूप है।** त्रिकाल, शुद्ध एकरूप त्रिकाल है। समझ में आया? कब?—कि निर्विकल्पदृष्टि से देखते हुए, ऐसा लिया। ऐसे शुद्ध... शुद्ध है, ऐसा नहीं। आहाहा! कहते हैं, **'शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य' निर्विकल्प वस्तुमात्र....** शुद्धनय से देखने से... वर्तमान में दृष्टि से—शुद्धनय की दृष्टि से देखने से (वस्तु) देखने से शुद्धपना, उसरूप है। त्रिकाल शुद्धरूप है। त्रिकाल शुद्ध उसरूप ही है। उसका रूप ही शुद्धरूप है... उसका रूप ही शुद्धरूप है। त्रिकाल, हों त्रिकाल, परन्तु निर्विकल्पदृष्टि से देखने से। ऐसे देखे बिना निर्विकल्प शुद्ध है... शुद्ध है... वह उसके ख्याल में आयेगा नहीं। अमरचन्दभाई! समझ में आया?

यह तो मोक्ष के मार्ग के रत्न के झरने की बात है। समझ में आया? लोगों को यह कठिन पड़ता है। अभ्यास नहीं और मार्ग जैसा है, ऐसी रुचि करने की जिज्ञासा नहीं। तो उसे ऐसा लगे और दूसरा बता दे कि ऐसा होता है, भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, दया करो, व्रत करो, करते... करते... करते निश्चय हो जायेगा। क्या कहा? परम्परा बताते हैं। ऐसा कहते हैं, उससे परम्परा से होगा। लहसुन... लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। लहसुन खाते-खाते... वह लहसुन कहते हैं न लहसुन। वह ढोकला बनाते हैं, क्या कहते हैं ढोकला को? हमारे में ढोकला कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं? चावल के

बनाते हैं न! उसमें मसाला डाले... मसाला डाले लहसुन का। लहसुन... लहसुन का मसाला। खाओ... डकार कस्तूरी की आयी। लहसुन खाये और कस्तूरी की डकार कहाँ से आये? उसी प्रकार राग की क्रिया में निर्मलता की पर्याय की डकार कहाँ से आयी? समझ में आया?

निरालम्बी वस्तु... निरालम्बी, निरपेक्ष वस्तु। यह आगे आयेगा तो लेंगे। शुद्ध वस्तु निरपेक्ष है, राग की अपेक्षा या निमित्त की अपेक्षा या सुनने की अपेक्षा वस्तु में है ही नहीं। आहाहा! वस्तु ऐसी है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। '**शुद्धनयायत्तम्**'—अकेली वस्तुमात्र अपने आधीन है। कोई किसी के आधीन नहीं। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? कहते हैं, **निर्विकल्प वस्तुमात्र की दृष्टि से देखते...** अर्थात् शुद्धनय से देखना, ऐसा लिया। यहाँ भेद करके लिया। वस्तु वास्तव में स्वयं शुद्धनय है, परन्तु यहाँ शुद्धनय से देखने से जो त्रिकाल शुद्धपना दृष्टि में आया, उसको यहाँ शुद्ध कहते हैं। त्रिकाल वस्तु शुद्ध... शुद्धदृष्टि से देखने से त्रिकाल वस्तु शुद्ध है। समझ में आया? अशुद्ध दृष्टि से देखने से वस्तु तो देखने में आती नहीं। अशुद्ध (दृष्टि का) लक्ष्य तो पर के ऊपर जाता है और अशुद्धता है तो राग-द्वेष विकल्प आदि है। पुण्य का विकल्प अशुद्ध है, उसे देखने से आत्मा देखने में आता ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो वस्तु की दृष्टि... निर्विकल्प वस्तु है, राग बिना की चीज़ है, पर के, विकार के मिश्रपने रहित चीज़ है—ऐसी चीज़ को अपने निर्विकल्प शुद्धनय से—शुद्धदृष्टि से देखने पर त्रिकाल शुद्धनयरूप है। समझ में आया? शुद्धदृष्टि से देखने से... राग से, व्यवहार से देखने से, (ऐसा) तो उसमें आया नहीं। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : शास्त्र के अर्थ क्या करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करते हो आप शास्त्र के अर्थ? ऐसा क्या अर्थ करते हो? ऐसा कहते हैं। देखो! उसमें पड़ा है या नहीं? आहाहा! भगवान! तेरा अर्थ जैसा है, ऐसा होता है। अर्थ अर्थात् जीववस्तु—पदार्थ है ऐसी। समझ में आया? परन्तु वह बात अन्दर... ऐसा निरालम्ब? निरालम्ब? एकदम? अरे! एकदम ऐसी है ही। एकदम क्या? आहाहा! कहो, न्यालभाई! इसमें, राग की मन्दता से देखने में आता है, लाभ होता है, इससे इनकार करते हैं। वस्तु ऐसी है नहीं। वस्तु शुद्ध ध्रुव चैतन्य है, शुद्ध परमानन्द ज्ञायक है, तो ऐसी

शुद्धदृष्टि कहो या निर्विकल्पदृष्टि कहो... समझ में आया ? या शुद्धनय से कहो। देखने से सारा आत्मा शुद्ध ध्रुव ही है, बस।

'**शुद्धनयतः...**' शुद्ध का अर्थ '**नियतस्य**' शुद्धनय से शुद्धपना उसरूप है। बस, उसरूप है त्रिकाल। समझ में आया ? अशुद्धता उसमें कभी हुई ही नहीं। वस्तु में अशुद्धता कहाँ आयी ? परन्तु ऐसी दृष्टि करने से शुद्धपना ख्याल में आता है, उसके अतिरिक्त आता नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : स्वभाव सन्मुख हुए बिना मलिन... मलिन....

पूज्य गुरुदेवश्री : मलिन है, (ऐसा) देखते हैं तो दिखता है कि... स्वभाव शुद्ध त्रिकाल है तो वर्तमान शुद्धदृष्टि से वह शुद्धता अनुभव में अती है अथवा वर्तमान शुद्ध निर्विकल्पदृष्टि से ही वह त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा अनुभव में आता है। विकल्प से नहीं आयेगा। क्योंकि वस्तु में तो है नहीं और शुद्धपने की पर्याय वस्तु में थी, ऐसी दृष्टि जब प्रगट करके देखते हैं तो पूरी वस्तु शुद्धरूप ही है। भारी सूक्ष्म, भाई!

यह तो समयसार, भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट, परमेश्वरपद बतानेवाला, आहाहा! अद्वितीय नेत्र। पहले जब समयसार आया था। हम तो हमारे सेठ को कहते थे... उसे खबर नहीं कि ऐसा (परिवर्तन) होगा। दामोदर सेठ था न ? कहा, सेठ! यह अशरीरी (होने की) पुस्तक (—शास्त्र) है, अशरीर बनाने की चीज़ है इसमें। ७८ में पहला। अशरीरी (होने की) चीज़ है। शरीररहित होना, ऐसा उसमें है। कुछ मिलना-फिलना (है नहीं)। हाँ, तब तो बहुत नहीं था न वह। प्रेम था। सच्ची बात है महाराज! सच्ची बात है, ऐसा कहा, हों! यह कौन मानेगा ? ऐसा भी कहा। वह तो मर गये। उसे तो बेचारे को खबर भी नहीं। मुझे खबर है। उस समय दामनगर के बाहर अकेले बैठे थे। बाहर वह है न पतरा, वहाँ मैं पाट पर बैठा था। ... आवे, शाम को आवे, दोपहर को आवे। ऐसा कौन मानेगा ? ऐसा बोले थे। ऐसा कौन मानेगा ? मानो, न मानो, वस्तु तो ऐसी है। फिर तो फेरफार हो गया। बाद में तो भूलें निकालने लगे, पश्चात् तो सब बदला तो, ओय! यह तो चक्कर फिरा, यह तो अपने में नहीं रहे। ७८, संवत् १९७८। २२ और २३ = ४५ वर्ष पहले की बात है। तब समयसार आया। कहो, समझ में आया ?

शुद्धदृष्टि से देखने से भगवान शुद्ध ही है। समझ में आया? विकल्प से देखने से वह दृष्टि में आता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। राग से, व्यवहार से, निमित्त से देखने से वह चीज़ देखने में आती ही नहीं। आहाहा! यह है या नहीं उसमें? सोमचन्दभाई! अर्थ है या नहीं उसमें? है? कितने ही कहते हैं, घर का कहते हैं। कितने ही ऐसा कहते हैं। भाई! सुन, बापू! तू परिचय तो कर थोड़ा। तुझे चीज़ की खबर नहीं, इसलिए तू मानो... ऐई, ऐसा निश्चय होता है, निश्चय से निश्चय होता है, व्यवहार-फ्यवहार कुछ है ही नहीं। नहीं है, ऐसा कौन इनकार करता है? है न। उसके घर में रहा। समझ में आया? भाई! चीज़ ऐसी है। आहाहा!

कहते हैं, जैसा वीतरागस्वरूप है, वीतराग दृष्टि से देखने से यह वीतरागस्वरूप ऐसा भान में आयेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! नहीं कुछ रहता यह। कहाँ गये हीराभाई? तुम्हारे पिता ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह जिस प्रकार से है, उस प्रकार से दृष्टि न हो, तब तक वह जवाब नहीं देगा। बड़ा बादशाह हो, उसको पामर कहे तो जवाब देगा? नहीं देगा। अरबोंपति हो, उसको कहे भिखारी। भान-खबर नहीं, उसे खबर नहीं। उसको क्या है... इसी प्रकार वस्तु भगवान निर्विकल्प चैतन्यबिम्ब वीतरागबिम्ब है आत्मा। ऐसी दृष्टि—वीतरागदृष्टि से वह ख्याल में आया कि आत्मा वीतरागपने है। समझ में आया? राग-फाग कुछ काम करता नहीं, निमित्त-फिमित्त, व्यवहार-फ्यवहार कुछ काम करते नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अभी तो श्रद्धा करने में पसीना... पसीना... उतरता है। अरर! हाय! ऐसा है? भगवान का मार्ग सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं होता। अरे! सुन तो सही! दृष्टि निरपेक्ष हुए बिना... वस्तु निरपेक्ष है। तो उसकी दृष्टि में निरपेक्षता आये बिना निरपेक्षवस्तु दृष्टि में आयेगी नहीं। ऐसा वे कहते हैं, एकान्त है। दूसरी अपेक्षा न ले तो नय मिथ्या हो जाते हैं। अरे! सुन तो सही! सम्यक् एकान्त किये बिना दूसरे नय का ज्ञान यथार्थ होता नहीं। व्यवहार की अपेक्षा छोड़े बिना, निरपेक्ष हुए बिना व्यवहार का ज्ञान—व्यवहार कैसा है, उसका ज्ञान—उसको होता ही नहीं। समझ में आया?

अब दूसरा प्रकार रखते हैं थोड़ा। अनुभव और अशुद्ध अनुभव—ऐसा प्रकार करते हैं।

भावार्थ इस प्रकार है—जीव का लक्षण चेतना है। चेतना है। भगवान आत्मा चेतन (और) लक्षण चेतना। चेतना द्वारा ज्ञात होता है, परन्तु चेतना के प्रकार... चेत गया उसमें प्रकार तीन हैं, यह बताते हैं। **वह चेतना तीन प्रकार की है—एक ज्ञानचेतना, एक कर्मचेतना, एक कर्मफलचेतना। उनमें से ज्ञानचेतना शुद्ध चेतना है...** क्या? यदि ज्ञान की पर्याय—चेतना अर्थात् स्वभाव को चेतकर एकाग्र हो, वह शुद्धचेतना होती है, वह आनन्दसहित चेतना है। जो चेतना अपने को चेते—अपने को जानने में अनुभव में ले, ऐसी जो ज्ञानचेतना की वर्तमान पर्याय—वर्तमान दशा स्वरूप में एकाग्र होकर जो प्रगट हुई, वह ज्ञानचेतना शुद्ध है। ज्ञानचेतना अपने स्वरूप की वस्तु है और उसमें आनन्द का वेदन हो, उसे ज्ञानचेतना कहने में आता है। आहाहा! भाषा देखो! शास्त्र के जानपने को ज्ञानचेतना नहीं कहा। आहाहा! भाषा तो देखो! एक आचार्य की कथन की पद्धति।

ज्ञानचेतना अर्थात् वस्तु जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसको चेते... उसको चेते, ऐसी पर्याय को ज्ञानचेतना कहते हैं। भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर, अपनी ज्ञानपर्याय ज्ञातापने में एकाग्र हो, ऐसी चेतना को... उसमें ऐसा नहीं लिया कि इतना जानपना हो तो ज्ञानचेतना, इतना कम (जानपना) हो तो ज्ञानचेतना (नहीं) और प्रश्न पूछे और तुरन्त आवे तो ज्ञानचेतना। समझ में आया? प्रश्न पूछे और न आवे तो ज्ञानचेतना नहीं—ऐसी व्याख्या ज्ञानचेतना की है ही नहीं। क्या नाम तुम्हारा? कान्तिभाई। कान्तिभाई को प्रेम है। वस्तु यह है, इसका शरण लिये बिना तीन काल में कहीं सुख नहीं है। सम्प्रदाय की दृष्टि चाहे जो बतावे, परन्तु यह मार्ग अंगीकार किये बिना स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि नहीं होगी, आत्मख्याति नहीं होगी। समझ में आया? यह ज्ञानचेतना... **उनमें से ज्ञानचेतना शुद्ध चेतना है...** देखो भाषा! भगवान आत्मा... इस ज्ञानचेतना के प्रकार तीन हैं—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। परन्तु है वह ज्ञानचेतना। वस्तु जो अखण्ड ज्ञायकस्वरूप है, उसमें एकाकार होकर अनुभवना, वह ज्ञानचेतना। ज्ञानचेतना में तीनों आ गये—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। समझ में आया?

भिन्न-भिन्न प्रकार से बात करते हैं। यह तो इसका अर्थ करते हैं। '**एकत्वे नियतस्य**' कहा है, इसका अर्थ करते हैं। यह शब्द नहीं। शब्द तो अन्त में आयेगा। एक शब्द रह गया है, वह बाद में आयेगा। सम्यक्त्व के बाद। 'सम्यक्त्व है' इसके बाद एक शब्द रह गया

है। पश्चात् व्याप्त का आयेगा। यहाँ तो स्वयं स्पष्ट करते हैं। क्यों ? कि आत्मा शुद्धदृष्टि से देखने से शुद्ध है, उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। निर्विकल्प (दृष्टि) से देखने से शुद्धरूप ही वस्तु है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। ज्ञानचेतना, शुद्धदृष्टि से देखने से कहा, वह ज्ञानचेतना है। चेतना (जो) अपने स्वरूप में एकाग्र है, वह ज्ञानचेतना, बस। अपने स्वरूप को चेतती है, उसका नाम ज्ञानचेतना। कितना पढ़ा, कितना लिखा, कितना समझाने में आता है, समझने की विशेष शक्ति है तो दूसरे को समझावे—यह बात ज्ञानचेतना में है ही नहीं। समझ में आया ?

ज्ञानचेतना उसको कहते हैं, भगवान आत्मा चैतन्य आनन्दस्वरूप का अन्दर वेदन जो ज्ञान करे, उसे ज्ञानचेतना कहा जाता है। बस, वही मोक्षमार्ग है। आहाहा ! पाँच-छह (मिनिट) बाकी है। **शेष अशुद्ध चेतना है...** अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प में कर्तापने चेत जाना, वह कर्मचेतना... कर्मचेतना। ज्ञानचेतना से विरुद्ध पुण्य-पाप का विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय का राग, वही कर्मचेतना। समझ में आया ? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का परिणाम और शास्त्र का ज्ञान, यह कर्मचेतना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह .... पुरुषार्थ उल्टा करता है इसलिए दरकार नहीं अभी अन्दर। वह रस है पैसे का। सेठ !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : डाले कहाँ ? अन्दर से ममता घटा दी है। रुचि... रुचि... रुचि बदले। पैसे पड़े रहते हैं इसके घर में। कहाँ घुस गये हैं ? रुचि को बदल दे। मुझमें सुख है, पर में तीन काल में सुख नहीं। शरीर मैं नहीं, विकल्प मैं नहीं, पैसा मैं नहीं, स्त्री मैं नहीं, कुटुम्ब मैं नहीं, इज्जत मैं नहीं, देवलोक मैं नहीं। समझ में आया ? कहो, सेठ ! इस सेठाई में सुख नहीं, दुःख है। हाँ, हम पैसेवाले। यह तुमको कहते हैं कि दोनों भाई बहुत सुखी हैं। ऐसा कहते हैं। दो भाई भगवानदास शोभालाल सेठ। बहुत सुखी हैं, ऐसी लोग बात करते हैं। धूल में भी सुखी नहीं, दुःखी है। वहाँ कानपुर कितना रहते हैं ? सुखी हैं, इसलिए रहते होंगे ? राग... राग का कमाना है वहाँ। समझ में आया ?

भाई! आत्मा में सुख है, वह ज्ञानचेतना से सुख का भान होता है, ऐसा कहते हैं। कोई क्रियाकाण्ड से, राग से, निमित्त से उसमें कुछ सुख है नहीं। उसमें सुख है नहीं तो सुख का अनुभव पर से कहाँ से आया? समझ में आया? पुण्य का भाव कर्मचेतना है। कर्मचेतना से ज्ञानचेतना होती है, ऐसा कभी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा आदि में पाँच-दस लाख खर्च कर डाले—(ऐसा) शुभभाव, वह कर्मचेतना है। उसमें पुण्यबन्ध का कारण है। उससे ज्ञानचेतना प्रगट नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! समझ में आया? पाप... दो आये न उसमें—अशुद्धचेतना में? एक कर्मचेतना और एक कर्मफलचेतना। हर्ष-शोक आना। हर्ष-शोक... कोई चीज़ देखकर हर्ष-शोक (होना, वह) कर्मफलचेतना है, दुःखचेतना है, दुःखरूपी चेतना है। हर्ष-शोक, यह दुःखरूप चेतना।.... का करना, वह दुःखरूपचेतना। एक ज्ञानचेतना सुखरूप है। यह विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ९, मंगलवार, दिनांक २९-८-१९६७
कलश - ६-७, प्रवचन नं. १३

समयसार कलश अधिकार है। जीव अधिकार। कैसा जीव का अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है, वह बात चलती है। जीव अधिकार है न? जीव। कैसा जीव का अनुभव होने से सम्यग्दर्शन कहने में आता है? यहाँ आया है, देखो! **जीव का लक्षण चेतना है।** भगवान आत्मा का लक्षण चेतना है (अर्थात्) चेतना। **वह चेतना तीन प्रकार की है—एक ज्ञानचेतना, एक कर्मचेतना, एक कर्मफलचेतना। उनमें से ज्ञानचेतना शुद्ध चेतना है....** क्या कहते हैं? आत्मा में जो ज्ञान—वर्तमान ज्ञान है, वह त्रिकाल ज्ञायक में एकाकार हो.... चेतना... चेतन की चेतना—वर्तमान पर्याय चेतन में एकाकार हो, अपना अनुभव करे, उसका नाम ज्ञानचेतना कहा जाता है। समझ में आया? शुद्धचेतना... ज्ञानचेतना अर्थात् जो ज्ञायक चैतन्यवस्तु है, सर्वज्ञ ने कही हो। कोई कहे कि भाई! आत्मा चेतनामात्र है, उसमें चेतना है, ऐसा माने तो? आता है न, अर्थ में आता है। पण्डित जयचन्दजी में, इसमें ही आयेगा। उसे समकित... चेतन... सर्वज्ञ परमात्मा ने '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो...**' सर्वज्ञ ने आत्मा को उपयोगमय—चैतन्यमय देखा है। ऐसे आत्मा को वर्तमान ज्ञान की अवस्था से... अवस्था से अन्तर एकाकार होकर अपने चैतन्य को चेतना चेते, उसका नाम ज्ञानचेतना कहा जाता है। समझ में आया?

अपना आत्मा चेतन, उसकी चेतना—ज्ञान की दशा चेतन को चेते—अन्तर को चेते, अन्तर स्वभाव की एकाग्रता से ज्ञान की चेतना आनन्दसहित प्रगट हो, उसका नाम ज्ञानचेतना कहते हैं। उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। धर्म की पहली शुरुआत ज्ञानचेतना के अनुभव से होती है। समझ में आया? **शेष अशुद्ध चेतना हैं।** उनमें से अशुद्ध चेतनारूप वस्तु का स्वाद... अशुद्ध के दो प्रकार। पुण्य-पाप का राग, उसमें ज्ञान चेता (-रुक) जाये, ज्ञान की पर्याय राग में एकाग्र होकर कर्तारूप से रुक जाये, उसका नाम कर्मचेतना कहा जाता है (कि) जो अधर्मचेतना है। समझ में आया? पुण्य-पाप, शुभ-अशुभराग—विकल्प में ज्ञान की पर्याय चेतना अर्थात् एकाग्र हो, वह कर्मचेतना है।

जड़ की यहाँ बात नहीं है। कर्म अर्थात् जड़, ऐसा यहाँ नहीं। कर्म अर्थात् रागरूपी कार्य। पुण्य-पाप का विकल्प, शुभ-अशुभराग, ऐसा कार्य, उसमें ज्ञान एकाकार हो जाये, वह कर्मचेतना है। कर्मचेतना मैली है, दुःखरूप है, अशुद्ध है। समझ में आया? यह अधर्म है। समझ में आया?

अधर्म बाहर में नहीं होता और धर्म भी बाहर में नहीं होता। अधर्म... अपनी ज्ञानदशा पुण्य-पाप के राग में रुक जाये और वह परिणमन मेरा है, ऐसी कर्तृत्वबुद्धि में अशुद्धता का वेदन हो, उसका नाम अधर्मदशा—अधर्मचेतना—कर्मचेतना कहा जाता है। और हर्ष-शोक का वेदना... हर्ष-शोक का वेदना, वह रागरूपी जो कार्य, उसका वह फल है, वह कर्मफलचेतना है। वह विकार का फल है। जड़कर्म की बात यहाँ नहीं है। कर्मफलचेतना विकारी जो शुभराग, उसमें हर्ष का होना और द्वेष में दुःख का, शोक का होना, वह कर्मफलचेतना है, वह अशुद्ध चेतना है, दुःखरूप चेतना है, अधर्मचेतना है, जहर चेतना है। आहाहा! समझ में आया? **अशुद्ध चेतनारूप वस्तु का स्वाद सर्व जीवों को अनादि से प्रगट ही है।** अशुद्ध अर्थात् राग पुण्य-पाप का राग और हर्ष-शोक का फल, उसका अनादि से संसार में—निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक जो गये—सबको इस अशुद्ध चेतना का ही अनुभव है। समझ में आया?

शुभ-अशुभराग, हर्ष-शोक का भाव, यह अशुद्ध, मैल, जहर का अनुभव है। अनादि के अज्ञान में उसी का अनुभव है। कहो, सेठ! पैसे का और बीड़ी का नहीं, ऐसा कहते हैं। किसका अनुभव है अनादि से? शरीर का नहीं, कर्म का अनुभव नहीं, कर्म का अनुभव नहीं। कहते हैं न कि कर्म का अनुभव करते हैं? विपाक अनुभव... कर्म का विपाक आता है, (उसका) अनुभव करते हैं। वह तो निमित्त से कथन—बात है। कर्म का अनुभव अज्ञानी को भी होता नहीं। जड़कर्म जो उदय में आते हैं, वह जड़ की मूर्त पर्याय है। उस मूर्त पर्याय का अज्ञानी को भी अनुभव वेदन में नहीं आता। आहाहा! कर्म मूर्त, जड़ है। जड़ का पाक होता है, वह भी मूर्त है, अजीव है, जड़दशा है। जड़दशा में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की वह पर्याय है। उसका (-जड़ का) अनुभव अज्ञानी को निगोद में भी नहीं होता। समझ में आया?

अपना शुद्ध स्वभाव आनन्द को भूलकर हर्ष और शोक, रति और अरति, राग और

द्वेष, पुण्य और पाप—(उस) भाव का वेदन अनादि से अज्ञानी को है। समझ में आया? नहीं आत्मा का अनुभव, नहीं पर का अनुभव। नहीं आत्मा आनन्दमूर्ति का अनुभव, नहीं स्त्री-कुटुम्ब, परिवार, दाल, भात, सब्जी, रोटी, माँस-हड्डी (शरीर) का अनुभव, नहीं कर्म का अनुभव। बस, राग और द्वेष, पुण्य और पाप, हर्ष और शोक। निगोद से लेकर अनादि से जितने भव किये, उस भव में राग और द्वेष, हर्ष-शोक का ही उसने वेदन किया है। शोभालालजी! पर का क्या करे? पर तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। समझ में आया?

और पर आत्मा का अनुभव क्या करे? पर के आत्मा की अरूपी पर्याय उसमें रही। यहाँ तो आती नहीं। समझ में आया? उसने अनुभव किया, भगवान आत्मा के आनन्द को छोड़कर दुःख की चेतना का अनुभव किया अनादि से। एक क्षण भी उसने ज्ञानचेतना का अनुभव किया नहीं। समझ में आया? आत्मा के भान बिना चाहे जो व्यवहार रत्नत्रय (कि जिसे) व्यवहाराभासरूप कहो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र पढ़ने का भाव—यह सब अशुद्धचेतना है। अशुद्ध का वेदन है। आहाहा! समझ में आया? भगवान की पूजा-भक्ति में उठता जो राग, (वह) अशुद्धचेतना है। दया-दान का भाव उठता है, वह अशुद्धचेतना है। सेठ! बहुत सूक्ष्म है। यह सेठ बहुत समय से... वह कहते हैं। देखो! है या नहीं? देखो, क्या कहा?

उनमें से अशुद्ध... उनमें से अर्थात् ज्ञानचेतना शुद्ध और अशुद्धचेतना—दो में अशुद्धचेतना का—वस्तु का अनुभव—स्वाद सर्व जीवों को अनादि से प्रगट है, ऐसा। प्रगट वेदन उसका ही है। पर्याय में—अवस्था में—दशा में—हालत में अशुद्ध का प्रगट वेदन—दुःखरूप वेदन अनादि का है। समझ में आया? आहाहा! अशुद्धचेतना से आत्मा की शुद्धचेतना प्रगटे? आहाहा! भाई! यह दिशाफेर की दशा—चेतना है... दिशाफेर की चेतना है। परसन्मुख के लक्ष्यवाली शुभ-अशुभराग की चेतना, वह तो अशुद्धचेतना दुःखरूप है। समझ में आया? राग-द्वेष, पुण्य-पाप का विकल्प का वेदन, वह अशुद्ध है, दुःखरूप वेदन है। आहाहा! शास्त्र आदि में बुद्धि जाती है तो, कहते हैं कि राग अशुद्धचेतना का अनुभव है। आहाहा! गजब बात है! व्यभिचार कहा। शास्त्र में बुद्धि जाये, वह व्यभिचारिणी है। अरे! गजब बात है। अब (लोग) कहते हैं, भगवान की वाणी को व्यभिचारिणी कहते हैं—ऐसा लगा दिया। अरे भगवान! ऐसा न कर, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, तेरा आत्मा राग में आता है और परलक्ष्य में जाता है तो उस राग को भगवान व्यभिचार कहते हैं। भाई! आत्मा आनन्दस्वरूप है और राग विकाररूप है। तो राग का संयोग किया और अनुभव किया, वह व्यभिचार वेदना है। समझ में आया? राग, वह संयोग है, विषय है। परविषय के राग का भोग किया... पर का तो कर सकता नहीं। शरीर सुन्दर हो और पकवान आदि अच्छा हो, साटा घी में तले हुए साटा, वह कोई अनुभव में आता नहीं। वह तो जड़-मिट्टी है, धूल है, यह हड्डियाँ मिट्टी है। उसका वेदन आता है आत्मा को? उसके लक्ष्य में जो राग आता है, उसका वेदन है। पर का वेदन तो कभी अज्ञानी को भी होता नहीं। आहाहा! माने कि मैंने उसका भोग किया। यह पैसे जोड़े दो-पाँच करोड़ रुपये, ऐसा किया, बादशाही से जीते हैं, और हम बहुत सुखी हैं, अभी सुखी हैं। (वास्तव में) दुःखी है। ऐई सेठ!

इन सेठ की वहाँ बड़ी इज्जत है। दोनों भाईयों की बड़ी इज्जत है। भगवानदास शोभालाल। बुन्देलखण्ड के राजा, ऐसा कहते हैं। कोई बातें करे। कहाँ यह तो धूल में भी नहीं। भाई! ऐसा सुना है। अपने कहाँ देखने गये थे तुम्हारे घर में? ऐसा कि बुन्देलखण्ड के राजा कहलाते हैं। ऐसे उदार, जहाँ जाये दे, पैसा दे, जहाँ जाये वहाँ ऐसा करे, वैसा करे, पैसे की बड़ी... सुखी होंगे यह? आहाहा! भाई! तुमको बुन्देलखण्ड के राजा कहते हैं, लो! हम बहुत वर्ष से सुनते थे। तुम यहाँ नहीं थे तो भी सुनते थे।

यहाँ तो कहते हैं, भैया! परसन्मुख के लक्ष्य से जो वृत्ति उठती है, वह जहर, दुःखरूप है, उसका अनुभव है। परचीज़ का... मकान, पाँच-पाँच छह लाख के मकान, अमुक और बँगले... क्या कहलाता है संगमरमर का? तुम्हारे संगमरमर। संगमरमर का मकान... ओहोहो! क्या है? वह तो मिट्टी का ढ़ेर है। क्या उसको मिट्टी का अनुभव होता है? आरसपहाण—संगमरमर, कोमल रेशम के गद्दे... वह तो जड़ है। क्या जड़ का अनुभव होता है आत्मा में? आत्मा में उस ओर की वृत्ति उठती है तो ठीक है, ऐसा जो राग—पापराग, उसका अनुभव है। आहाहा! और ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की ओर का राग उठता है, वह पुण्यराग है। समझ में आया? दोनों कर्मचेतना—अशुद्धचेतना का स्वाद है। आहाहा! समझ में आया?

कुत्ता हड्डी चबाता है न, कुत्ता हड्डी को ? तो दाँत में से खून निकलता है। (दाँत) में से खून निकलता है और वह मानता है कि उसमें से आता है—हड्डी में से खून आता है। ऐसा है ही नहीं। उसी प्रकार अज्ञानी मूढ़... आहाहा! बागी, बगीचा, फूल झाड़, हारमोनियम बजता हो, वह बजता हो, तार आता हो, ऐसे कुर्सी (पर) बैठा हो, खाजा खाता हो... समझे न ? बराबर उसमें फिर अच्छी स्त्री हो, और वह पंखा झलती हो, दाल में मक्खी न पड़े इसलिए। ओहोहो! पहले ऐसा था। बहुत सी स्त्रियाँ बैठे साथ में, हों! तुमने नहीं देखा होगा। हाँ, साथ में बैठे। खाने का ध्यान हो, इसलिए दाल हो, कढ़ी हो, सब्जी हो तेलवाली, (उसमें) मक्खी न पड़े, इसलिए पंखा लेकर बैठे। समझ में आया ? ऐसा था। खाने में उसका ध्यान हो, मक्खी आ जाये और वह ऐसे का ऐसा लेने जाये... मक्खी आ जाये और तेल में मर जाये, उल्टी हो जाये। यह मजा आता है न उसमें ?

उनमें से... उनमें से अर्थात् शुद्ध ज्ञानचेतना और अशुद्ध चेतना में से... **अशुद्ध चेतनारूप...** अकेला चेत जाना, वेदा जाना, एकाकार होना, ऐसा। आहाहा! यह चेतनारूप वस्तु वापस ली है, देखो! वस्तु है न ? पर्याय, वह वस्तु है न ? भाई! चेतनारूप वस्तु... पर्याय अस्ति है न ? राग, हर्ष-शोक अस्ति है न ? वस्तु है न ? कोई अवस्तु है ? गधे का सींग है ? खरगोश (का सींग) है ? अस्ति है। **अशुद्ध चेतनारूप वस्तु...** भाषा देखो! है तो पर्याय। समझ में आया ? परन्तु अस्तिपना सिद्ध करने को कहा है। आकाश का फूल जैसी यह चीज़ नहीं है, ऐसा बताते हैं। वेदान्त आदि कहते हैं न, भ्रमणा-भ्रमणा कुछ है ही नहीं, अशुद्ध-फशुद्ध है ही नहीं। समझ में आया ? कहते हैं, भैया! भगवान! तेरा आत्मा तो आनन्दमूर्ति प्रभु है। उसका आश्रय छोड़कर, अनादि से अवस्था में आनन्द प्रगट करना छोड़ दिया है। समझ में आया ? और राग और द्वेष, पुण्य और पाप, हर्ष-शोक की वेदना, वह वस्तु का स्वाद है। लड्डू का स्वाद, लड्डू-वस्तु का, स्त्री का स्वाद, माँस का स्वाद है नहीं। वह रागरूपी वस्तु का स्वाद है। शोभालालभाई! रागरूपी वस्तु।

देखो! गहने लावे पाँच हजार या पच्चीस हजार के, कि यह वस्तु लो। यह दस हजार का गहना है, यहाँ हीरा टाँगा है, यह लटका है, यह सब करते हैं न बड़ा। जवाहरात का आता है न पाँच-पाँच, दस-दस हजार, बीस-बीस हजार का। ... हार। ... हार। एक बड़ा लॉकेट... वह तो वस्तु कहलाती है। यह (राग) वस्तु ? यह वस्तु का अनुभव नहीं

है। उस समय ऐसा देखे, पाँच लाख का हार, आहाहा! समझे? वस्तु में राग आता है। राग समझे? सासु थी। सासु-बहू। बहू थी बहुत कोमल। सासु ने कहा, बेटा! पानी लाओ न कलशा-लोटा।

मुमुक्षु : सुंवाळी क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुंवाळी नहीं समझते? ठीक। कोमल। ऐसे हाथ में कलश पकड़े तो लाल हो जाये। चमड़ी होती है न कोमल? इसलिए उसकी सासु को कहे, मुझसे नहीं होगा। ठीक, सासु ने ध्यान में रखा, लक्ष्य में रखा। और घर में भैंस दूधारू अच्छी थी। नहीं समझे? भैंस दुझाणा नहीं समझते? दुझाणा... हमारी भाषा नहीं आती? भैंस और गाय को दुहते हैं या नहीं? और दूध देनेवाली होती है... उसको मण-अधमण दूध निकलता था घर में।

और फिर किसी समय में ऐसा हुआ... पहले विचार किया उसकी सासु ने। लड़के को कहे, बहू के लिये एक पाँच-दस हजार का हार ले आओ। हार बनाओ। बेटा! अपने पैसा बहुत है। .... परन्तु एक लॉकेट है न, उसमें सवासेरी रखना। लोहे की सवासेरी। ऊपर सोने का मढ़ा हुआ और अन्दर सवासेर लोहा। दस हजार... बीस हजार... पच्चीस हजार का हार ऐसा। अन्दर लॉकेट। बहू को कहे, पहनो। पहेरो समझते हैं या नहीं? पहन लो। पहन लिया। किसी समय ऐसा हुआ कि सास ने बहू को दुहने को... ग्वाला व्यक्ति नहीं आया था, यह दूध ऐसा हो जायेगा। तो बहू को कहे, बहू! यहाँ आओ। हम छाछ बिलोते हैं। वलोणा कहते हैं न? वलोणा करते-करते वह हार पहना हुआ (इसलिए) ऐसे भटके।

इसलिए सासु कहे कि यह अभी छोड़ दे न, हार छोड़ दे थोड़ी देर आधा घण्टा। कहे, दिक्कत नहीं—कोई बाधा नहीं। तब वह कलश उठाने में दिक्कत हुई और यह हार उठाया। एक पानी का कलश सेर का, उसे नहीं ले सकूँ और यह सवा सेर लोहा... बता, निकाल अन्दर से, देख। अन्दर लोहा है। राग के मारे कुछ भान रहता नहीं। ऐसा करे तो भटके न! अथडाय समझे? चक्कर खाये। सासु कहे, बेटा! छोड़ दे न आधा घण्टा... कहे, दिक्कत नहीं। दिक्कत नहीं। क्यों दिक्कत नहीं? यह लोहा है अन्दर सवा सेर। तब एक

सेर पानी का लोटा... मैं कोमल हूँ, मेरा (हाथ) लाल हो जायेगा, ऐसा हो जायेगा और इसका कुछ नहीं। कितनी राग की प्रीति तुझे ? समझ में आया ? बस, वह राग का वेदन करता है, पत्थर का कोई नहीं करता। समझ में आया ?

अनादि का चेतनारूप वस्तु... भाषा तो देखो ! गजब टीका ! चेतनारूप वस्तु है। यह विकारी पर्याय है, उसका वेदन है। समझ में आया ? **उसरूप अनुभव सम्यक्त्व नहीं।** यह मलिन का अनुभव समकित नहीं। क्या कहते हैं ? व्यवहार का दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का राग का अनुभव, राग की मन्दता का वेदन, वह समकित नहीं। समझ में आया ? कषाय की मन्दता—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का जो भाव है, वह राग है। यह राग है, उसका वेदन समकित नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? वह तो कर्मचेतना है। उसमें सम्यक्त्व कहाँ आया ? ओहो !

शुद्ध चेतनामात्र वस्तुस्वरूप का आस्वाद आवे तो सम्यक्त्व है। भाषा देखो ! यहाँ भी यह लिया, देखो ! समझ में आया ? **शुद्ध चेतनामात्र वस्तुस्वरूप का आस्वाद आवे तो सम्यक्त्व है।** शुद्धचेतना... भगवान आत्मा ऐसा जो वस्तुस्वरूप त्रिकाल, उसकी शुद्ध चेतनामात्र... शुद्धचेतनामात्र में अशुद्धता का अंश नहीं। समझ में आया ? अकेला भगवान चैतन्य आनन्दमूर्ति का शुद्ध चेतनामात्र जीव वस्तुस्वरूप का आस्वाद... भगवान आत्मा वस्तु जो शुद्ध चैतन्य आनन्दरूप है, उसमें ज्ञान से एकाकार होकर जो वेदन होता है, उसका नाम आस्वाद आता है। (आस्वाद) आवे तो समकित है। आस्वाद, वह समकित नहीं, परन्तु यहाँ उसकी प्रधानता बताकर... आस्वाद तो अनुभव है, परन्तु उसमें प्रतीति आवे, वह समकित है। परन्तु प्रतीति की जगह आस्वाद आवे, उसे समकित कहा है। क्योंकि लोग भ्रम में न पड़ जाये कि हमें श्रद्धा है... श्रद्धा है... श्रद्धा है। समझ में आया ? डाह्याभाई ! आहाहा !

यह कहते हैं, वस्तु पूर्ण भगवान आत्मा (जो) सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' '**उवओगलक्खणो णिच्चं**' ज्ञानलक्षण से लक्षित त्रिकाल ऐसा अन्तर में शुद्धचेतनामात्र वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा का आस्वाद आना—आनन्द का आस्वाद आना—आनन्द का वेदन आना, वह समकित है।.... बात कितनी खुल्ली रखी !

समझ में आया? वह कहे, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा समकित। यह कहे, आत्मा की श्रद्धा समकित। इतना भी नहीं। समकित श्रद्धा, परन्तु श्रद्धा में मुख्य बात तो आत्मा के आनन्द का अनुभव आना, वह समकित है। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा पर्याय से अन्तर में अपार... अपार... अपार ज्ञान, अपार आनन्द, उस ओर की पर्याय अपार आनन्द में घुस गयी, पर्याय का आधार हुई तो वस्तु का— वस्तुस्वरूप का आस्वाद आया, आस्वाद आया, उसका नाम समकित कहते हैं। गजब बात भाई! धन्नालालजी! समझ में आया?

शुद्ध चेतनामात्र वस्तुस्वरूप... वस्तुस्वरूप ही है, उसका आस्वाद। राग या कर्मचेतना कोई वस्तुस्वरूप नहीं था, वह तो कृत्रिम चीज़ थी। समझ में आया? यह भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द और अनन्त गुणरूपी प्रभु, उसमें अकेला आनन्द पड़ा है। तो यहाँ आनन्द की प्रधानता लेकर सब गुण का वेदन कहने में आया है। समझ में आया? क्योंकि सुखपने होना, वह जगत का ध्येय है न? सुख मिले, सुखपने होऊँ, सुख में मिलूँ, दु:ख में न होऊँ। भगवान आत्मा में ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... अपार है। अपार में जहाँ दृष्टि हुई तो अपार ज्ञान (प्रगट हुआ)। जहाँ दृष्टि हुई तो उसमें आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... एकाकार हुआ तो आनन्द का स्वाद आया, उसका नाम समकित है। समझ में आया?

यह तो कहे, हम समकिती हैं, परन्तु हमको आनन्द का स्वाद नहीं आता। आनन्द के स्वाद की हमें खबर नहीं कि कैसा है? (तुझे) सम्यक् ही नहीं है। भाई! सम्यक्त्व तो उसको है कि जो वस्तु में आनन्द है और वस्तु में जो स्वभाव से भरा पड़ा अतीन्द्रिय सुख है... अनन्त गुण के (साथ) आनन्द अविनाभावी रहनेवाला है, तो उसके वेदन में जहाँ एकाकार हुआ तो आत्मा के आनन्द का अनुभव स्वाद (आया), उसमें प्रतीति (हुई कि) यह आत्मा। समझ में आया? आनन्द का स्वाद आया, उस अपेक्षा से सारा आत्मा आनन्दमय है... सारा आत्मा आनन्दमय है, ऐसी प्रतीति का नाम समकित है। लोगों ने समकित की व्याख्या इतनी स्थूल कर दी है। मिथ्यात्व को समकित मान लिया। भाई! जो चीज़ की प्रतीति है, उसका भले ज्ञान थोड़ा हो—जानपना थोड़ा हो, पुण्य भी बाहर में न

हो, समझ में आया ? परन्तु भगवान आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उससे उसका अनुभव आ गया कि वस्तु यह है, बस। समझ में आया ?

रात्रि (चर्चा) में पूछते थे न सुन्दरलालजी। कहाँ गये ? लो, यह है। किसी को पूछने जाना पड़े ? कैसा है, कैसे खबर पड़े ? खबर पड़े क्या ? जागे और आँख उघड़े नहीं ? जागे, उसे खबर पड़े नहीं कि मैं जगा हूँ ? ऊंघ गया हूँ, ऐसा रहे उसे ? ऊँघ गया, समझते हो ? सो गये हैं। आहा ! देखो ! समझ में आया ? ज्ञानचेतना का अर्थ ऐसा नहीं कि उसको सब प्रश्न के उत्तर आते हों तो ही ज्ञानचेतना है। समझ में आया ? क्षयोपशम हो और जवाब दे एकदम। हाँ, ज्ञानचेतना है। ज्ञानचेतना की स्थिति ऐसी है ही नहीं। यहाँ तो ज्ञानचेतना, अपना आनन्द का वेदन करे, उसका नाम ज्ञानचेतना है। देखो ! आहाहा ! मूल बात खुल्ली रख दी है।

श्रीमद् में तो ऐसा कहा कि शास्त्र में मार्ग है, परन्तु मर्म ज्ञानी की उसमें... आता है न ? परन्तु यहाँ तो मर्म भी खोल दिया है। समझ में आया ? मर्म भी खोल दिया। न्यालभाई ! मार्ग शास्त्र में है, परन्तु मर्म ज्ञानी के हृदय में है। अर्थात् कि यह अकेला ज्ञानपना, ऐसा नहीं, परन्तु आत्मा के आनन्द का स्वाद आना। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम समकित है। ऐसी बात नहीं कि श्रद्धा हमारी है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, आत्मा की पक्की श्रद्धा है। गजब श्रद्धा, परन्तु श्रद्धा की व्याख्या ? समझ में आया ? फूलचन्दजी ! ऐसी बात है। उनको रहना ही यहाँ है। अभी जाना छोड़कर....

मुमुक्षु : भगवान का ज्ञान होना, ...अनुभव होना, अनुभव का स्वाद आना, स्वाद में यह आत्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हं, अनुभवप्रकाश शास्त्र में दीपचन्दजी ने अनुभव के बहुत शब्द लिये हैं न ! परन्तु आत्मा के आनन्द का स्वाद आना, वह उसका मुख्य लक्षण है। अनुभवप्रकाश में बहुत बोल लिये हैं। मूल वस्तु है यह। समझ में आया ? वह लक्षण मूल है।

भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में... जो दुःखरूप में, राग-द्वेषादि में था, वह तो विकृतभाव था, स्वरूप में नहीं थी, ऐसी विपरीत दशा थी। समझ में आया ? स्वरूप में

नहीं, यह पुण्य-पाप का विकल्प, हर्ष-शोक का वेदन तो स्वरूप में है ही नहीं। वह तो दुःखरूप है, आनन्द की उल्टी विकृत अवस्था है। विकृत अवस्था का वेदन, वह संसार है। चाहे तो साधु हो, २८ मूलगुण पालनेवाला हो, समझ में आया? परन्तु २८ मूलगुण का वेदन करनेवाला मिथ्यादृष्टि संसारी है। आहाहा! और गृहस्थाश्रम में पड़ा... समझ में आया? चाहे तो स्त्री का देह हो, नपुंसक का भी देह हो कभी किसी को। समझ में आया? नारकी तो नपुंसक है न! सब नारकी। परन्तु यहाँ भी कोई ऐसा... कोई-कोई जीव... अन्तर में आत्मा में आनन्द का स्वाद आ गया, बस, (दुःख का वेदन) छूट गया। यह वस्तु है। समझ में आया? उसकी प्रतीति, उसका नाम सम्यक् है। उसको सम्यक् हुआ, ऐसा कहते हैं तो इस अपेक्षा से कहते हैं। ऐसी (ऊपर से) बात नहीं। समझ में आया? आहा!

शुद्ध चेतनामात्र वस्तुस्वरूप का आस्वाद आवे तो सम्यक्त्व है। लो, यह तो सम्यग्दर्शन की व्याख्या। सम्यग्दर्शन तो प्रतीतिरूप है। देखो! यह तो श्रद्धारूप है। बात सच्ची है भगवान! परन्तु श्रद्धा किसकी? वस्तु की न? वस्तु आनन्दरूप है। तो आनन्द का स्वाद आये बिना 'यह वस्तु आनन्दरूप है', ऐसी प्रतीति कहाँ से आयी? समझ में आया? आनन्द उड़ गया सबमें से। सम्यक् दृष्टि में आत्मा के आनन्द के स्वाद में प्रतीति हुई, सबमें से आनन्द उठ गया। इन्द्र का इन्द्रासन हो, समझ में आया? ९६००० चक्रवर्ती की स्त्रियाँ हों, समकिती को आनन्द उड़ जाता है। स्त्रियों के वृन्द में बैठा दिखायी दे, कदाचित् उस भोग की वासना के समय भी दिखे, परन्तु उसके आनन्द के स्वाद के समक्ष वासना में दुःख दिखता है। दुःख... दुःख... दुःख... दुनिया जाने कि ओहोहो! ९६००० स्त्रियाँ पद्मिनी जैसी, चक्रवर्ती को करोड़ों... सुखी। यह कहते हैं कि वह वासना दुःख है, मैं मेरे आनन्द के स्वाद में सुखी हूँ। समझ में आया?

ऐसी सम्यग्दृष्टि को प्रतीति अपनी आनन्द में आती है और आनन्द व्यक्तरूप से प्रगट आया। सारे संसार में से सुखबुद्धि उठ गई। भाई, शोभालालभाई! हेय... दुःख... दुःख... दुःख... स्त्री की विषयवासना... वासना जहर, दुःख। काला नाग देखे, (वैसे) दुःख। दुनिया ऐसा कहे कि सुख। यह कहे कि दुःख। सुख मेरी चीज़ में है। आहाहा! यह सुखसागर, सुख के सागर का अनुभव हुआ, सुख की परिपूर्णता उस दशा से हो गयी। समझ में आया?

अब यहाँ शब्द पड़ा रहा थोड़ा। यहाँ है न ? 'सम्यक्त्व' है यहाँ। और **कैसा है शुद्ध जीव ?** ऐसा थोड़ा पड़ा रहा। यह वहाँ पड़ा रहा। यह समकित के बाद यह शब्द पड़ा रहा। **और कैसी है जीववस्तु ?** उसके पहले। **और कैसी है जीववस्तु ?** उसके पहले। **और कैसा है शुद्ध जीव ?** ऐसा लेना। यह शब्द नया पड़ा रहा। **और कैसा है शुद्ध जीव ?** वह **कैसी है जीववस्तु ?** (उसके) पहले एक शब्द लेना। और **कैसा है शुद्ध जीव ?** '**पूर्णज्ञानघनस्य**' पूर्णज्ञानघनरूप है। इतना अन्दर पड़ा रहा। जो वस्तु के आनन्द का स्वाद आया, वह समकित है तो वस्तु कैसी है ? पूर्ण ज्ञानघन। आनन्द का स्वाद में 'यह आनन्द पूर्ण है' ऐसा आया। ऐसे आत्मा पूर्ण ज्ञानघन है, अकेला ज्ञान का पुंज है। ज्ञान का सत्त्व है अकेला। पूर्ण ज्ञानघन, सर्वज्ञस्वभाव, समझ में आया ? सर्व सुखस्वभाव... जैसे सर्व सुखस्वभाव, वैसे यह पूर्ण ज्ञानस्वभाव। पूर्ण ज्ञानघन। देखो न ! घन-पिण्ड-रस। केवलज्ञान हुआ उसमें से, ऐसा वह बिम्ब पूर्ण ज्ञानघन है। आहाहा ! समझ में आया ?

पूर्ण ज्ञानघन है। सब मिलकर पूर्ण नहीं, हों ! अकेला आत्मा। ज्ञान पूर्ण है पूर्ण, गुणघन पिण्ड है। शक्ति-सत्त्व है न घन। उसमें से ज्ञानचेतना पर्याय प्रगट हुई है, आनन्द भी उसमें से आया। ज्ञान और आनन्द की मुख्यता बतायी। समझ में आया ? बाकी सब अनन्त गुण प्रगट हो गये। जितने गुण हैं, वे ज्ञानचेतना के साथ सब गुण की व्यक्तता हो गयी। ज्ञान और आनन्द दो मुख्य लेकर पूरे आत्मा का अनुभव बता दिया। समझ में आया ? आहाहा ! अभी विधि की खबर नहीं होती, रीति की खबर नहीं होती और माने समकित और हम धर्मी। मणिभाई ! क्या करे ? भाई ! वह भी स्वतन्त्र है न ! अनादि से रुला है, अपनी निज सम्पदा की सम्हाल की नहीं और (माने कि) अब हम धर्मी हो गये, व्रत पालते हैं, चारित्र पालते हैं। चारित्र तो लो। परन्तु चारित्र किसका ?

भाई ! यह आनन्द का स्वाद आया, उसमें रमना... रमना, उसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई दूसरी चीज़ नहीं है। आनन्दघन का स्वाद आया, उसमें रमना, लीन—आनन्द में लीन होना। पूर्ण आनन्द में से जो आनन्द का अंश आया है, उसका स्वाद आया, उसमें लीन—एकाकार होकर विशेष आनन्द की दशा का प्रगट होना, उसका नाम चारित्र है। चारित्र, कोई बाह्य क्रियाकाण्ड और नग्नदशा और वस्त्र छूटे, पंच महाव्रत के परिणाम—

वह चारित्र-फारित्र है नहीं। हाँ; ऐसी चारित्र की आनन्ददशा जब प्रगट होती है, तो शरीर की नग्नदशा सहज हो जाती है और वस्त्र-पात्र भी छूट जाते हैं। ऐसी दशा हो तो वस्त्र-पात्र रहे, ऐसा रहता नहीं। इतना निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। समझ में आया?

ऐसे आनन्द में झूलने से... अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द... मुनि की दशा जो चारित्रदशा प्रगट हुई, आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... है। शरीर की दशा सहज (ही) नग्न हो जाती है और वस्त्र-पात्र लेने के विकल्प की दशा मुरझा जाती है—नाश हो जाती है। वस्त्र-पात्र लेने की वृत्ति उठती नहीं, ऐसी दशा आनन्द की उठती है। समझ में आया? यह वस्तु का स्वरूप है। यह कोई सम्प्रदाय की बात है, ऐसा नहीं। आहाहा! भावलिंग जहाँ प्रगटा, वहाँ द्रव्यलिंग ऐसा होता ही है। समझ में आया? द्रव्यलिंग अनन्त बार हुआ, परन्तु भावलिंग बिना उसको लाभ हुआ नहीं। आहा! कहते हैं, यह पूर्णज्ञानघनरूप है... पूर्णज्ञानघनरूप है, ऐसा लिया है, हों! '**पूर्णज्ञानघनस्य**' है न! पूर्णज्ञानघनरूप.... अकेला चैतन्यरूप, ज्ञानप्रकाशपुंज, सूर्य-चैतन्य का सूर्य, उसमें से मति-श्रुतादि की किरण प्रगट होती है और केवलज्ञान भी त्रिकाली ज्ञानगुण की ही किरण है। आहाहा!

नहीं डालते तुम्हारे, क्या कहलाता है? हजार-हजार का प्रकाश। सर्चलाईट.... सर्चलाईट नहीं वहाँ बाहुबलीजी में? बाहुबलीजी में दो सर्च लाईट हैं। रात्रि में इतना प्रकाश हो। प्रकाश आता है कहाँ से? भगवान (आत्मा) केवलज्ञान की सर्चलाईट है। यह पूर्णज्ञानघनरूप है। किरण मति-श्रुत का निकला, आनन्द के वेदन का स्वाद करते-करते एकाग्र होकर केवलज्ञान की किरण, अनन्त आनन्द की परिपूर्णता, अनन्त वीर्य की परिपूर्णता, अनन्त दृष्टा, स्वच्छता, प्रभुता की पूर्णता होती है। क्योंकि वह पूर्ण है, ऐसी पर्याय में पूर्णता आती है। समझ में आया? वह अन्तर के आश्रय से आती है। कोई विकल्प या निमित्त या बाह्य संहनन की मजबूती है, तो उसके आश्रय से परिपूर्णता आती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

और कैसी है जीववस्तु? 'व्यासुः' अपने गुण-पर्यायों को लिये हुए है। अपनी शक्ति और अवस्था से रहा द्रव्य है। वह अवस्था लिये हुए है—अवस्था सहित है। अवस्था पर को लेकर है, ऐसा नहीं। भगवान आत्मा अपनी शक्ति और अपनी अवस्था लिये (है

अर्थात्) अपनी अवस्था सहित है, ऐसा। अपनी शक्ति और अवस्था सहित वह वस्तु है। वह अवस्था और शक्ति अपने से है, पर से नहीं। समझ में आया? **इतना कहकर शुद्धपना दृढ़ किया है।** इतना कहकर शुद्धपना दृढ़ किया है। भगवान आत्मा शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध और पर्याय में शुद्धता हुई तो उसके द्वारा सारा शुद्ध अनुभव में आ गया।

कोई आशंका करेगा कि सम्यक्त्व-गुण और जीववस्तु का... गुण शब्द से यहाँ पर्याय। **आशंका करेगा...** देखो! राजमलजी ने भी कैसी टीका की है! **कोई आशंका करेगा कि सम्यक्त्व गुण और जीववस्तु का भेद है कि अभेद है?** तुम कहो समकित हुआ, तो समकित और आत्मा भेद (-भिन्न) हैं—दूसरी चीज़ है या एक चीज़ हैं दोनों? आशंका समझने के लिये (होती है)। शंका नहीं। आप कहते हो, बराबर है (परन्तु) मुझे समझ में नहीं आता। आत्मा और उसका समकित, तो समकित भिन्न है या अभिन्न? एक हैं या अलग हैं?

उत्तर ऐसा कि अभेद है। 'आत्मा च तावानयम्' यह (आत्मा) जीववस्तु सम्यक्त्व गुणमात्र है। सारी श्रद्धा की सम्यक् पर्याय पूरे आत्मा के प्रमाण से परिणम गयी है, तो यह सारा आत्मा ही सम्यक्त्व प्रमाण है। समझ में आया? '**आत्मा च तावानयम्**' ताव+अयम्? अनयम् क्या? '**तावान् अयम्**' दोनों (पृथक्) किये हैं न। **तावान्+अयम्... तावान्**—इतनी, '**अयम्**'—यह। यह सम्यग्दर्शन, उतना आत्मा, बस। पर्याय पूरे आत्मा पर परिणम गयी है न? समझ में आया? सम्यक्त्व वस्तु जैसी है, ऐसी प्रतीति और स्वाद पूरे आत्मा पर परिणम गया है। समझ में आया? उस अपेक्षा से अभेद कर दिया है। अभेद है, रागादि भेद ऐसी चीज़ नहीं। ऐसा बताते हैं। विकल्पादि व्यवहाररूप से है, वह तो भेद है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है, वह तो अभेद है। जैसा स्वभाव है, वैसा प्रवाह आया तो अभेद है। जैसा स्वभाव है, उसका प्रवाह आया तो अभेद ही है। एक जाति है, अभेद है। समझ में आया? आहाहा! टीका भी गजब, भाई! ऐसी वस्तु... ऐसी टीका समझते नहीं, वाँचते नहीं। वाँच तो बापू! शान्ति से वाँच तो सही भाई!

परन्तु निश्चय अर्थात् यथार्थ। यथार्थ (अर्थात्) सत्य। व्यवहार हो तो किसने इनकार किया? छह द्रव्य नहीं? छह द्रव्य नहीं? यहाँ तो अकेली आत्मा की बात चलती

है, तो छह द्रव्य नहीं ? ऐसा व्यवहार नहीं ? हो तो क्या है ? जैसा परद्रव्य है, ऐसा व्यवहार है। (नहीं) है क्या ? परन्तु स्वद्रव्य कैसा है, उसकी बात चलती है, वहाँ परद्रव्य का धूल में क्या काम है ? समझे ? निश्चय की यथार्थ बात चलती है, वहाँ व्यवहार का काम क्या है ? व्यवहार व्यवहार में रहा; परद्रव्य परद्रव्य में रहा। समझ में आया ?

अकेला भगवान चैतन्यज्योति चमत्कार शक्ति, महा चमत्कारी चीज़, उसका चमत्कार जगत में कोई कहे, ऐसा है नहीं। ऐसी प्रभु चमत्कारिक वस्तु पर्याय में दिखे नहीं और शक्ति में अपरम्पार है। ऐसी शक्ति में एकाकार होकर अपरम्पार शक्ति का चमत्कार पर्याय में आया, महा सृष्टि सहित का महा चैतन्य चमत्कार आ गया। समझ में आया ? जिसमें से अलौकिक पर्याय केवलाान, आनन्दादि प्रगट होगी, ऐसी यह चैतन्यचमत्कार चीज़ है। ऐसे सम्यग्दर्शन और आत्मा अभेद है। समझ में आया ? यह वस्तु—पूर्ण वस्तु अकेला चैतन्यबिम्ब पृथक्... पृथक्... पर से निरालम्ब। राग के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। ऐसे सम्यग्दर्शन और आत्मा तो एक ही है। कहो, समझ में आया ? यह छठवाँ श्लोक हुआ। सात।

कलश - ७

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति॥७॥

अर्थ :- (अतः) यहाँ से आगे वही (प्रत्यग्ज्योतिः) प्रत्यग्ज्योति.... समझे ? प्रत्यग्... पहले प्रत्यग् था न ? प्रत्यग् आत्मा। प्रत्यक् आत्मा दूसरे श्लोक में। वहाँ प्रत्यक् आत्मा का अर्थ सर्वज्ञ वीतराग किया था। पण्डित जयचन्दजी ने प्रत्यक् आत्मा का अर्थ—अपने द्रव्य-गुण-पर्याय (सहित), पर से पृथक् और राग से कथंचित् पृथक्, कथंचित् अपृथक्। (क्योंकि) एक समय का है, ऐसा कहा था। यहाँ आत्मा प्रत्यग्ज्योति है। भिन्न चैतन्यधाम ज्योति है, ऐसा बताना है। भगवान आत्मा प्रत्यक्-पृथक् तेजधाम... चैतन्य का धाम, चैतन्यज्योतिस्वरूप है। आत्मा चैतन्यज्योतिस्वरूप है, आत्मा चैतन्यधामस्वरूप है। समझ में आया ?

.... बाहर का धाम, इतने बँगले किये हमारे.... यह तो कहे, चैतन्यधाम तेरा है, यह (बाह्य का) धाम नहीं। भगवानजीभाई! कितने मकान तुम्हारे वहाँ। भागना पड़े, वहाँ से भागना पड़े उन रंगूनवालों को। यहाँ से भागना पड़े ही नहीं, यहाँ तो कहते हैं। कहीं से हटना (नहीं पड़े)। अन्दर में वस्तु में आवे तो कहीं जाना पड़े नहीं। कहीं जाना-आना नहीं, जहाँ है वहाँ रहना।

यहाँ तो क्या कहा? प्रत्यग्ज्योति आयी न? प्रत्यक् अर्थात् पृथक् शुद्ध चेतनामात्र। .... तो इतनी व्याख्या की। ऐसे भगवान आत्मा शुद्धचेतनामात्र वस्तु.... **शुद्ध चेतनामात्र वस्तु। 'चकास्ति'** की व्याख्या यह करेंगे कि **शब्दों द्वारा युक्ति से कही जाती है,...** ऐसा लिया। कथन किया। नहीं तो प्रत्यग्ज्योति प्रकाशमान होती है। चैतन्यज्योति प्रकाशमान होती है। वहाँ शुद्धनय में लेंगे न! शुद्धनय में वस्तु लेंगे तो यहाँ भी ऐसा लिया कि शुद्धचेतनामात्र वस्तु शब्दों द्वारा युक्ति से कही जाती है। शब्दों द्वारा युक्ति से, न्याय से, तर्क से कही जाती है। अब उस वस्तु को सिद्ध... यहाँ वस्तु सिद्ध करनी है न, इसलिए यहाँ शब्दों से कहा।

कैसी है वस्तु? कैसी है वस्तु जो कहने में आनेवाली है वह? भगवान आत्मा वस्तु, हों! **'शुद्धनयायत्तं'** शुद्धनय+आयत्तं। शुद्धनय की व्याख्या वस्तुमात्र। नय... शुद्धनय कहो या वस्तु कहो। ११वीं गाथा में आया न। **'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' 'भूदत्थो देसिदो'** ११वीं गाथा। **'ववहारोडभूदत्थो भूदत्थो देसिदो'** भूतार्थ वस्तु, वही नय—वही शुद्धनय। **'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'** भूतार्थ, वही शुद्धनय। क्या कहा? समझ में आया? जरा सूक्ष्म है, बहुत ध्यान रखना। यह वस्तु जो भूतार्थ शुद्ध चैतन्यधाम ध्रुव है, उसको ही यहाँ शुद्धनय कहा है। नय और नय का विषय, ऐसा कोई भेद नहीं। समझ में आया? ओहोहो! भगवान आत्मा ध्रुव... ध्रुव... भूतार्थ... विद्यमान पदार्थ... त्रिकाल ध्रुव... उसको यहाँ शुद्धनय (कहा है)। ११वीं गाथा में कहा, वही अर्थ यहाँ लिया है। वे सब (ज्ञानी) लोग शास्त्र की मूल वस्तु है, ऐसी ही उसको प्रगट करते हैं। घर की कल्पना से कोई बात नहीं। समझ में आया?

शब्द भी यही है। **(शुद्धनय) वस्तुमात्र के आधीन है।** अर्थात् वस्तु, वस्तु के

आधीन है, ऐसा कहते हैं। वस्तुमात्र उसके आधीन है। कोई राग, निमित्त या पर के आधीन यह वस्तु नहीं है। ऐसी वस्तु, वस्तुमात्र के आधीन है। तो उसका आश्रय करने से जो पर्याय हुई, वह द्रव्य के आधीन हुई है, पर के कारण से नहीं। समझ में आया? गजब बातें, भाई! यह तो भगवान की भागवत् कथा है। भागवत् कथा है। समझ में आया? यह कथा तो भगवान की कथा बड़ी अलौकिक है। नहीं कहते? भगवान की पुत्री विवाहित होती है यहाँ। ऐसा कहते हैं न? हमारे कहते हैं। प्रीतिभोज होता है न, प्रीतिभोज। यहाँ तो भगवान की पुत्री विवाहित होती है, आओ, खाओ। भगवान की लड़की ब्याहती है, खाओ। ऐसे यह भगवान का केस चलता है।

भगवान आत्मा कैसा है? शुद्धचेतनामात्र वस्तु। अपने आधीन है। अपने से आधीन है। यह वस्तु किसी के आधीन नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़, इसका उसने गुणगान भी बराबर सुना नहीं। समझ में आया? और अवगुण की बातें—पुण्य और पाप की बातें सुनकर हर्ष... हर्ष... हर्ष... (करे)। मूर्ख है। अपने आत्मा की निन्दा की बात में हर्ष? **वस्तुमात्र के आधीन है। भावार्थ इस प्रकार है—जिसका अनुभव करने पर सम्यक्त्व होता है, उस शुद्ध स्वरूप को कहते हैं...** देखो! जिसका अनुभव करने पर... वस्तु जो शुद्ध चैतन्य भगवान, उसका अनुभव करने पर समकित होता है। वह कैसी शुद्ध वस्तु है, वह कहते हैं। यह शुद्धवस्तु कैसी है? कि जिसके अवलम्बन से समकित होता है अथवा अनुभव करने से समकित होता है, वह चीज़ कैसी है? यह कहते हैं। वह कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Vitragvani

www.vitragvani.com